मानस के चार घाट

भक्तिघाट
(काकभुशुण्डि-गरुड़)

ज्ञानघाट
(शिव-पार्वती)

राम सीय जस सलिल सुधासम

श्रीराम सीता सुयश जल

कर्मघाट
(याज्ञवल्क्य-भरद्वाज)

शरणागतिघाट
(गो. तुलसीदास और उनका मन)

युग तुलसी-
पद्मभूषण डॉ. श्री रामकिंकरजी महाराज

मानस के चार घाट

मो० 8881994514

रामायण आश्रम

तात्विक विवेचना

युग तुलसी पद्म भूषण

परम पूज्य डॉ. श्रीरामकिंकरजी महाराज

प्रकाशक

रामायणम् ट्रस्ट

युग तुलसी पं. रामकिंकर, उपाध्याय परिक्रमा मार्ग,

जानकी घाट, श्रीधाम अयोध्या-224123

दूरभाष : 05278-232152, फैक्स-233468

E-mail : sadgurdev9@g-mail.com

।। श्रीराम शरणं मम ।।

अनुक्रम

।। श्री राम शरणं मम ।।

घाट मनोहर चारि

लोक मानस में रामकथा के रचयिता के रूप में गोस्वामी तुलसीदासजी प्रतिष्ठित हैं। किन्तु स्वयं गोस्वामी जी इसे स्वीकार नहीं करते। उनकी मान्यता यह है कि इसके रचयिता तो भगवान् शिव हैं। वे तो मात्र अनुवादक हैं। पर इतना तो वे स्वीकार करते ही हैं कि इस दिव्य सरोवर में घाटों की कल्पना उनकी अपनी है-

सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारे।

तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारे।।

सरोवर में घाट का होना परमावश्यक है। सरोवर में सोपान के माध्यम से ही व्यक्ति सरलतापूर्वक अवगाहन कर सकते हैं। विभिन्न व्यक्ति सरोवर के सन्निकट अलग-अलग उद्देश्यों से जाते हैं। कुछ ऐसे हैं जिन्हें सरोवर की शोभा अपनी ओर आकृष्ट करती है, तो कुछ स्नान के लिए और कोई अपनी प्यास मिटाने जाते हैं। कोई गोताखोर उसकी गहराई में पैठकर तैराकी का आनन्द लेना चाहे, यह स्वाभाविक है। काव्य से हटकर सरल अर्थों में इसका तात्पर्य यह है कि श्री राम के चरित्र को देखने वाले अनगिनत लोग हैं, जिनकी दृष्टियों में भिन्नता है। उस अनंत चरित्र में सब कुछ उपलब्ध है। इसलिए वे चार घाटों के माध्यम से सुधीजनों को निमंत्रण देते हैं कि वे रामकथा की स्वच्छता, मिठास और गहराई का रसास्वादन करें। प्रवचन और लेखन दोनों ही माध्यम से प्रभु मुझसे सेवा कार्य लेते रहे हैं। दोनों ही माध्यमों में जो अन्तर होता है उसे यों प्रतिपादित किया जा सकता है।

लेखन के क्षणों में व्यक्ति अकेला होता है, उसे अभिव्यक्ति देने के लिए वह भाषा और लेखनी का आश्रय लेता है और अपने अन्तस्थ भावों को व्यक्त करता है।

प्रवचन में वक्ता की स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। उसके समक्ष श्रोताओं की एक बड़ी संख्या होती है। उन श्रोताओं में विभिन्न रुचि और योग्यता के व्यक्ति होते हैं। वक्ता को उन सभी का ध्यान रखना पड़ता है। लेखन भले ही तात्विक दृष्टि से लिखे पर वक्ताओं को तत्व के साथ रस का सामंजस्य बनाए ही रखना पड़ता है। गोस्वामी जी ने राम कथा के लिए "बुध विश्राम सकल जन रंजनि " की जिस विशेषताओं की ओर संकेत किया है, उसका समग्र दर्शन तो कथा प्रवचन के क्षणों में ही होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भी प्रवचन संग्रह के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसमें पाठकों को पठन और श्रवण का मिला-जुला आनन्द प्राप्त होगा।

- रामकिंकर

◆ ◆ ◆

।। श्रीरामः शरणं मम।।

।। श्री गणेशाय नमः।।

प्रथम

पीपर तरू तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहीं दूजा ।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहि अनेक विहंगा।।

(७-५६-५)श्री रा. च.मा.

भगवत कथा रसिक महानुभावो ,भक्तिमती देवियो,

पुनः इस वर्ष यह अवसर मिला है जब भोपाल के प्रबुद्ध और श्रद्धालु श्रोताओं के समक्ष श्रीरामचरित मानस के संदर्भ में कुछ शब्द पुष्प अर्पित किये जा सकें। इस वर्ष अनेक प्रसंगों के प्रति हमाारे जो विशिष्ट श्रोता थे, उनका आग्रह था पर, वह बड़ी कठिन समस्या थी मेरे लिये, क्योंकि मानस के सभी प्रसंग अद्‌भुत हैं, अनोखे हैं, तो हमारे श्री शुक्ल जी ने सुझाव दिया कि मानस में जो चार घाटों की धारणा हैं, उसका जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, उसकी व्याख्या की जाए। किन्हीं महानुभावों का आग्रह था रामराज्य पर, कुछ लोग केवट का नाम ले रहे थे, कुछ लोग पारिवारिक धर्म की ओर हमारी दृष्टि आकृष्ट कर रहे थे। वैसे तो सभी प्रसंग बड़े महत्व के हैं। **मानस के चार घाटों** की जो गोस्वामीजी ने परिकल्पना की है, वह तो सचमुच अद्‌भुत हैं, गंभीर है। मुझे स्मरण आता है, बहुत वर्ष पहले हिन्दू विश्वविद्यालय ने जब मुझे आमंत्रित किया था वाराणसी में,उस समय दो सत्रों में तीन महीने तक चार घाटों की चर्चा चली थी । फिर भी वह पूरी नहीं हो पाई थी । तो सचमुच वह प्रसंग तो,यों कहना चाहिए कि उसके माध्यम से तो, मानस के सारे ही प्रसंगों की व्याख्या की जा सकती है। समास पद्धति से उसे प्रस्तुत करने की चेष्टा मैं करूंगा और अन्य प्रसंग, जिन महानुभावों ने चुने हैं, मुझे विश्वास है कि किसी-न-किसी दिन, किसी-न-किसी संदर्भ में, उन सभी पर कुछ चर्चा आपको मिलेगी। अभी आपके सामने जो पंक्तियां पढ़ी गई हैं उसमें भी चार की ओर ही संकेत किया गया है और उन चार में चार घाटो की बात या चार प्रकार की जो साधनाएँ है, उनकी ओर एक संकेत आपको प्राप्त हो सकता है। यह प्रसंग जब भगवान शंकर ने भगवती

पार्वती को सुनाया, उन्होनें कहा- ''प्रिये ,जब पूर्व जन्म में, सती के रूप में तुमने दक्ष के यज्ञ मे अपने शरीर को आहुति के रूप में परिणत कर दिया, तो तुम्हारे वियोग में दुखी होकर मैं सर्वत्र भ्रमण करता हुआ एक दिन सुमेरू पर्वत पर पहुंचा और वहां का अदभुत दृश्य देख करके मुझे बड़े ही आनन्दकी अनुभूति हुई। मैंने देखा कि सुमेरू पर्वत के चार शिखर हैं, और चार शिखरों के ऊपर चार ,वृक्ष लगे हुए हैं और वहां पर भुशुंडि नाम के जो काक हैं, उन चारों वृक्षों के नीचे चार प्रकार की साधनाएं करते है। पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर वे ध्यान करते हैं, पाकरि के नीचे बैठ करके वे जप-यज्ञ करते हैं, आम के नीचे बैठ करके मानस पूजा करते है और वट के नीचे बैठ करके राम कथा सुनाते हैं। जिस समय मैं वहां पहुंचा, वट वृक्ष के नीचे कथा प्रारम्भ होने जा रही थी। मैं यह देख करके चकित हो गया कि उन श्रोताओं में केवल काक ही रहे हों, कौए ही रहे हों, ऐसा नहीं था। अपितु सबसे बड़ी संख्या तो हंसों की थी और उस अवसर पर जब वह दृश्य मैंने देखा कि एक कौआ कथा सुना रहा है और हंस उस कथा को सुन रहे है तो मुझे अद्‌भुत दृश्य का दर्शन हुआ। तब स्वभाविक था कि पार्वती जी यह मानती हों कि जब भुशुण्डिजी ने देखा होगा कि भगवान् शंकर स्वयं पधारे हुए हैं, तो अपने आसन से उठ करके खड़े हो गये होंगे और उन्होंने अनुरोध किया होगा कि अब आप जब स्वयं आ गए हैं तो आप ही कथा सुनाने की कृपा करें । पर शंकरजी ने कहा कि- नहीं पार्वती, मैं ऐसी भूल क्यों करता? मैंने भी उस कथा से लाभ लेने का निर्णय किया और तब मैंने भी अपने आप को हंस के रूप में कर लिया, हंस का वेष धारण कर लिया और हंसों में बैठ करके पूरी राम कथा मैंने सुनी और बिना परिचय दिये ही मैं वहां से लौट आया।'' उस समय उन्होंने जो दृश्य प्रस्तुत किया वह बड़े ही आध्यात्मिक संकेतों से भरा हुआ है और चाहे जिस संदर्भ से जिस दृष्टि से उसकी व्याख्या की जाए उसमें सभी सूत्र हम सबको प्राप्त हो सकते हैं। यहां पर एक तथ्य बड़े महत्व का है और सबसे पहले हम उस पर दृष्टि डालने की चेष्टा करें।

आपने प्राचीन काल के, पुराने समय के, सरोवर देखे होंगे। आजकल सरोवरों की परम्परा नहीं है। जल के नये साधन है और नये रूप में उनका उपयोग किया जा रहा है पर आपने पुराने सरोवर जहां देखे होंगे,

वहां आपने देखा होगा कि उसमें जो चारों किनारे हैं वो किस रूप में प्रस्तुत किये जाते रहें हैं। उसमें तीन ओर तो घाट होते थे, सीढ़ियाँ होती थीं और चौथी ओर सीढ़ियाँ नहीं होती थी । केवल वह सपाट बना हुआ रहता था और उसका उद्देश्य यह होता था कि तीन घाट मनुष्यों के लिये थे, चौथा घाट पशुओं के लिये, उनके उपयोग के लिए बनाया जाता था, उसको गऊ घाट कहते थे। किसी भी पशु के लिए सीढ़ी के माध्यम से जल तक पहुंचना संभव नहीं है, इसलिए उसके लिये उसे सपाट रखा जाता था। उसका मानों अभिप्राय यह है, कि जैसे आप यहां पर कथा श्रवण करने के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं से आये हुए हैं। आप नगर के जिस भाग में निवास करते हैं उस भाग से, कोई पूरब से, कोई पश्चिम से, कोई उत्तर से, कोई दक्षिण से यहां उपस्थित हैं और आप सब एक साथ कथा श्रवण कर रहें। लगता तो यही है कि एक वक्ता कथा कह रहा है, पर अगर भिन्न-भिन्न श्रोताओं से यह प्रश्न किया जाए कि आपने आज कथा में क्या सुना, तो आप देख करके चकित हो जायेंगे कि उन श्रोताओं ने जो सुना होगा, उसे जिस रूप में ग्रहण किया होगा, उसमें निश्चित रूप से भिन्नता होगी। कोई व्यक्ति ऐसा होगा कि उसको एक भाग, किसी को दूसरा भाग, तीसरा भाग या चौथा भाग प्रिय होगा। इसका मूल कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का जो निर्माण हुआ है, उसमें एक जैसी बातें दिखाई देती हैं, पर भिन्नताएँ भी अनेक है और भिन्नताओं के स्वाभाविक रूप का दर्शन, आप अपने जीवन में, समाज में करते होंगे।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते है कि जो प्रत्येक बात को बुद्धि की कसौटी पर, तर्क की कसौटी पर कस करके देखना चाहते है और मानना चाहते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते है जो बुद्धिमत्ता और तर्क को बहुत महत्तव नहीं देते, वे सहज विश्वास से भक्ति भावना से कथा श्रवण करते है और कुछ श्रोता ऐसे होते है जिनकी दृष्टि उपयोगिता पर होती है। कथा सुनने से क्या लाभ है या उससे हमें क्या संदेश दिया गया क्या प्रेरणा दी गई यह एक सामाजिक दृष्टि है और एक चौथी दृष्टि ऐसी भी हो सकती है, जिसको गोस्वामीजी ने रखने की चेष्टा की । अगर कोई व्यक्ति बुद्धिवादी है, बुद्धि प्रधान है तो हम कहेंगे यह ज्ञानी है, अगर कोई भावना और हृदय प्रधान है तो हम कहेंगे यह भक्त है, कोई व्यक्ति अगर कर्म या

सामाजिक संदर्भ से जुड़ा हुआ है, तो हम उसे कहेंगे यह कर्म धारणा से जुड़ा हुआ व्यक्ति है। गोस्वामी जी उसके साथ-साथ जो कल्पना प्रस्तुत करते है, उसको आप यों इस रूप में लें, कि जैसे आपके परिवार के अनेक सदस्य में जैसी योग्यता है, उसे वैसा काम सौंपा जाता है और वैसा काम वह व्यक्ति करता है। किन्तु अगर परिवार में एक सदस्य अस्वस्थ हो, या शारीरिक दृष्टि से उसमें दुर्बलता हो, किसी अंग की कमी हो, तो ऐसे असमर्थ व्यक्ति से आप यह आशा नहीं करते है कि उस पारिवारिक संदर्भ में वह भी अपने कर्तव्य कर्म का पालन करें । सारे परिवार के सदस्य अगर सहृदय है तो उसका ध्यान रखते है। गोस्वामी जी ने ऐसा अनुभव किया होगा और लगता भी यही है कि इन तीनों के साथ-साथ मस्तिष्क प्रधान, हृदय प्रधान, क्रिया प्रधान इनके साथ-साथ वे चौथे प्रकार के व्यक्ति होते है, कि जो स्वयं अपने आप में बड़ी कमी का, अभाव का अनुभव करते है और तब गोस्वामीजी का संकेत यह है कि भाई जैसे सरोवर बनाने में भी सहृदय व्यक्ति इस बात का ध्यान रखता है, कि पशु के लिए तो घाट बनाना ही चाहिए। मनुष्य सोपान के माध्यम से सरोवर का जल पिये और उसका लाभ ले यह तो ठीक ही है, लेकिन वह पशु, जो अपने लिये सरोवर नहीं बना सकता, जो सीढ़ियों के द्वारा उतर नहीं सकता, उसको भी तो जल मिलना चाहिए और तब वह चौथे घाटों से पी रहे हैं, नहा रहे है पशु भी उसका आनन्द ले सकें, उसे पी सकें।

गोस्वामी जी ने कहा, कुछ लोग ऐसे समाज में होते है, कि जिनमे एक प्रकार की हीनता हेती है, जिनमें अभाव की अनुभूति होती है और तब स्वाभाविक रूप से मानो वह संदेश देना चाहते हैं कि रामकथा ज्ञानियों के लिये भी उपादेय हैं, भक्तों के लिए भी वह परम रसमयी हैं, समाज सेवियों के लिये और कर्म प्रधान व्यक्तियों के लिए पुरूषार्थ को प्रेरणा देने वाली हैं पर, जो असमर्थ- से- असमर्थ व्यक्ति है उनको भी इस कथा के माध्यम से वह संदेश प्राप्त हो सकता है कि वह ऐसा अनुभव करें कि नहीं-नहीं हम भी इस जल को पी करके, इस जल को पा करके अपने जीवन में तृप्ति का अनुभव कर सकते है। इस तरह से मानस में चार घाटों की परिकल्पना की गई और इसलिये आप एक सूत्र पाते है और

वही संकेत है। आप पढ़ते हैं कि यह राम कथा वह है जिसे भगवान शंकर ने पार्वती को सुनाया, श्रीराम का चरित्र वह है, जिसे कागभुशुण्डिजी ने गरूड़ जी को सुनाया, श्रीराम का चरित्र, जिसे महर्षि याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज जी को सुनाया और वही रामकथा जिसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने भाषा के माध्यम से हमें दिया। यद्यपि उन्होंने यही कहा कि मैंने अपने अन्तःकरण के सुख के लिए ही इसका निर्माण किया है, लेकिन उसे सबके लिये समान रूप से उन्होंने सुलभ किया। तो ये चार वक्ता, चार श्रोता, चार घाट या श्रीराम के ये चार भाई, श्रीराम, श्री भरत, श्री लक्ष्मण, श्री शत्रुहन या ये चार वृक्ष, इनका सांकेतिक तात्पर्य क्या हैं, इसका अभिप्राय क्या है, आइये प्रारम्भ में इस पर दृष्टि डालें। इस प्रसंग का सबसे बड़ा महत्व इस संदर्भ से जुड़ा हुआ है और आप एक अनोखी बात पावेंगे कि जब भगवान शंकर पार्वती जी को कथा सुनाते हैं तो उन्होंने कहा, पार्वती, मैं तुम्हें वह कथा सुना रहा हूं, जो भुशुण्डि ने गरूड़ को सुनायी थी। माना यह जाता है, कि भगवान शंकर मानस के रचयिता है, पर वे कहते यही हैं कि यह कथा वह है जो भुशुण्डिजी ने गरूड़ को सुनायी और भुशुण्डिजी यह सुनाते है कि हमने भगवान शंकर से या उनके माध्यम से महर्षि लोमश के द्वारा जो कथा सुनी थी वह मैं सुना रहा हूं और याज्ञवल्क्यजी भारद्वाज जी से कहते हैं, कि यह कथा वह है जिसे शंकरजी ने पार्वती जी को सुनाया। कैसे अनोखी बात है मौलिकता को लोग बहुत बड़ा गुण मानते है। जब कोई वस्तु नई हो तो लोग उसकी प्रशंसा करते हुए कहते है कि यह सर्वथा मौलिक कृति है और कृतिकार भी इस पर गर्व अनुभव करता है कि उसने कोई नई वस्तु दी है, मौलिक वस्तु दी है जो उससे पहले और किसी ने नहीं दी थी। लेकिन यहां तो ठीक उल्टी बात है। यहां तो भगवान शंकर जिन्हें हम आदि रचयिता मानते है, वह भी यह दावा नहीं करते कि मेरी बनाई हुई जो रामकथा है वह मैं सुना रहा हूं। इसका तत्व रामकथा का अनादित्व, अनंतत्व है। उसका तात्पर्य यह है कि वस्तुतः व्यक्ति जब तक अपने अभिमान से, अपने कर्तव्य से मुक्त नहीं होता और यह मानता है कि उसने रामकथा की रचना की है , रामकथा को एक नया रूप, नया दर्शन दिया है तो यह उसकी धृष्टता की पराकाष्ठा है। रामकथा तो अनादि और अनन्त है और स्वाभाविक रूप से मानों वक्ता ऐसा अनुभव करता है कि स्वयं

उसका इसमें कोई कर्तृत्व नहीं है, कोई पुरूषार्थ नहीं है, कोई योग्यता नहीं हैं। गोस्वामी जी ने तो इसका एक बड़ा मधुर रूप दिया। एक बात तो आप पावेंगे कि अनुवाद का कार्य भी महत्वपूर्ण तो हैं, पर अनुवादक को वह महत्व तो नहीं मिलता हैं जो लेखक को प्राप्त होता है, तो गोस्वामीजी चाहते तो अपने आपको इस रूप में प्रस्तुत करते कि उन्होंने रामकथा का निर्माण किया हैं क्योंकि वस्तुतः रामकथा के निर्माता के रूप में, इस रूप में हम और आप पाते तो यही हैं कि गोस्वामी जी ने इसकी रचना की। लेकिन गोस्वामी जी ने केवल अपने को अनुवादक के रूप में प्रस्तुत किया, निर्माता के रूप में नहीं। उन्होंने आदि में भी यही कह दिया। उन्होंने यह कहा कि जो रामकथा रामचरित मानस में कही गयी है वह-

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।।

(१-७)

"मैं उसका भाषा में अनुवाद मात्र कर रहा हूं, इसमें मेरा कोई कृतित्व नहीं हैं, मेरा कोई काव्य नहीं है और पूरे ग्रंथ का निर्माण करने के बाद भी फिर उन्होंने याद दिला दिया। इसको यह न सोच करके पढ़िये कि यह तुलसीदास की बनायी कृति है।"

भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् । (७ -उपसंहार)

तुलसीदास जी ने तो उसका भाषा में निर्माण किया। मुझे स्मरण आता है कई पंडितों की बुद्धिमत्ता, कि जब उन्होंने यह पढ़ा कि तुलसीदास जी ने कहा है, कि भगवान शंकर ने पार्वती को कथा सुनायी थी और उस रामायण को मैं भाषा में अनुवाद कर रहा हूं। तो ऐसा कोई ग्रंथ तो था ही नहीं और तब उन्होंने यह बड़ा अनोखा प्रयास किया। जितनी चौपाइयां, दोहे हैं, इन सबका संस्कृत में अनुवाद किया और कहा कि यही वह रामायण हैं कि जिसका अनुवाद तुलसीदास जी ने किया और वह मानस में लिखा भी गया। बाद में उन्होंने क्षमा याचना भी कर दी। क्योंकि जिन्होंने वह दावा किया था, जब वहां जाकर देखा तो वहां तो ऐसी कोई पंक्ति थी नहीं। उसका अभिप्राय यह है कि जिन सज्जनों ने यह प्रयास किया उन्होंने गोस्वामी जी को हमारा जो दर्शन, हमारी जा संस्कृति है,

जो हमारा सनातन धर्म है, उसकी मान्यताओं को न समझ पाने के कारण ही ऐसी चेष्टा की । मूलतत्व यह है कि जो ज्ञान है वह तो अनादि है। ईश्वर अनादि है और उस अनादि में आदि जो है वह तो व्यक्ति की अपनी एक परिकल्पना है। और उस परिकल्पना के आधार पर आप कहां से प्रारम्भ मानते है यह तो आपकी सुविधा से जुड़ा हुआ सत्य है। कोई वास्तविकता उसमें नहीं है।

......पर यह सचमुच आपकी विनम्रता है कि आपको कह दिया कि मैंने अनुवाद किया है। क्योंकि उस युग में तो ऐसे पण्डित नहीं थे कि जिन्होंने नकली अनुवाद करके यह कह दिया हो, कि इसी रामायण का अनुवाद तुलसीदास ने किया है। आप जब किसी की रचना की प्रशंसा करते हैं तो कहते हैं कि वह उसकी मौलिक रचना है और किसी व्यक्ति की बात अगर आपको ऐसी लगने लगे कि इसमें तो कुछ विशेषता नहीं, तो यूं कह देते हैं कि अरे यह तो तोता-रटंत है। जैसे तोते को जो पढ़ा दिया जाए उस पाठ को याद कर लेता है, इसी प्रकार से किसी व्यक्ति ने किसी पुस्तक से, किसी ग्रंथ से रट लिया है, इसमें कोई विशेषता नहीं। गोस्वामी जी से पूछा गया कि "आपकी ये मौलिक रचना है कि तोता - रटंत है?" गोस्वामी जी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया और वह उत्तर ऐसा था जो साधारणतया कोई व्यक्ति नहीं देना चाहेगा। उन्होंने कहा- यह तो बिल्कुल तोता-रटंत हैं। तब जो बात उन्होंने कही आप कवितावली रामायण की उन पंक्तियों में पावेंगे। स्वयं वह भगवान से ही बातचीत कर रहे हैं और बड़ा मधुर संकेत हैं। उन्होंने ये कहा कि, "प्रभु ! अन्य लोग मेरे विषय में कहते हैं इसका तो कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि दूसरे व्यक्ति जो कुछ मेरे विषय में कहते हैं, वह तो उनकी एक धारणा है, कल्पना है। प्रभु आपसे बढ़ करके यह जानने वाला कोई नहीं है कि यह तुलसीदास क्या है और तब उन्होंने जो पंक्ति लिखी वह बड़ी मधुर है, विनम्रता से भरी हुई है-

आपु हाँ आपुको नीके कै जानत, रावरो रामां भरायो गढ़यो।

(कवितावली ७-५६)

दो शब्द बड़े महत्व के हैं, बर्तन और भरना। जो बर्तन होता है वह गढ़ा जाता है और जब कोई वस्तु उसमें डाली जाती है तो 'भरना' उसको

कहते है। एक घड़ा है, कुम्हार के द्वारा उसको गढ़ा गया अथवा किसी स्वर्णकार या किसी कारीगर के द्वारा किसी धातु का बर्तन गढ़ा गया। तो गढ़ने के पश्चात फिर जब बर्तन बन गया, तो उसमें आप जो भी भरना चाहें -दूध, जल, अन्य कोई वस्तु या कोई उदार व्यक्ति हों तो उसमें कोई वस्तु आप दान के रूप में भर दें। जब साधारणतया मान्यता यह है कि मनुष्य की साधना का उद्देश्य है-अपने आप को गढ़ना।

जब वह मिट्टी है, उसमें आप कोई वस्तु नहीं रख सकते। पर उसी मिट्टी को अगर घड़े का रूप दे दिया जाए तो उसका स्वाभाविक परिणाम होगा कि उसमें जो वस्तु चाहे रख सकते हैं। साधना का उद्देश्य है " व्यक्ति को पात्र बनाना, व्यक्ति को योग्य बनाना।" व्यक्ति का निर्माण साधना के द्वारा किया जाता है और फिर साधना के द्वारा जब कोई व्यक्ति पात्र बना है तो उसके बाद वह भगवान् से यह निवेदन करता है कि आप अपनी कृपा के द्वारा इसको सम्पूर्णता प्रदान करें। स्वाभाविक है कि जब कोई व्यक्ति पात्र बन जाता है तो पात्र बनने के पश्चात् वह भगवान् के सम्मुख निवेदन करता है और भगवान् उस पात्र को भर देते हैं। किन्तु यहां पर गोस्वामी जी ने बड़ी मीठी बात कहीं। एक व्यक्ति ने कहीं से सुन लिया कि एक सज्जन हैं, जो बहुत मधुर गाय का दूध बांटते है, बिना मूल्य के बांटते हैं। उसके पास मूल्य देने की शक्ति नहीं थी। वह पहुंच गया और उन सज्जन से कहा कि "मैंने सुना है कि आप बिना मूल्य के दूध देते हैं तो मुझे भी दीजिए।" उदार सज्जन ने उनसे कहा, "ठीक है, मैं दूंगा, किन्तु उसे किसी बर्तन में लीजिएगा। आप बर्तन लाइए। आपके हाथ में तो कोई बर्तन नहीं दिखाई देता।" उस व्यक्ति ने कहा कि, "दूध के साथ क्या आप बर्तन नहीं दे सकते हैं? ऐसा करिए कि बर्तन भी दे दीजिए।"मानों यही है असमर्थ की साधना। समर्थ व्यक्ति पहले साधना के द्वारा अपना निर्माण करता है और भगवान् से कृपा की मांग करता है। पर गोस्वामी जी जैसा व्यक्ति कहता है कि, "महाराज यहां तो दूध ही नहीं, बर्तन भी आपको ही देना है। यहां पात्र बन करके मैं आपको पाऊं इसके स्थान पर अगर पात्र की आवश्यकता है तो पात्र का निर्माण भी आपके द्वारा ही होना है और इसका बड़ा मधुर संकेत आता है। "भगवान् श्रीराम के जो चरण हैं उन्हें पाने के लिए भक्त व्यग्र रहते हैं, महामुनि

व्यग्र रहते हैं, उनकी व्यग्रता को गोस्वामी जी ने एक विशेष रूप दिया। मानस के एक पात्र हैं महाराज जनक और दूसरे पात्र है केवट। वर्ण की, बुद्धिमत्ता और ज्ञान की दृष्टि से जनक श्रेष्ठ हैं। अब एक संकेत यह आता है कि भगवान् के चरण प्रक्षालन का सौभग्य दोनों व्यक्तियों को मिला। इन दोनों में तो सर्वथा भिन्नता है और तब उसका बड़ा मधुर सूत्र गोस्वामी जी ने दिया। जनक ने जिस पात्र में भगवान् का चरण धोया उसका भी वर्णन गोस्वामी जी ने किया -

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे।।
निज कर मुदित रायँ अरू रानी। धरे राम के आगें आनी।।
पढ़हि वेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरू जानी।।
बरू बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे लागे।।

(१-३२३-५)

सुन्दर दिव्य स्वर्ण का पात्र, जिसमें मणियों के द्वारा और सौन्दर्य की सृष्टि की गई, उसमें तीर्थो का जल ,उसमें नाना प्रकार की सुगंध डालने के पश्चात् महाराज जनक और महारानी सुनयना उस पात्र को ले जाते हैं और भगवान् श्रीराम के चरणों को पखारते हैं। दूसरी ओर केवट है केवट जब भगवान् का चरण धोता है तो वहां बड़ी ही अद्‌भुत बात है। भगवान् श्रीराम केवट के आग्रह को स्वीकार करते हैं और स्वयं अपनी ओर से आग्रह करते है। महाराज जनक से प्रभु ने यह अनुरोध नहीं किया था कि आप मेरा चरण धोइये। आग्रह ऐसे किया भी नहीं जाता। कोई सभ्य व्यक्ति दूसरे से नहीं कहेगा कि मेरा पैर धोइए और भगवान् श्रीराम का तो क्या कहना है, वह तो मर्यादा के घनीभूत रूप है, वे क्यों कहेंगे जनक से कि मेरा चरण पखारिए। जनक जी ने चरण पखारा। केवट एक ऐसा अनोखा पात्र है जिसने कहा कि चरण भी मैं तभी धोऊँगाा जब आप अपने मुख से कहिए कि मेरा चरण धोओ। यह केवट का भगवान् से आग्रह था। सारी बातें जनक की और केवट की अलग-अलग हैं। जनक जब बोलते हैं तो श्रीराम से कहते हैं कि श्री रामभद्र आप वह हैं, जिसको मन, बुद्धि, तर्क के द्वारा व्यक्ति नहीं जान सकता, अनुमान के द्वारा भी जिसको नहीं ग्रहण किया जा सकता है। मैं कितना सौभाग्यशाली हू कि वह मन, बुद्धि, वाणी से परे, जो ब्रह्म है, वह मेरे नेत्रों का विषय हो गया,

मैं उसका दर्शन कर रहा हूं। उन्होंने कहा-

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी।।
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एक रस रहई।।
नयन विषय मो कहुं भयउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भएँ ईसु अनूकूल।।
(१-३४१)

यह रचना है महाराज जनक की। केवट की वचन रचना से तो आप परिचित हैं। उसका भाषण तो यहीं से प्रारम्भ होता है। प्रभु कहते हैं कि मुझे पार जाने के लिए नौका की आवश्यकता है, तुम नौका ले आओ और केवट कह देता है, मैं तो नहीं लाऊँगा। इतना कह करके ही चुप हो जाता तो बात और थी। उसने यह भी कहा कि नहीं-नहीं यह न समझियेगा कि मैं आपको पहचानता नहीं। ऐसा भी हो जाता है। कभी कोई बहुत बड़ा व्यक्ति जा करके नदी के किनारे खड़ा हो ओर केवट, नौका चलाने वाला, उसको नहीं जानता है। अगर कोई धीरे से बता दे कि तुम ध्यान रखना यह वह पदाधिकारी है, तो स्वाभाविक ही वह व्यक्ति बिचारा सहम जायेगा, सहम करके कहेगा कि क्षमा कीजिएगा। मैं आपको जानता नहीं था। पर केवट? जब उसने कहा कि मैं नाव नहीं ले आऊंगा, तो लक्ष्मण जी को लगा कि शायद यह पहचानता नहीं है कि ये कौन हैं। पर अगला वाक्य सुनते ही लक्ष्मण जी चकित हो गये, हैरान रह गये। उसने कहा कि "मैं इसलिए नाव नहीं ले आऊंगा कि आपका मर्म मैं अच्छी तरह जानता हूँ।" ठीक उल्टी बात हो गई। जनक कहते हैं। "जिसे कोई नहीं जान सकता है।" केवट कहता है मैं तो जानता हूं। मैंने यह सुना है कि आपके चरणों में कोई औषधि है जो प्रस्तर शिला को भी नारी का रूप दे देती है। मेरी नौका तो काठ की है, जल में रहते-रहते और भी कोमल हो गई है। कहीं आपके चरणों की धूल के स्पर्श ने इसे भी नारी बना दिया तो महाराज मैं गया काम से। अगर आप यह कहेंगे कि एक सुंदरी पत्नी मिलेगी, तो मैं उस परिवार से ही परेशान हूं जो अभी है। आप एक और वृद्धि कर देंगे तो महाराज-

पात भरी सहरी सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कुछ वेद ना पढ़ाइहौं।

सब परिवार मेरो याही लाग राजा जू,
हौं दीन वित्त हीन, कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।

(कवितार-८)

महाराज मुझमें शक्ति नहीं है कि दूसरी नौका गढ़ा सकूं। ऐसी स्थिति में आप अगर उतावले ही हो रहे हों, जाने की लिए, तो मैं इतना ही कर सकता हूं कि आपको नाव पर पार तो 'उतार दूं' पर उसके पहले मैं चरण धोऊँ.. और चरण धोने के बाद आपको नौका पर बैठाऊँ.. और आपको पार उतार दूं..। पर मैं चरण भी धोऊंगा कि जब आप अपने मुख से कहें कि मेरे चरण धोओं। केवट की भाषा लगती तो अभिमान से भरी है पर केवट अभिमानी है क्या? ऐसा कुछ नहीं है। केवट की जो विनम्रता है, वह उसकी वाणी मे दिखाई दे रहीं है। लगता है कि वाणी में अभिमान है, पर नम्रता की पराकाष्ठा है। केवट कह रहा है कि मैं आपका मर्म जानता हूँ। अभिमान है कि नम्रता है, और सचमुच यह तो नम्रता ही है। किस अर्थ में? आप इस पर विचार करके देखें-वहां इस सूत्र पर दृष्टि डालें कि भगवान का मर्म कोई नहीं जानता। ये सारे शास्त्र, वेद, मुनि, पुराण कहा करते हैं कि भगवान को जानना असंभव है। पर कोई जानता है कि नहीं स्वयं तुलसीदास जी कहते हैं कि-

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेऊ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहिं को जाननिहारा।।

(२-१२६-१)

ब्रह्मा-विष्णु-शंकर भी यह दावा नहीं कर सकते कि मैंने आपके मर्म को, रहस्य को, जान लिया है तो फिर कौन जान सकता है? पर उसके साथ-साथ उन्होंने एक सूत्र दे दिया-इसका अर्थ यह नहीं कि कोई नहीं जान सकता। कौन जान सकता है? और तब महर्षि वाल्मीकि का यह वाक्य तो आपने पढ़ा ही होगा -

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।

(२-१२६-३)

जिसको आप जना देते हैं वही जानता है। केवट ने जब कहा कि मैंने आपका मर्म जान लिया तो उसका यह अर्थ था कि महाराज अगर मैं वेद, शास्त्र, साधना के द्वारा आपको जानना चाहूँ तो नहीं जान सकता।

लेकिन फिर भी यदि मैं दावा करता हूं कि मैंने जान लिया तो आपने जनाया होगा तभी तो मैंने जाना होगा और जनाने की व्यग्रता तो स्पष्ट दिखाई दे रही है। मैंने निमंत्रण नहीं दिया। आप साक्षात् ब्रह्म हैं, आप चाहें तो एक क्षण में विराट रूप बना करके नदी को पार कर सकते हैं। पर जब आप आ करके खड़े हो गये और मुझसे कहने लगे कि, "केवट मुझे तुम्हारी नौका की आवश्यकता है", तो मुझे स्पष्ट लगने लगा कि आप जनाने के लिए बेचैन हो रहे हैं। तो आपने जनाया होगा तभी मैंने जाना होगा। मानो प्रभु मैं अपने ज्ञान से कैसे आपको जान सकता था, पर आपने यह दिखा दिया कि बड़े से बड़े महामुनि भी अपनी योग्यता से आपको नहीं जान पाते वहीं आप जिसे जना देते हैं वही जानता है। वही विलक्षणता है आपकी, कि आपने चुनाव ऐसे व्यक्ति का किया। आप देखें कोई जब विशिष्ट योग्यता वाला होता है और उसे सम्मान मिले तब वह समझता है कि यह तो मेरी कृति का, मेरी योग्यता का ही परिणाम है। पर केवट का अभिप्राय था कि प्रभु मैंने कोई साधना की होती आपके दर्शन के लिए, आपको पाने के लिए और उसके बाद यदि आप आते तो और बात थी, अब मुझे नहीं लगता कि यह मेरी साधना का परिणाम सामने दिखाई दे रहा है। पर यह मानस में आता है कि जब महामुनि भगवान् को देखते हैं तो उनको यही लगता है, शब्द आपको मानस से मिलेगा- ये जो मुनि हैं-

साधन सकल सुफल करि लेखइ।

जैसे आपने परिश्रम पूर्वक कोई वृक्ष लगाया और आगे चल करके जब वृक्ष में फल निकलता है तो आपको कितनी प्रसन्नता होती है और आपको लगता है कि इतने दिन का जो परिश्रम था, आज सार्थक हो गया। तब मुनियों को स्पष्ट लगता है कि यह मेरी साधना सुफल है। केवट का तात्पर्य है कि जिस व्यक्ति ने कभी वेद पाठ नहीं किया, जप नहीं किया, तपस्या नहीं की, साधना नहीं की और इसके बाद भी आप अनामंत्रित बिना निमंत्रण के ही आकर खड़े हो गये, तो प्रभु मैं कहां? अगर योग्यता के द्वारा, साधना के द्वारा यह मैंने पाया होता तो हम दावा करते कि मैंने साधना की, उसका फल मिला। पर आप आये, आपने आकर स्वयं मुझसे नाव मांगी और अगर कोई केवट से पूछ दें कि "तुमने भगवान् से यह क्यों नहीं कह दिया कि म आपके चरण धोना

चाहता हूँ '', तो केवट का तात्पर्य यह है कि यह अधिकार मुझे है क्या ? जिन भगवान् के चरण को पाने के लिए -

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मद् त्यागी।।

(१-३४०-५)

सब कुछ छोड़ने के बाद भगवान् के चरण की याचना भक्त किया करते हैं, ज्ञानी किया करते हैं और वह केवट जिसने यह कहा कि महाराज मुझे आपसे अधिक चिन्ता तो अपने परिवार की है कि उसका पेट कैसे भरूंगा। ऐसा न करिए कि आपका आगमन हो और मेरा परिवार कल से भूखा रहे। वाणी में अभिमान लगता है, पर उसमें विनम्रमता की पराकाष्ठा है। मैं किस मुख से मांगू कि आप अपना चरण दे दीजिए। आप ही अपनी ओर से चाहें तो कह सकते हैं। आप जब अपनी ओर से मांग करेंगे तो अपनी योग्यता बतायेंगे। पर सामने वाला जब देता है तो अपनी योग्यता से देता है, सामने वाले की योग्यता से नहीं। जो योग्य हो ढूंढ करके देता है, सामने वाले की योग्यता से नहीं। जो योग्य को ढूंढ करके देता है, वह ठीक है। मानों केवट का अभिप्राय यही था कि प्रभु, मैं अगर जानने का दावा करता हूं तो इसलिए कि आपने ही जना दिया होगा। अगर मैं यह नहीं कह पा रहा हूं कि मैं आपका चरण चाहता हूं तो इसलिए कि मुझे मांगने का कोई अधिकार नहीं। पर अगर आप चाहें तो मुझे चरण धोने का आदेश दीजिए और वह भगवान् जो महाराज जनक से नहीं कहते हैं कि मेरा चरण पखारो, यहां केवट से स्वयं कहते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं, धन्य है जनक ,जिन्होंने भगवान् के चरणों का प्रक्षालन किया। पर केवट से भगवान् राम उसकी वाणी सुन करके बहुत आनन्दित होते हैं, बड़ा रस लेते हैं। उसमें श्रीसीताजी और श्री लक्ष्मण जी रस भी नहीं ले पाते हैं। लक्ष्मण जो और सीताजी को कोई आनन्द नहीं आया। उनको तो यही लाग कि ऐसा ढीठ व्यक्ति तो आज तक कोई मिला ही नहीं था जो इस तरह से हमारे प्रभु को खड़ा रखे और ऐसे वाक्य कहे। गोस्वामी जी को भी लिखना पड़ा कि—

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करुनाऐन...

(२-१००)

और जब देखा कि हमारे दोनों साथी हंस ही नहीं रहे हैं तो उनकी

ओर देखने लगे कि क्या तुम्हें आनन्द नहीं आ रहा?

.... **बिहँसे करुनाऐन, चितइ जानकी लखन तन।**

यहां मानों संकेत यह है कि तुम शब्दों को सुन करके उल्टा अर्थ ले रहे हो पर तुम गहराई से विचार करके देखो तो ऐसा लगेगा कि इतना विनम्र व्यक्ति तो कोई दूसरा हो ही नहीं सकता है और भगवान् श्रीराम को इसलिए कहना पड़ा-

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोई करु जेहिं तव नाव न जाई।।

(२-१००-१)

अच्छा भाई, वही काम करो जिसमें करो जिसमें तुम्हारी नाव न जाए। बड़ी विद्वत्ता भरी सांकेतिक भाषा थी। वहीं काम करो, जिससे नाव न जाए। पर प्रभु यह देख करके मन ही मन मुस्कुराए भी कि केवट तो उठ ही नहीं रहा। केवट क्यों नहीं उठा? महाराज आप क्या किसी विद्वान् मुनि से बातचीत कर रहे हैं? आपकी घुमावदार भाषा तो वही लोग समझ सकते हैं। अब आपने कह दिया वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न जाए तो एक उपाय तो यही है कि आप जाइये ही नहीं, जाइयेगा नहीं तो भी मेरी नाव नहीं जाएगी। आप अगर यहीं रहें तो इससे बढ़कर प्रसन्नता क्या होगी और मैंने आपसे कहा था कि अगर आपको नाव में चढ़ने से संकोच हो तो यहां पर गंगाजी में थोड़ी दूर पर एक ऐसी जगह है कि जहां जल बहुत थोड़ा है। गोस्वामी जी कवितावली में कहते हैं- केवट के शब्दों में-

एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै, कटि लौं जल थाह दिखइहौं जू।

(कवितावली २-६)

वहां केवल कमर तक जल है। न चरण धुलाना पड़ेगा, न कोई और समस्या होगी, आप पार भी जा सकते हैं। तो नाव न जाने के उपाय तो कई हैं और आप जिस भाषा में बोल रहे हैं वह तो पंडितों वाली भाषा है। मैं गंवार आपके श्रीमुख से तो सीधी बात सुनना चाहता हूं कि आपको कौनसा उपाय प्रिय है और तब प्रभु का जो वाक्य है कितना अनोखा है-

बेगी आनि, — शीघ्रता कीजिए, काहे के लिए? बोले- **जल पाय पखारू।**

जल्दी से जल ले आकर के मेरा पैर धो लो- और क्या-

बोले-होत विलंब उतारहि पारू।।

(२-१००-२)

बहुत विलंब हो गया, मुझे पार जाना है, तुम जल ले आ करके हमारे चरण धो दो। इतने खुले शब्दों में प्रभु ने कभी किसी से नहीं कहा कि भई जल्दी से मेरा चरण धोलो। या तो भक्त प्रार्थना करेंगे कि महाराज जल्दी कृपा कीजिए पर यहाँ तो भगवान् ही कह रहे हैं और तब सूत्र आता है कि किस वस्तु से उसने पखारान। मानो जनक का प्रसंग यह बताता है कि हम पात्र बनेंगे तो भगवान को, भगवान का पद पा सकेंगे और केवट का प्रसंग यह बताता है कि उसने कोई बर्तन नहीं ढूंढा। उसने नाव में पड़ा हुआ काठ का कठौता, वह कोई चरण धुलाने के लिए, धोने के लिए नया नहीं बनवाया गया था। वह तो नित्य ही नाव में से जल उलीचने के लिए केवट रखा करते हैं। उसने बड़ा मधुर संकेत किया। बोला, महाराज जिसके द्वारा आज तक मैं जल उलीचता था आज उसके द्वारा उसमें मैं जल लूंगा। जल भी क्या ले आया, तीर्थों से । वहीं गंगा जी की धारा सामने बह रही है। केवट की नौका में कठौता है, उसी कठौते में जल लेकर चला आया। मैं नहीं आग्रह करता कि पात्र को आपका चरण मिलता है। मुझे तो लगता है कि आप जिसको चरण दे रहे हैं वही पात्र बन जाता है। व्यक्ति के पास क्या वस्तु है, जल भी आपका, कठौता भी आपका, नाव भी आपकी। मानो यह जो विनम्रता केवट की है इसका अभिप्राय यह है कि वस्तुत: व्यक्ति अगर यह अनुभव कर सके जैस केवट ने अनुभव किया-जिन लोगों में विशेषता होती है, उन्हें अनुभव करना बड़ा कठिन है, पर यदि होने लगे कि प्रभु हम तो आपको रंचमात्र किसी प्रकार से प्रसन्न करने योग्य नहं हैं, कोई गुण मुझमें नहीं है, उसे ही सौभाग्य मिलेगा और तब गोस्वामी जी ने यही लिखा। उनसे पूछा गय कि, " महराज ये कैसा उल्टा विचित्र न्याय है कि जनक और केवट में कोई समानता नहीं है और दोनों प्रभु ने चरण दे दिया।" गोस्वामी जी ने कहा सब समानता भले ही न हो पर एक समानता है और वह समानता क्या है? जनक जब चरण धोने लगे तो गोस्वामी जी ने लिखा-

बर बिलोकि दम्पति अनुरागे।

(२-३२३-८)

अनुराग भरे हृदय से भगवान् का चरण उन्होंने धोया और केवट में चाहे और कुछ न हो पर इसमें वह जनक से पीछे नहीं हैं क्योंकि-

केवट राम रजायसु पावा।

पानि कठवता भरि लेइ आवा।

अति आनन्द उमगि अनुरागा।

(२-१००-६)

अनुराग में कहीं से केवट जनक से पीछे नहीं और

"चरन सरोज पखारन लागा।

भगवान् के चरणों का प्रक्षालन करता है वह केवट और उसने जो विनम्रता की बात कही, उतर करके प्रभु के चरणों में प्रणाम किया, और प्रभु उतरे, उतराई देने लगे तो केवट ने चरणों को कस के पकड़ लिया और पकड़ करके यही कहा कि-

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा।।

(२-१०१-६)

आज आपने मुझे क्या नहीं दे दिया मेंरे जीवन के सारे दोष, सारा दुःख सारी दीनता आपने मिटा दिया। मानो संकेत ये हैं कि जब आप कोई वस्तु बाजार से खरीदने जाते हैं, तो आप देख लेते हैं, अपनी जेब की ओर कि उसमें कुछ है, कितना है और कितना खरीदेंगे और जब केवल यह मालूम पड़े कि नहीं वहां दाम से नहीं लेना है, बिना दाम के भी मिल सकता है तो अपनी जेब क्या देखें और तब तो यही कह सकते हैं। अगर पूछे तुम्हें क्या चाहिए, तुममें क्या योग्यता है, तो वह दीन अपने आपको मानने वाला यह कहेगा कि "महाराज योग्यता तो आपमें कितनी है देने की, आप जाने, पर मुझमें तो लेने की जैसी कोई योग्यता है नहीं।" यह जो दोनो पक्ष हैं, गोस्वामी जी ने इनकी ओर संकेत किया। गोस्वामी जी ने कहा प्रभु तुलसीदास जी के जीवन में केवल भरने की ही बात नहीं है। गोस्वामी जी की रचना में तो शब्द का जो क्रम है वह भी बड़े महत्व का है। नियम यह है कि पहले बर्तन गढ़ा जाता है और बाद में उसमें भरा जाता है पर गोस्वामी जी कहते हैं-

"आपु हौं आपु को नीकें कै जानत,रावरो राम भरायो गढ़ायो "

(कविता० ७-६०)

उल्टा हो गया शब्द तो बदलना बड़ा ही सरल था वह लिख सकते थे "राम तिहारौ गढ़ायों भरायो " पर उन्होंने भरायो गढ़ायो-मानों संकेत ये था कि आप जब भरने के लिए प्रस्तुत हुए तो आपने देखा कि इसके पास बर्तन तो है ही नहीं, तो आपने मुझे गढ़ा भी और गढ़ करके उसे कृपा से ओत प्रोत कर दिया, वह भर दिया। इसलिए उन्होंने कहा जब लोग यह कहते हैं, जब कोई व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से उन्नति करता है, तो ये प्रश्न तो होते ही हैं कि आपने उन्नति की है सावधान रहेंगे, तो आप उन्नति के शिखर पर रहेंगे और नहीं तो फिर आपका पतन भी हो सकता है। गोस्वामी जी ने कहा, मुझे क्यों चिंता हो-

"आपु हौं आपु को नीकें कै जानत, रावरो राम भरायो गढ़ायों "

(कविता० ७-६०)

और फिर उन्होंने उत्तर दिया यहां तो तोता-रटंत है। तोता-रटंत में गोस्वामी जी ने एक नया रस दे दिया, नया अर्थ दे दिया। तोते के मुख से सुनकर व्यक्ति यह जानता है, कि तोता स्वयं तो ऐसा बोल नहीं सकता। इसको किसी न किसी ने पाठ पढ़ाया होगा और अगर कोई बढ़िया पाठ पढ़ाने वाला है तो उसने श्लोक या कोई सुन्दर पाठ तोते को पढ़ा दिया होगा। गोस्वामीजी ने कहा, " प्रभु ! तुलसीदास तो तोता है, पर तोते को देख कर लोग अगर तोते को ही देखते रहे तो बुद्धिमानी नहीं।" तोते को देख कर अगर लोगों के मन में यह प्रश्न आ जाए कि इस तोते को पढ़ाने वाल कोई है, इतनी बड़ी रामकथा का पाठ यह सुना रहा है और तब उन्होंने शब्द वही कहा कि-

कीरु जो नम रटै तुलसी, सो कहे जगु जानकी नाथ पढ़ायो।।

इस तुलसीदास के रूप में जो तोता है यह तो राम का पढ़ाया हुआ तोता है। कितना सौभाग्यशाली वह होता होगा जिसे राम पढ़ावें। वह तोता या तो केवल बुद्धिमान व्यक्ति है, पर स्मरणशक्ति तो सदा एक जैसी नहीं रहती है और इसलिए गोस्वामीजी का मानों सूत्र यह था, उनका तात्पर्य यह था कि असमर्थ से असमर्थ व्यक्ति भी और वही अंतिम पंक्ति में उन्होंने कहा—

सोई है खेदु जो वेद कहैं, न घटै जनु जो रघुबीर बढ़ायो।।

क्यों ? बोले—

हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयन्त चढ़ायो।

(कविता० ७-६०)

मैं तो गधे का सवार था लेकिन आपके नाम ने ही मुझे आज इस सम्मान के हाथी पर बैठा दिया है। महाराज! उतरूंगा तो मैं थोड़े ही उतरूंगा। वो तो आपके नाम की महिमा उतरेगी, इसकी चिन्ता आपको होनी चाहिए मुझे चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। इस तरह से मानों गोस्वामी जी यह सूत्र देना चाहते हैं कि हमारे श्रीराम का चरित्र और उसकी कथा समाज में सभी के लिए है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, ऐसा कोई वर्ग नहीं है, कोई ऐसा नहीं है कि जिसके लिए समान रूप से उपयोगी न हो, कल्याणकारी न हो, उपादेय न हो और इसीलिए उस संदर्भ में थोड़ा आप दृष्टि डालेंगे। भुशुंडि ने कहा और हंसों ने सुना और हंसों ने ही नहीं, भगवान शंकर ने भी स्वयं हंस बन करके सुना है। फिर एक बड़ा सुंदर प्रसंग आता है गरुड़ जी जब आकर भुशुण्डि से कहा-मुझें सांप ने काट लिया है भुशुण्डि जी ने कहा, महाराज आप कैसी विरोध की बात कर रहे हैं गरुड़ को और सांप काट ले-हां भाई-और सांपों को तो मैं मिटा देता हुं पर इस सांप ने तो मुझे डस लिया है। कौन सांप? बोले-

संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता।।

(७-६२ख-६)

संशय के सांप ने मुझे डस लिया है और बड़ी मीठी बात कही है-गांव की एक भाषा है। वह जो विष सर्प का चढ़ता है तो उसमें विचित्र क्रम होता है, चढ़ा, फिर रुका, फिर चढ़ा-तो उसको ग्रामीण भाषा में कहते हैं "लहर"। सांप ने डस लिया है और मुझे लहर उठ रह है-लहर कौन सी उठ रही है-बोले—

दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।

जब संशय के साथ कुतर्क आ जाये मन में, बड़ा सुंदर सूत्र है- तर्क माने-अगर कोई व्यक्ति यह समझ ले कि हां, मुझमें संशय है, मुझमें ये कमी है तब तो उसका समाधान हो जायेगा। पर व्यक्ति अगर संशय के पक्ष में कुतर्क भी करने लगे तो सर्प का विष चढ़ता ही जा रहा है। उन्होंने कहा यहां पर दोनों ही हो रहा है-

संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता।

(७-६२ख-६)

कुतर्क की लहरें उठ रही हैं क्योंकि सच्चे गरुड़ तो आप हैं, आज मैंने आपका दर्शन किया और आपने उस संशय के विष से मुझे मुक्त कर दिया। बड़ा गर्व हो सकता था भुशुण्डि जी को आज तो गरुड़ का भी विष मैंने उतार दिया। पर उन्होंने गरुड़ जी से कहा कि "पक्षिराज आप जानते हैं कि आप क्यों आये हैं? आप संशय के द्वारा ग्रसित होकर के आए हैं?- बिल्कुल नहीं। आपको भगवान ने भेजा है- " उन्होंने तो नहीं कहा मुझसे आने के लिए - और फिर मुझे आपके पास क्यों भेजेंगे - उन्होंने कहा, वस्तुतः प्रभु को यह लगा होगा कि ज्ञानी लोमश जी ने हमारे भक्त को कौआ होने का शाप दे दिया तो कौआ रहे लेकिन कौआ रहने पर ज्ञानी हंस भी सुनने आवे तो पता चलेगा कि भक्त भले ही काक दिखाई दे रहा है, पर ज्ञानी हंस भी वहां श्रवण करते है। फिर भी प्रभु को संतोष नहीं हुआ कि सारे पक्षी तो पहुंच गये पर जब तक पक्षिराज भी न बैठ जायें, सुनने के लिए, श्रोताओं, तब तक मेरी भक्ति की महिमा को प्रकट करने के लिए आपमें संशय का उदय करा दिया है और यही उन्होंने कहा आज जो हैं आप-

पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही।।

(७-६२ख-६)

ये जो सूत्र हैं और इस संदर्भ में दो तीन बातों की ओर दृष्टि डाल लेना चाहिए। पक्षी को आप दो अर्थों में ले, पक्षी माने जो आकाश में उड़ने वाला, पंखवाला है वह पक्षी और दूसरी दृष्टि से देखें तो पक्षी का अर्थ है जिसके मस्तिष्क में, मन में, जीवन में किसी प्रकार का पक्षपात है वह पक्षी है। इस अर्थ में यहां जितने बैठे हुये हैं, वे सब पक्षी ही होंगे। अभी मैं नहीं जानता कि कौन कौन सा पक्षी है लेकिन होंगे तो सब पक्षी ही। रामायण में एक बड़ी मधुर शैली का गोस्वामी जी ने उपयोग किया, पक्षियों का वृक्षों का। इनका अर्थ, शैली का गोस्वामी जी ने उपयोग किया, पक्षियों का वृक्षों का। इनका अर्थ, सांकेतिक अर्थ बड़ा मधुर होता है। जब भगवान् श्रीराम वाटिका में जाते हैं तो गोस्वामी जी गिनाते हैं-

"चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग टत कल मोरा"

(१-२२६-५)

चातक, कोयल, चकोर ये प्रभु को देख करके गाने लगे और मोर नाचने लगा। वाटिका में प्रभु का स्वागत हुआ पर गोस्वामीजी को यह ध्यान बना हुआ है कि ये पक्षी जो हैं इन सबमें कोई न कोई विशेषता है और तब आप गोस्वामी की शैली पर विचार कीजिए। उन्होंने ऐसे दो पक्षियों का चुनाव किया जो सब पक्षियों में नीचे माने जाते हैं और वे हैं- गिद्ध और कौआ। अब गोस्वामीजी जी जो बताना चाहते हैं वह यह है कि नहीं-नहीं जनक की वाटिका के पक्षी बड़े उत्कृष्ट हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिन्हें हम श्रेष्ठ पक्षी नहीं मानते और तब गोस्वामीजी श्री राम की वन यात्रा में इन दोनों पक्षियों-कौआ और गिद्ध का वर्णन करते हैं। गिद्ध का आप वर्णन पढ़ते हैं। भगवान् श्रीराम जिन्हें पिता के समान सम्मान देते हैं, उनको प्रभु स्वयं अपने हाथों से तिलांजलि देते हैं। गिद्ध को गोदी में ले करके प्रभु प्रार्थना करते हैं-

मेरे जान तात! कछू दिन जीवै''

(गीतावली ३-१५)

"मैं चाहता हूं कि आप और कुछ दिन जीवित रहें और मैं पुत्र के रूप में सेवा कर सकूं और आप सेवा लें मुझसे।" यह सब आग्रह प्रभु ने गिद्ध से किया। यह जो कौआ है वह तो बड़ा ही अद्भुत है। जब महर्षि लोमश ने शाप दे दिया, भुशुण्डि शर्मा मैंने ही तुझे योग्य समझ करके, वैराग्यवान् समझकर, ज्ञान का उपदेश दिया, पर तेरे हृदय में दुराग्रह है पक्षपात है, तू विद्वान् ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं है। मैं शाप देता हूँ-

सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। सपदि होसि पच्छी चण्डाला।।

(७-१११ख-१५)

"पक्षियों में जो भी चाण्डाल पक्षी है, कौआ है वह तू हो जा, मेरा शाप है" लोमश जी को पूरा विश्वास था कि इस शाप को सुनकर भुशुण्डि व्याकुल होकर चरणों में गिर पड़ेंगे- महाराज कृपा करो, इस शाप से कैसे मुक्ति मिलेगी? पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। भुशुण्डि कौए के रूप में तो परिणत हो गए, बदल गए लेकिन उन्हें न किसी प्रकार का भय है, न दीनता है। मुनिजी के चरणों में प्रणाम किया, सिर झुका करके। जब उड़ने लगे तो लोमश जी से नहीं रहा गया- यहां आओ-बैठा लिया और कहा कि मैंने तुम्हें कौआ बना दिया पर तुम्हें क्या यह नहीं लगा कि ये

कितना बड़ा अभिशाप है? उन्होंने कहा, नहीं महाराज, मैंने तो ऐसा अनुभव किया कि आपने मेरे प्रश्नों का भले ही खण्डन किया हो पर आपने तो ऐसा उपाय कर दिया कि मुझे भगवान् की प्राप्ति बहुत सरलता से हो जाए। ब्राह्मण के रूप में मैं अगर अयोध्या की यात्रा करता तो कितने दिन लग जाते। पर अब आपने पक्षी बना दिया है। चलकर जाने की कोई आवश्यकता नहीं। उड़ करके पहुंच सकता हूँ। महाराज पक्षी भी कितना अच्छा बना दिया-हंस बना दिया होता, तोता बना दिया होता और कोई अन्य पक्षी बना दिया होता तो अवश्य अयोध्यावासी कहते, नया पक्षी आया है, इसको सोने के पिंजरे में बन्द कर दो, पक्षी बनाया तो कौआ जिसको कभी कोई पाता नहीं और कौआ ही ऐसा पक्षी है जो कि घर में बिना पूछे चला जाता है। कितनी बड़ी कृपा आपकी है कि आपने भगवान के पास पहुंचने का सबसे सुगम, सबसे सरल मार्ग मेरे जीवन के लिए बता दिया और कितना सौभाग्य है। जब मैं ब्राह्मण बन कर जाता तो क्या वह सौभाग्य मुझे मिलता जो बाद में मिला। ब्राह्मण बन कर जाता यह तो हो सकता था कि दशरथ जी बड़े आसन पर बैठा करे नाना प्रकार के व्यंजन परोसले और भुशुण्डि शर्मा उसका भोजन करते पर यहां तो जो भोजन मिल रहा है-कौनसा-

लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं तहं तहं उड़ाउँ।
जूठन परइ अजिर मँह सोइ उठाइ मैं खाउँ।।

(७-७५क)

भगवान राम का जो प्रसाद, भगवान राम की जो जूठन मिल रही है, क्या मैं ब्राह्मण के रूप में उसे पा सकता था ? यह श्रीरामचरितमानस में जो चार घाटों की चार वक्ताओं की बात कही गयी उसका मूल तत्व यह है कि राम कथा केवल ज्ञानी के लिए ही नहीं है, केवल भक्तों के लिए नहीं है या केवल कर्मयोगियों के लिए ही नहीं है। यह तो असमर्थ से असमर्थ जो पक्षी ह, वह भी उससे धन्य हो सकते हैं। भुशुण्डि को पक्षी बना दिया पर पक्षी बन करके किस तरह से वह सुमेरु पर्वत पर निवास करते हैं। बल्कि सच बात तो ये है कि लोमश जी को इतना पश्चाताप हो गया शाप दे देने के बाद। यह आप पूरे रामचरित मानस में ढूंढ लीजिए, किसी को उतने आशीर्वाद प्रभु ने नहीं दिए न किसी और को साधना के

द्वारा मिला जैसा कि लोमश जी ने भुशुण्डि जी को दिया—पश्चाताप था क्यों—मैंने शाप दे दिया। अब शाप के साथ क्या दूँ? कोई ऐसी वस्तु न रह जाए कि जिसे मैं दे न दूँ। तब कह दिया—ज्ञान, योग, वैराग्य, सब तुम्हें प्राप्त हो जाएगा। श्रीराम के चरित्र के जो विविध रहस्य है, वह सब तुम्हें ज्ञात हो जावेंगे और इतना ही नहीं यह आशीर्वाद तो केवल भुशुण्डि जी को प्राप्त है और किसी को नहीं। क्या ? बोले-

"जेहि आश्रम तुम बसब पुनि, सुमिरत श्री भगवंत।
व्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजन्त।।"

(७-११३ख)

जहाँ पर तुम निवास करोगे वहां से चार कोस तक अविद्या माया, मोह, अहंकार, संशय, भ्रम का प्रवेश ही नहीं होगा। जो व्यक्ति तुम्हारे आश्रम के आस पास चार कोस में भी चला जाएगा उसके सारे संशय, भ्रम का निवारण हो जाएगा। ऐसा वरदान केवल भुशुण्डि जी को ही प्राप्त है अन्य किसी को प्राप्त नहीं है, और वह प्राप्त है उस व्यक्ति को जिसमें अत्यंत निरभिमानता है, दैन्य है और जहां भगवान् शंकर भी कथा सुन करके धन्यता का अनुभव करते हैं, आनन्द का अनुभव करते हैं। भुशुण्डि जी को जो आशीर्वाद मिला है, वह दुर्लभ है-

महा प्रलयहु नास तव नाहीं।

(७-६४-३)

महाप्रलय में भी तुम्हारा विनाश नहीं होगा। यह भी एक असंभव वरदान था जो भुशुण्डि जी को मिला। अब वह समय कैसे व्यतीत करते थे इसका वर्णन किया गया और ये जो चार वृक्ष हैं, जैसा मैंने पहले आपसे कहा कि रामायण में चार के अंक के द्वारा बहुत कुछ कहा गया है। चार घाटों की बात भी कही गयी है, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और उसको पवित्र करने वाली साधनाओं का भी संकेत किया गया है। इस संदर्भ में भुशुण्डि जी चार वृक्षों के नीचे चार प्रकार की साधना करते हैं। आजकल बड़ी चर्चा रहती है समाचार पत्रों में, पत्रिकाओं में कि आज का जो वातावरण है, बड़ा प्रदूषित हो गया है। वैज्ञानिक भी चिन्तित हैं कि भविष्य में क्या होगा? वैज्ञानिकों को यह दिखाई पड़ रहा है कि सूर्य की किरणों में जो विषैले तत्व हैं उसको रोकने के लिए पृथ्वी और सूर्य के बीच में एक ओजोन पर्त है जिसके द्वारा वे किरणें मनुष्य पर घातक प्रभाव नहीं डाल पाती। पर इन वर्षों में अनुभव किया गया कि उस

ओजोन पर्त में छिद्र हो रहा है और चिन्तित वैज्ञानिक यह सोचने लगे हैं कि अगर इसी प्रकार से वातावरण में प्रदूषण बढ़ता गया और ओजोन पर्त कहीं नष्ट हो गयी, तब तो सारी मानव जाति का, सारी पृथ्वी का विनाश निश्चित है और तब बहुत बार आग्रह किया जाता है कि इस प्रदूषण को रोकने का उपाय क्या है। अनेक उपाय हैं। वनों का लगाना। वृक्ष काटे जा रहे हैं, उन्हें फिर से लगाया जाना चाहिए। इसका अभिप्राय है कि यह जो आज प्रदूषण है, वह भी व्यक्ति की उन्नति की देन है, विज्ञान ने इतनी उन्नति के साथ अगर बहुत सी वस्तुएं दी हैं तो उसके भयानक परिणाम भी दिए हैं और केवल वह सत्य प्रकृति का ही नहीं है। हमारे आपके जीवन में भी जब उन्नति होती है, तो उन्नति के साथ प्रदूषण बहुत आने की संभावना रहती है। बाहर का प्रदूषण मिटे उसके लिए तो वृक्ष लगाने चाहिए, पर बाहर जो प्रदूषण है मिटे, और भीतर प्रदूषण बढ़ता जाए तो? इसलिए भीतर भी वृक्ष लगाइये और वृक्ष लगाने के लिए चार वृक्ष अगर किसी के अन्तःकरण में लगे हुए हों और चार साधनाओं के द्वारा अन्तःकरण का प्रदूषण, अन्तःकरण में जो घुसने वाले नाना प्रकार के दोष हैं, वह विनष्ट हो सकते हैं उसे चाहे आप चार घाट के माध्यम से कहे, चार वृक्षों के माध्यम से कहें। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि बाहर ही नहीं, बाहर भी शुद्ध वायु हो, बाहर भी प्रदूषण मुक्त हो, लेकिन उससे भी अधिक आवश्यक है कि हमारे हृदय में, हमारे अन्तःकरण में प्रदूषण मिटे, दोष मिटे और प्रदूषण को मिटाने के लिए चाहे आप चार घाट की कथा सुनिए और चाहे चार वृक्ष अपने हृदय में लगा दीजिए और उनके नीचे जो चार प्रकार की साधनाएँ बताई गयी उन साधनाओं के माध्यम से हमारा हृदय शुद्ध हो सकता है, पवित्र हो सकता है। तो आज भूमिका के रूप में यहीं विराम लेते हैं। कल हम इस पर विचार करेंगे।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय।

द्वितीय

श्री रामः शरणं मम।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहीं दूजा।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहि अनेक बिहंगा।।

भगवत् कथा रसिक जिज्ञासु श्रद्धालु श्रोतावृंद, भक्तिमयी, भावनामयी देवियो

अभी आपके समक्ष जो पंक्तियां पढ़ी हैं उसमें भगवान शंकर भगवती उमा को भुशुण्डि की साधना पद्धति का वर्णन करते हुए आपको मिलेंगे। भगवान् शंकर ने भगवती उमा को यह बताया कि सुमेरु पर्वत के चार शिखर हैं और उन चार शिखरों पर चार वृक्ष लगे हुए हैं। एक पर है पीपल, दूसरे पर पाकरि, तीसरे पर आम और चौथे पर वट। भुशुण्डि जी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ करके ध्यान करते हैं, पाकरि वृक्ष के नीचे बैठ करके उनके द्वारा जप-यज्ञ की भावना क्रिया सम्पन्न होती है, आम्र वृक्ष के नीचे बैठ करके मानसिक पूजा करते हैं और वट वृक्ष के नीचे बैठ करके वे भगवान की कथा सुनाते हैं। कल जैसा क्रम आपके समक्ष प्रारंभ किया गया था, शुक्ल जी का आग्रह था कि चार घाटों के संदर्भ में कुछ कहा जाय। तो एक ऐसा प्रसंग लेने की चेष्टा की गयी है कि जिसमें कई जो भिन्न-भिन्न सुझाव दिये गये थे, उन सब को किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया जा सके। महत्वपूर्ण यह है कि गोस्वामीजी ने ग्रंथ की रचना के प्रारंभ में जब मानसरोवर से इस राम कथा की तुलना की और जब उन्होंने यह कहा कि भगवान् शंकर ने इसकी रचना की और मैं तो एकमात्र उसका अनुवाद ही प्रस्तुत कर रहा हूं तो उनसे पूछा गया कि शंकर जी ने जो रचना की वे तो ठीक है, पर आपने भी इसमें कुछ किया या नहीं किया। आपकी भूमिका क्या है ? तब गोस्वामीजी ने एक सूत्र दिया। वह सूत्र बड़े महत्व का है और सूत्र या है कि मैंने इसमें घाटों की रचना की। मानसरोवर की यात्रा जो लोग कर चुके हैं वो जानते हैं कि मानसरोवर की यात्रा जो लोग कर चुके हैं वे जानते हैं कि मानसरोवर में तो घाट नहीं है। गोस्वामीजी इस ग्रंथ की तुलना भी उसी मानसरोवर से ही करते हैं। पर मानसरोवर की यात्रा बड़ी कठिन है और मानसरोवर में

स्नान करके, दर्शन करके बस धन्यता का अनुभव करते हैं। तो इसका अभिप्राय यह है कि मानसारोवर सबके लिए सुगम नहीं है। गोस्वामी जी ने भगवान् शंकर के द्वारा की गयी जो रचना, जो दिव्य देव वाणी में थी, उसे ग्रामीण भाषा में आज जिसे हम हिन्दी कहते हैं लिखा। हिन्दी शब्द का प्रयोग कहीं रामचरित मानस में नहीं किया गया है।

रामचरित मानस की रचना हिन्दी में की गई ऐसा नहीं है। हिन्दी शब्द का प्रयोग नहीं है। गोस्वामी जी कहते हैं गांव की भाषा में, बोलचाल की भाषा में इस मानस की रचना की गयी। तो उसका उद्देश्य यही तो था कि जैसे मानसरोवर की यात्रा अत्यन्त कठिन है उसी प्रकार से भगवान् शंकर ने जिस रामचरित मानस सर की रचना की वह अत्यन्त दुर्गम, अत्यन्त कठिन है। उस तक पहुँचना प्रत्येक व्यक्ति के लिए संभव प्रतीत नहीं हो रहा था। तो मानों उन्होंने यह चेष्टा की कि यह श्रीराम का जो दिव्य चरित्र है वह अधिक से अधिक लोगों को मिल सके और अधिकांश व्यक्ति उससे लाभान्वित हो सकें। तब उन्होंने भाषा के माध्यम से उसे सुगम तो बना ही दिया। पर उसके साथ उन्होंने एक सबसे महत्व की बात कहीं और वही इस रामचरित मानस की विशेषता और लिक्षणता है। बहुधा यही दिखाई देता है कि जब किसी ग्रंथ का आप अध्ययन करें तो ग्रंथकर्ता किसी धर्म विशेष, सम्प्रदाय विशेष, मान्यता विशेष से जुड़ा हुआ होता है। और वह अपने धर्म, सम्प्रदाय और मान्यता के अनुकूल ही उस ग्रंथ में प्रतिपादन करता है। और वर्णन करता है और वह ठीक है, वह भी पद्धति है। पर स्वाभाविक है कि अब ऐसी रचना एक धर्म सम्प्रदाय या विशेष वर्ग के लिए ही तो प्रेरक हो सकती है। वह तो उस सम्प्रदाय की वस्तु है। हमारे यहाँ जो दार्शनिक हैं, भगवान शंकराचार्य, भगवान् रामनुजाचार्य उनके द्वारा जो सम्पद्राय प्रवर्तित हैं उसमें भी विचारों में भिन्नता है और परस्पर एक दूसरे के खण्डन की बात की गयी है तो खण्डन के मूल में उद्देश्य यह होता है और वह इस रूप में प्रस्तुत किया गया कि अगर भगवान शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र की व्याख्या इस रूप में की कि ब्रह्मसूत्र में जो सूत्र हैं उनका उद्देश्य अद्वैतवाद का प्रतिपादन है, ज्ञान और वेदान्त का प्रतिपादन है तो भगवान रामनुजाचार्य उसका खण्डन करते हैं, वे कहते हैं कि नहीं नहीं ब्रह्मसूत्र से वही है, मूल सूत्र तो वही है।

पर उसकी व्याख्या में उन्होंने यह कहा कि न, इसका जो दर्शन है, वह अद्वैत नहीं है अपितु विशिष्टद्वैत है और अन्य जो आचार्य हैं, चाहे वे श्री निम्बार्काचार्य, श्री मध्वाचार्य जी हैं, श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु हैं, सभी ने अपनी-अपनी पद्धति से व्याख्यायें की और सभी व्याख्याएं बडें महत्व की हैं और विभिन्न व्यक्तियों के लिए प्रेरक हैं, कल्याण्कारी हैं। पर उनमें भिन्नता है। एक सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय की मान्यता को नहीं स्वीकार कर पाता, उसे लगता है कि यह सही नहीं है। ऐसी स्थिति में गोस्वामी जी की जो मुख्य भूमिका थी वह थी समन्वय की। जिस काल में उनका अवतरण हुआ था जिस काल में उनका जन्म हुआ था, उनके सामने भी यह मतों की विभिन्नता, सम्प्रदायों की विभिन्नता विद्यमान थी।

गोस्वामी जी ने एक सूत्र दे दिया, सामंजस्य का और संवाद का उन्होंने कहा कि अगर हम, यों कल्पना करें, यो काव्य के रूप में धारणा बनावें कि एक सरोवर है और अगर प्रत्येक व्यक्ति उस सरोवर का जल पाना चाहता है, तो यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही दिशा से उस सरोवर में आवे और इसलिए सरोवरों की रचना में आपने देखा होगा कि उसमें घाट बनाए जाते थे और उन घाटों का लाभ यह था कि विभिन्न व्यक्ति जो हैं वे अलग-अलग घाटों, अन्य अन्य दिशाओं से आ करके लाभान्वित होते हैं। जल तो उन्हें वही प्राप्त होता था। एक सरोवर में चाहे कोई व्यक्ति पूर्व दिशा से आवे, चाहे पश्चिम दिशा से आवे, चाहे उत्तर दक्षिण से आवे। जल तो केन्द्र में वही है। किन्तु दो बातें महत्व की हैं। एक तो उद्देश्य में भिन्नता। इसका अभिप्राय यों कह लें कि कई व्यक्ति हैं जो उस सरोवर में जाते हैं। अगर उन्होंने सुन लिया कि बड़ा सुन्दर सरोवर है, बड़े सुंदर कमल खिले हुए हैं तो किनारे खड़े हो जाते हैं वहां खड़े हो करके उसकी सुन्दरता देख करके लौट आते हैं। बड़ी सराहना करते हैं बड़ा ही सुन्दर सरोवर है, उसमें बड़े ही सुन्दर कमल खिले हुए हैं। दूसरा व्यक्ति वह है जो केवल शोभा देख करके नहीं लौटता उसके हृदय में स्नान करने की भी इच्छा है तब वह और निकट जावेगा। सरोवर में प्रविष्ट होगा और उसको प्रवेश की प्रेरणा तभी मिलेगी जब वह देखेगा कि जल स्वच्छ है। आपने कई तीर्थों में देखा होगा कुण्ड है। उसकी बड़ी

महिमा बतायी जाती है। पर उनका जल प्रत्यक्ष रूप से देखने में अत्यंत गंदा है। कुछ हमारे भावुक श्रद्धालु तो उसको नहीं देख करके श्रद्धापूर्वक उसे ले लेते हैं, पर जिनके बहुत स्वच्छता के संस्कार हैं वह स्वच्छता के संस्कार वाला व्यक्ति हिचकिचता है कि इस जल को हम कैसे लें लें। इसका अर्थ है कि एक ऐसे जल की जिसकी महिमा भी हो, लेकिन अगर वह देखने में मलिन है तो स्नान करने वाले को प्रेरणा नहीं मिलेगी। इसका अभिप्राय है कि एक व्यक्ति सरोवर की शोभा भी देखने जा सकता है, दूसरा स्नान का उद्देश्य ले करके जाता है तीसरा व्यक्ति भी हो सकता है कि जो तैराक हो और उसको लगे कि नहीं मुझे स्नान ही नहीं करना है। स्नान तो सीढ़ी पर बैठकर के भी किया जा सकता है, किनारे पर भी किया जा सकता है पर हम तो जरा तैराक की तरह गोता लगावेंगे, भीतर पैठेंगे और जल के अंतरंग रूप का आनन्द लेगें। तो अगर किसी सरोवर में सभी गुण विद्यमान हों, अगर उसमें शोभा भी हो अगर उसमें स्वच्छता भी हो अगर निर्मलता भी हो, तो व्यक्ति उसे पीकर अपने आप में प्रसन्नता और तृप्ति का अनुभव करता है, तभी मानसरोवर के जल का उद्देश्य पूर्ण होता है। इसी प्रकार सम्प्रदायों के विभिन्न मतों का गोस्वामीजी खण्डन नहीं करते। उन्होंने कहा कि नहीं वह तो सभी ठीक ही है—

सब कह सत्य झूठ कोउ नाहीं।

मैं नहीं कहता हूं कि उनका मत सही है और इनका मत गलत है। मैं यह कहता हूँ कि सभी ठीक हैं और तब उन्होंने भगवान राम के चरित्र के इस रूप की घाटों की परिकल्पना की। उनका अभिप्राय यह है कि भगवान् श्रीराम का जो चरित्र है उसमें वे सभी गुण विद्यमान हैं। जो समाज में या विश्व में व्यक्तियों को अपेक्षित लगते हैं, आवश्यक लगते हैं और उनका जो अभीष्ट है वह उन्हें प्राप्त हो सकता है। इसका अभिप्राय बड़ा ही स्वाभाविक है। एक वर्ग वह है कि जो चरित्र की स्वच्छता, समाज में चरित्र का निर्माण कैसे हो, उसी को महत्व देता है। अगर किसी समाज का चरित्र श्रेष्ठ नहीं होगा तो स्वाभाविक रूप से वह समाज पतन के गर्त में गिरेगा। तो कुछ लोगों का आग्रह चरित्र निर्माण पर है और गोस्वामी जी उनको निमंत्रण देते हुए कहते हैं कि क्या चरित्र निर्माण के लिए

श्रीराम से बढ़ करके अन्य कोई चरित्र सारे इतिहास में, सारे पुराणों में, सारे विश्व में हुआ है कि जो इतना उज्जवल चरित्र का हो, या इतना स्वच्छ चरित्र का हो, जिसमें इतने गुण गण विद्यमान हों और इसके साथ-साथ उन्होंने यह कहा कि कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे कहते हैं चरित्र तो क्रिया की वस्तु है। पर अगर मनुष्य के अन्तर्हृदय में भावनाएं नहीं है, रस नहीं है तो फिर जीवन किस कार्य का। जैसे चरित्र क्या हुआ, यंत्र बन गया, एक यंत्र एक जैसी वस्तु बना के रख देता है। और वह व्यक्ति केवल चरित्र के बहिरंग रूप को ही ग्रहण कर ले और उसमें भावना और भक्ति का रस न हो तो वह व्यक्ति निर्जीव है और तब यह भक्ति की भूमिका उभर आती है। उनकी मान्यता यह है किस जब तक लोगों के हृदय में रस का संचार नहीं होगा, भावना का उद्रेक नहीं होगा, तब तक वह निर्जीव ही रहेगा। इसका निर्माण तो भक्ति के द्वारा ही संभव है और तब भगवान राम से बढ़कर के रसमय चरित्र किसका हो सकता है, रसमय उपाख्यान किसका हो सकता है। श्रीराम के स्पर्श से पत्थर की नारी भी अभिचेतन हो जाती है और उसमें भी रस का संचार हो जाता है। जो पत्थर में भी रस का संचार कर दें, चेतना का चैतन्य का प्रकाश कर दे, श्रीराम से बढ़ करके अन्य क्या कोई ऐसा हुआ है क्या ? जिसने इस तरह से शिला को चैतन्यता दे दी हो, जिसे अपवित्र मान करके पति ने छोड़ दिया हो, जिसकों समाज ने तिरस्कृत कर दिया हो, पर वह स्पर्श प्राप्त करने के बाद जिस तरह से चेतन हो जाती है—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहिं आवत वचन कही।

(१-२१०)

वह स्तुति भगवान की जब करती है तो गोस्वामी जी कहते हैं-

अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ....

(१-२१०-६)

उसमें एक बड़ा सुंदर शब्द आया है। एक पुराने लेखक हो गये हैं, पुरानी पीढ़ी के लोगों ने पढ़ा होगा श्री राम नरेश त्रिपाठी जी। उन्होंने तुलसी साहित्य का बड़ा विस्तृत अध्ययन किया और कई खण्डों में उन्होंने

गोस्वामी जी की रचना की प्रशंसा और उसके विविध पक्षों के गुणों का वर्णन किया। पर कुछ ऐसा माना जाता है, आज के युग में किसे कुछ कुछ दोष तो बताना ही चाहिए, नहीं तो लगेगा कि यह तो व्यक्ति भाट और चारण की तरह केवल गुण गा रहा है। समालोचना में कोई निष्पक्षता नहीं तो त्रिपाठी जी को लगा होगा कि गोस्वामीजी के ग्रंथ में इतनी विशेषता मैंने बताई तो कुछ कमी भी तो बतानी चाहिए। जिन थोड़ी सी कमियों का उन्होंने उल्लेख किया उसमें अहिल्या की स्तुति का प्रसंग भी उन्होंने लिया। उन्होंने कहा भगवान राम की प्रार्थना करते हुए राम को 'रावण रिपु' का विशेषण दे दिया, संज्ञा दे दिया कि 'रावण रिपु जन सुखदाई'। यह तो सर्वथा उचित नहीं है, क्योंकि जब अहिल्या ने भगवान् राम का स्पर्श प्राप्त किया था तब तो रावण से भगवान् राम का परिचय भी नहीं था, विरोध भी नहीं थे, शत्रुता भी नहीं थी तो अब तक भगवान राम के द्वारा जो कार्य हुए थे, उन्हीं के संदर्भ में कोई नाम देते अगर कह देते कि कौशल्या हितकारी राम, तो बड़ा सार्थक होता 'अयोध्या हितकारी' 'मुनि हितकारी' तो भी ठीक होता पर ये 'रावणरिपु' शब्द ऐसा लगता है कि गोस्वामी जी ने बलात् ही आरोपित कर दिया। ठीक है, उन्हें जो उचित लगा उन्होंने लिखा मुझे खण्डन करने का क्या अधिकार हो सकता है। पर मैं तो यही कहूंगा कि शायद उनकी दृष्टि इसमें सही नहीं थी। 'रावण रिपु' शब्द के पीछे जो निहित तात्पर्य है वह बड़े महत्व का है और वही चरित्र के संदर्भ से जुड़ा हुआ है। जब कोई व्यक्ति कहता है कि सबसे बड़ी वस्तु चरित्र ही है। चरित्र का ही निर्माण होना चाहिए, उसमें व्यर्थ की भावुकता अन्य वस्तुओं के समावेश की आवश्यकता नहीं है। तो मानों अहिल्या का जो चरित्र है उसका एक दूसरा पक्ष प्रस्तुत करता है। अहिल्या परम सुंदरी थी। उस सुंदरी को पाने की अभिलाषा इन्द्र के मन में भी उत्पन्न हुई और इन्द्र ने सहज रूप से मान लिया था कि यह संसार की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी जो है वह मेरे पास स्वर्ग में रहना छोड़ करके अन्यत्र कहां सुखी होगी। लेकिन ब्रह्मा ने ऐसा नहीं किया। इन्द्र के स्थान पर उन्होंने इसके लिए उपयुक्त पात्र गौतम को चुना। इन्द्र भोग का देवता है, जहां सबसे अधिक भोग सामग्री विद्यमान है, वहां स्वर्ग है, तो स्वर्ग के अधिपति को उन्होंने पात्र न चुन करके, एक ऐसे मुनि को ही

उसका पात्र चुना जो त्यागी है, तपस्वी है, जो वन में निवास करता है। ये देखें तो ऐसा लगता है कि यहा तो बड़ी विचित्र सी बात है। सुन्दरता के लिए तो सर्वश्रेष्ठ स्थान स्वर्ग होना चाहिए। वहां पर एक सुंदरी के लिए या किसी सुंदर व्यक्ति के लिए नाना प्रकार की सुंदर वस्तुएं हों, उपभोग की सामग्री हो, तो ही वह संतुष्ट रहेगा। पर ऐसा निर्णय यदि ब्रह्मा ने नहीं किया तो आध्यात्मिक अर्थों में हम ब्रह्मा को विवेक का देवता मानते हैं- **'अहंकार शिव बुद्धि अज'**।

और उसका अभिप्राय यह कि एक ओर है त्याग और दूसरी ओर है भोग। गौतम त्याग है तो इन्द्र भोग है। और तब उन्होंने यह निर्णय किया कि सौन्दर्य का उपयोग जो है वह त्याग के माध्यम से ही सही अर्थों में हो सकता है और स्वर्ग में तो उसकी कोई सार्थकता नहीं है, तो मानों उन्होंने एक विचार का पक्ष दिया किय यह ठीक है कि अगर मान लें कि सौन्दर्य का अभिप्राय शारीरिक सौन्दर्य से है और वहां सौन्दर्य की समस्त सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए तो हो सकता है कि ठीक हो। लेकिन यह सौन्दर्य कोई चिरस्थाई रहने वाली वस्तु नहीं है और ऐसी परिस्थिति में अगर कोइ सौन्दर्य देख करके किसी की ओर आकृष्ट होगा तो क्या होगा यह प्रश्न बड़ा स्वाभाविक है। आज जिसका सौन्दर्य सम्मोहक लग रहा है, धीरे-धीरे उस सम्मोहक सौन्दर्य में कमी आती है और तब उसी सौन्दर्य के प्रति धीरे-धीरे अरुचि होने लगती है कभी विरोध होने लगता है, संघर्ष होने लगता है। उसका अर्थ यह है कि सौन्दर्य के प्रति पहली दृष्टि भले ही ऐसी लगती हो कि वह भोगपरक होनी चाहिए या उपभोग के लिए सौन्दर्य है लेकिन उसकी परिणति अंततोगत्ववा उस रूप में होती है जिससे सिद्ध होता है कि सौन्दर्य क्षणभंगुर है।

सौन्दर्य चिरस्थाई सौन्दर्य में बदल जाये इसका क्या उपाय है? इसका अभिप्राय यह है कि शारीरिक सौन्दर्य भले ही न्यून होता जाए, कम होता जाए और वह तो होगा ही। लेकिन कोई ऐसा सौन्दर्य बढ़े कि जिसको देख करके सामने वाले की प्रीति कम न हो, सामने वाले का आकर्षण कम न हो वह बढ़ता जाए (और इस बात को मानों) विवेक के देवता यही कहते हैं और वह बहुत सार्थक संकेत है। वह आगे के इतिहास में भी सत्य सिद्ध होता है कि क्या स्वर्ग का देवता इन्द्र सौन्दर्य का सच्चा

पारखी है? उसकी विडम्बना इससे बढ़कर होगी कि स्वर्ग में उर्वशी, रंभा, तिलोत्तमा अनगिनत परम सुन्दरी अप्सराएं हैं, पर इन सबको पाने के बाद भी जब उसके मन में यह लालसा रह गयी कि अहिल्या का विवाह तो मुझसे होना चाहिए तो स्पष्ट हो जाता है कि उसकी वृत्ति किस दिशा की ओर ले जाती है और इतना ही नहीं जब अहिल्या को पाने के लिए छल का, कपट का आश्रय लेता है तो यह सिद्ध होता है कि जो शुद्ध भोगी मात्र होता है, उस व्यक्ति का आकर्षण कब किधर होगा, कितने क्षण का होगा और वह उसकी प्राप्ति के लिए कहां तक चला जायेगा इसका कोई ठिकाना नहीं। ऐसी स्थिति में विवेक के देवता को यही लगता कि गौतम एक बड़े महा पुरुष हैं और सौन्दर्यमयी अहिल्या जब उनकी सेवा करेगी शरीर का सौन्दर्य भले ही कम हो जाए पर जो सेवा का सौन्दर्य है, वह तो बढ़ता ही जायेगा और यह सौन्दर्य के स्थायित्व का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है। अंत में जो कथा आती है उसका अर्थ यह है कि अहिल्या मन बचन कर्म से अपने पति की सेवा करती है, काम करती है तो चरित्र की दृष्टि से अहिल्या का चरित्र बड़ा उच्चकोटि का है। लोग उसी रूप में देखते है। पर एक बड़े महत्व का पक्ष यह है कि क्या जीवन में चरित्र का पक्ष अतिरेक से युक्त हो जाये और उसको एक ऐसा रूप दे दिया जाए कि जिसमें व्यक्ति के जीवन में कहीं से सौन्दर्य श्रृंगार का प्रवेश ही न होने पावे तो क्या परिवार होगा। आप भगवान् राम के चरित्र की दृष्टि से विचार करके देखें-भगवान श्रीराम यदि वन जा रहे हैं, तो जनकनंदिनी सीता उनसे आग्रह करती है कि मैं भी साथ चलूंगी धारण करके उदासी रूप। कैकई ने यही बरदान मांगा था कि

''तापस बेष विशेष उदासी। चौदस बरिस राम बनबासी।।''

(२-२८-३)

तो भगवान श्रीराम ने रेशमी वस्त्र उतार दिए गेरुए वस्त्र पहन लिये, भगवान् श्रीराम ने जटाजूट धारण कर लिया। यह सब कुछ करते हुए भी भगवान् श्रीराम के चरित्र का एक दूसरा पक्ष है-क्या? वे जनकनंदिनी सीता को किस रूप में देखना चाहते हैं और यही भगवान् राम की परिपूर्णता है। श्री सीता जी तो भगवान् राम के समान ही तपस्विनी वेश में रह करके परम संतुष्ट हैं, परम प्रसन्न हैं। राज्य सुख और भोगों का

परित्याग करके चली आई हैं। यह श्री सीताजी के चरित्र का बड़ा उज्जवल पक्ष है पर क्या भगवान् श्री राम चित्रकूट में श्री सीता जी के प्रति जो व्यवहार करते हैं, उसमें श्रृंगार नहीं है, क्या रस नहीं है, क्या वह सीताजी से यही कहते हुए दिखाई देते हैं कि मैं उदासी हूँ और चौदह वर्ष तक आपसे श्रृंगार की बात भी नहीं करूंगा। क्या आप ऐसी कल्पना करते हैं कि वे ऐसे उदासी थे कि श्री सीताजी से कोई मीठी बात करते ही नहीं थे। गोस्वामी जी कहते हैं ऐसा नहीं है। श्री राम उसका वही अर्थ लेते हैं जितना लेना चाहिए। श्री राम ने उदासी का अर्थ यह लिया कि हमारी महारानी माँ कैकेई को एक ही चिंता है कि अगर वन में श्री राम राजकुमार के रूप में रहेंगे, सेना एकत्र करेंगे, आक्रमण करेंगे, तो हमारे पुत्र भरत का राज्य छीन लेंगे। वह जानते थे कि माँ के उदासी वेष के पीछे उनका एक भय था। उस भय का प्रभु ने निवारण कर दिया। यही श्री राम के चरित्र की पूर्णता है कि एक ओर वे उदासी वेष में रहते हैं जैसे वे कुश की शैया पर शयन करते हैं जो उदासी जीवनचर्या के अनुकूल है। भगवान राम जटाजूट धारण करते हैं जो तपस्वियों के ही लक्षण हैं। पर श्री राम का एक दूसरा पक्ष भी है और यही संतुलन है। शुष्कता का अर्थ चरित्र नहीं है, चरित्र का अभिप्राय यह नहीं कि व्यक्ति नीरस हो जाए, शुष्क हो जाए, बिल्कुल यांत्रिक हो जाए। इसलिए गोस्वामी जी कितना मधुर रसमय चित्र प्रस्तुत करते हैं। जब श्री राम—श्री सीता और लक्ष्मण विराजमान हैं, गांव की स्त्रियां आकर सीताजी से पूछती हैं, "सुंदरी राजकुमारी, यह तो बताओ ये जो श्याम और गौरवर्ण के राजकुमार हैं दोनों ये आपके कौन हैं?" मानस में और कवितावली रामायण में भी यह प्रश्नोत्तर है। रामायण में प्रश्नोत्तर भी बड़ा मधुर है। पर गोस्वामी जी ने कवितावली रामायण में इसको और भी एक मिठास भरा रूप दिया। जिन्होंने यह ग्रंथ पढ़ा होगा उसमें वह देखेंगे कि एक सखी पूछती है ये आपके हैं कौन? सीता जी तो मौन है तो मानों मौन में भी यह संकेत उनको लगा होगा कि क्या देख करके तुम्हें नहीं लग रहा है कि यह कौन है। क्या पूछने की आवश्यकता है ? तो श्री राम के चरित्र में जो विरोधाभास है उसकी ओर वह संकेत करती है। हाँ इनके सिर पर जटा है तो उसके देख करके तो यही मानने का मन होता है कि ये कोई तपस्वी होंगे, मुनि

ही लोग जटाजूट धारण करते हैं तो मुनि ही मान लो। कहा- नहीं नहीं, सिर की जटा को देख करके त्यागी लगते हैं, बड़े तपस्वी हैं-पर इनकी आंखों को देख के तो ऐसा नहीं लग रहा है। क्या लग रहा है-

सीस जटा उर बाहु विसाल, विलोचन लाल ....

(कवितावली २-२१)

आंखों में श्रृंगार और अनुराग की लाली है और तिरछी सी भौंहे हैं, जो दृष्टि है उसमें भी तिरछापन है, बांकपन है, जटा देखें तो लगता है शांत रस है। आंखों को देखें तो लगता है श्रृंगार रस है। उन्होंने कहा कि अगर इसके हाथ के धनुषबाण को देखें तो लगता कि ये तो वीर रस है-

तून सरासन बान धरे, तुलसी वन मारग में सुठि सोहैं।

(कवितावली २-२१)

एक दृश्य बताता है कि शांत रस है, दूसरा बताता है कि नहीं श्रृंगार है और तीसरे को देख लगता है कि वीर रस है। पर आगे बहुत रसमय प्रसंग आता है। गोस्वामी जी ने कहा कि गांव की स्त्रियां कहती हैं कि ये जो श्री राम हैं जिनकी आंखों में इतना श्रृंगार है, अनुराग है वह बस केवल आपकी ओर ही देख रहे हैं। श्री राम तो निरंतर सीता जी की ओर ही देखते हैं। सीताजी के होठों पर मंद मंद हंसी आई। वे बोली तो नहीं, पर मानों गांव की स्त्रियों को लगा कि सीता जी कहती हैं कि "इतने सुंदर हैं और मुझे देख रहे हैं तो आप लोगों को क्या आपत्ति है? हमें देख रहें हैं। यह अब तो हमारे उनके बीच की बात है।" तो गांव की स्त्रियों ने कहा- "नहीं, आप लोगों के बीच की बात नहीं है समस्या आपके लिए नहीं, हमारे लिए है।" बोले-

सादर बारहि बार सुभाँय चितै तुम्हत्यों, हमरो मनु मोहैं.......

जब आपको देखते हें तो मन मेरा चुरा लेते हैं, तो-

"पूछत ग्राम वधू सिय सों कहौ साँवरो सो सखि रावरे को हैं।"

यह जो अद्भुत राजकुमार श्यामवर्ण का है जिसमें शांत रस, श्रृंगार रस, वीर रस सभी दिखाई देते हैं और इतनी अनन्यता दिखाई देती है कि आपको छोड़ करके अन्यत्र किसी की ओर दृष्टि ही नहीं जाती। पर आश्चर्य है कि वह आपको जिस अनुराग से प्रेम से देखते हैं वह तो हमारे हृदय को चुरा लेता है, हमारा हृदय उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है।

मानों श्री राम का यह जो रसमय चित्र है यह किसी तपस्वी और उदासी का चित्र तो नहीं हो सकता है और वह संवाद गोस्वामी जी ने उसी रूप में प्रस्तुत किया। जब जनकनंदिनी परिचय देती हैं तो यही कहती हैं कि "देखो ये जो छोटे तुम्हे दिखाई दे रहे हैं ये 'सहज सुहाय' ये बड़े सीधे स्वभाव के हैं।" सीता जी को पता है कि लक्ष्मण को देख करके ऊपर से ही लगता है कि कुछ टेढ़ा राजकुमार है। तो उन्होंने कहा कि नहीं, दूर से टेढ़े लगते होंगे, पर मै तो जानती हूं **"सहज सुभाय सुभग तनु गोरे, नाम लखन लघु देवर मोरे"** और जब प्रभु का परिचय देने लगती हैं तो श्रृंगार रस का स्वरूप बन गई। श्री सीता जी की वह मर्यादा एक संकोच एक शील, गोस्वामीजी उनका जो चित्र प्रस्तुत करते हैं वह तो एक भिन्न प्रकार है। सीताजी जो हैं-

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि।।
भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह राय रासि लनु लूटीं।।
अति सप्रेम पायँ परि बहु बिधि देहिं असीस।
सदा सुहागिनि होहु तुम, जब लगि महि अहि सीस।।

(२-११७)

यह संवाद कितना रसमय है, कितना आनन्दमय है। अब चरित्र के जो निष्ठुर व्याख्याता हैं, इसमें भी मर्यादा की कमी देख लें बल्कि गोस्वामीजी ने एक अनोखी बात लिख दी जो थोड़ा उनकी शैली से हट करके है। एक सखी श्री राम का, वर्णन करते हुए यह कहती है कि श्री राम सीताजी की ओर जब देखने के लिए दृष्टि उठाने लगे तो अचानक दृष्टि पड़ी तिरंछौंहे उनकी तिरछी दृष्टि मेरी ओर भी चली गयी तो मेरे हृदय में तो उसकी स्मृति से धन्यता का अनुभव होता है। उसका अभिप्राय यह है कि चरित्र और मर्यादा का अर्थ इतना यांत्रिक नहीं है कि वह व्यक्ति को इतना नीरस बना दे। समाज में जो व्यक्ति है वह इतना शुष्क हो जाए कि हर क्षण केवल मर्यादा-मर्यादा की बात करें। मर्यादा महत्वपूर्ण होते हुए भी रस का पक्ष उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है इसलिए गोस्वामीजी से पूछा गया "वन में भगवान राम रहते थे, वहां मुनियों का निवास था, यही तो लगता है कि बस नित्य स्नान करके सत्संग में बैठ जाते होंगे,

दिन भर सत्संग चलता होगा।'' ऐसा भ्रम न पालियेगा। मुनियों से सत्संग तो श्री राम करते ही हैं लेकिन वे कितने विलक्षण थे। वन में कोल किरात भी तो रहते हैं। वे भी श्री राम के दर्शनों के लिए आते हैं। मानो वे श्री राम से यह संकेत करते हैं कि महाराज मुनियों से सत्संग चौबीसों घंटे तो किया नहीं जा सकता है, तो आप जरा हमारे साथ वन में चलिए-

सर निर्झर जल ठाउँ देखाउब। (२-१३६-४)

हम आपको दिखावेंगे कि जंगल में कितनी सुन्दर नदी बह रही है, कैसे झरने हैं, कैसे पशु हैं, कैसा सौन्दर्य है। मानों उनका अभिप्राय है कि श्री राम का जो रूप है, वहां पर वह रूप ऐसा नहीं है कि जिसमें केवल भगवान् श्री राम दिनभर पाठ ही करते रहते हों या जप ही करते रहते हों या श्रीराम केवल सत्संग में ही जा करके बैठते हों। गोस्वामी जी कहते हैं श्री राम की दिनचर्या में वह भी है। वट के नीचे सीताजी ने वेदी बनाई है और उस वेदी पर भगवान राम बैठ करके क्या करते हैं? गोस्वामी जी ने कहा-

बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई।।

(२-२३६-८)

सीताजी ने स्वयं वह वेदी बनाई और उस पर बैठ करके-

जहां बैठि (भगवान श्रीराम)

मुनिगन सहित, नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान।।

(२३७)

प्रभु कथाएं सुनते हैं, पुराणों की कथा, वेद की कथा, इतिहास की कथा और आनंदित होते हैं। पर उसके साथ-साथ श्री राम का एक दूसरा रूप भी है और दूसरा रूप क्या है? गोस्वामी जी के बारह ग्रंथों में से जो परिचित होंगे, गीतावली रामायण से परिचित होंगे। उसमें गोस्वामीजी जी ने कहा भगवान श्री राम ने सीताजी को बैठने के लिए कहा। उनके श्रृंगार के लिए भगवान् श्री राम वन में जाते हैं फूल चुन करके ले जाते हैं, रंगीन धातुएं चुन करके लाते हैं। और गोस्वामी जी का वह चित्र आप पढ़ेंगे जिसमें गोस्वामी जी कहते हैं-

फटिक सिला अति विशाल संकुल सुरतरु तमाल

ललित लता-जाल हरित छांव बितान की।

(गीतावली २-४४)

जहां वृक्ष और लताएं मिल रहे हैं। अब लता और वृक्षों के मिलन में आप शांत रस का भी संदेश ग्रहण कर सकते हैं और श्रृंगार का भी संदेश ग्रहण कर सकते हैं। भगवान् राम क्या करते हैं-

निजकर राजीव नयन पल्लव-दल-रचित सयन,

(गीतावली २-४४)

भगवान् श्री राम सीताजी को वहां पर बैठने के लिए कहते हैं, विश्राम के लिए स्वयं वन से कोमल पत्ते फूल पंखड़िया ला करके सजाते हैं। तो वेदी पर बैठ करके सत्संग करना भी उनका रूप है। सीताजी के श्रृंगार के लिए उन फूलों के गहने बनाना उनका दूसरा रूप है।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। (३-१-२)

अब एक सज्जन ने पूछा कि सीताजी श्रीराम को यह सेवा करते देख के रोकती नहीं है। यह तो मर्यादा के विरुद्ध है। हमने कहा राम इतने बड़े मर्यादावादी नहीं थे। और सीताजी को भी मर्यादा का ऐसा रोग नहीं था, जैसा आपको है। केवल पत्नी को पति की सेवा करना चाहिए और उससे अगर भिन्न कुछ हो, तो वह ठीक नहीं है, मर्यादा के विरुद्ध है। (श्री सीता जी उसे सेवा के रूप में नहीं लेती) उसके पीछे भावना है, कि अगर हमारे प्रियतम को इससे प्रसन्नता होती है, ऐसा करके आनन्द का अनुभव होता है तो वह अपने सुख की भावना से नहीं, उनकी प्रसन्नता के लिए आनन्द के लिए अगर वह आभूषण बना करके पहनाते हैं तो क्या आपत्ति (अब इसका अर्थ ये नहीं है) सिर में पहनाया और पैर में नहीं पहनाया होगा, पैर छू देने से पत्नी की तो मर्यादा ही चली जायेगी और वह छुआ लेंगी तो मर्यादा भ्रष्ट हो जायेगी। भगवान् श्री राम श्री सीताजी को सजाते हैं उनके मुख पर पत्रावली का निर्माण करते हैं। और उस समय श्री राम का रूप कौन सा है? गोस्वामीजी कहते हैं-

निज कर राजीव नयन पल्लव दल रचित सयन
प्यास परस्पर पियूष प्रेम पानकी।

और तब-

सिंय अंग लिखे धातु राग ....

आप चित्रों में देखते हैं कि प्राचीन काल में रंगीन धातुओं के द्वारा देवियों के मुख पर श्रृंगार किया जाता था। श्री राम स्वयं सीताजी का श्रृंगार करते हैं। पुष्प पहिनाने से आभूषण बनाने के बाद, मुख पर पत्रावली बनाने के बाद, श्री सीताजी को तिलक लगाने लगे। गोस्वामीजी से पूछा गया यह श्री राम कौन है, भगवान राम हैं ? बोले-

तिलक करनि का कहौं कलानिधान की

(गीतावली २-४४)

ये तो कला निधान राम है और जब वह जनकनंदिनी का श्रृंगार करते हैं, तो पता चलता है कि कितने रसिक हैं, कितने भावुक हैं, कितनी कलाओं का उनको परिज्ञान है। उसी श्री राम के चरित्र को देखकर कर बेचारा जयंत (इन्द्र का बेटा) चिंतित हो गया था कि क्या वहीं यह ईश्वर हैं जिसका दर्शन करने मैं आया था। मानस का अभिप्राय है कि श्री राम का चरित्र जो है राग-विराग, त्याग श्रृंगार शांति सभी का साकार दृश्य है। सभी श्री राम के चरित्र में दिखाई देते हैं। भगवान् राम जब वन में रहते हैं तब क्या करते हैं-

सीय लषन जेहि विधि सुखु लहहीं। सोई रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।।

(२-१४०-१)

ध्यान रखते हैं कि सीताजी को क्या बात सुनके प्रसन्नता होगी। लक्षमण को क्या सुन करके अच्छा लगेगा। भगवान राम के प्रत्येक क्रिया कलाप में उन दोनों को निरंतर प्रसन्न करने की भावना है। यही श्री राम के चरित्र की परिपूर्णता है कि वे राज्य का परित्याग कर देते हैं, समस्त संसार के ऐश्वर्य का परित्याग कर देते हैं, पर भावना रस का परित्याग नहीं करते हैं। क्योंकि उनको लगता है कि अगर सीता मेरे लिए सबकुछ छोड़ करके वन में जाती हैं तो उनको अनुभव नहीं होने देना चाहिए कि किसी वसतु का उनके लिए अभाव है और श्री राम ने सचमुच ऐसा ही कर दिया कि लक्ष्मण को, सीताजी को एक क्षण के लिए भी घर की याद नहीं आयी। श्री राम इतने रूपों में उनको प्रसन्न करते हैं कि गोस्वामीजी ने कहा-

छिन छिन लखि सिय राम पद.............

(२-१३९)

लक्ष्मण देखते हैं और देखने के साथ जब उनकी दृष्टि जाती है-

जानि आपु पर नेहु।

(२-१३९)

तो,

करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु-पितु गेहु।।

(२-१३६)

भगवान राम, भाई के रूप में, कभी पिता के रूप में, कभी वातसल्यमयी माँ के रूप में, सभी संबंधों की पूर्ति करते हैं।

मर्यादा जीवन में अत्यन्त उपयोगी है, पर आप मर्यादा को वह रूप मत दे दीजिए कि जो मनुष्य को एक निर्जीव यन्त्र बना दे। मैं भूल नहीं पाता हूँ कि एक सज्जन ने कहा कि श्री राम ने केवट को हृदय से लगा लिया। जिनसे कहा वह बड़े शास्त्र के विद्वान थे, बड़े मर्यादावादी थे तो उन्होंने यह नहीं कहा कि यह श्री राम की उदारता है, श्री राम की दया है या भगवान् राम की कृपा है। उन्होंने तुरंत यह कहा कि हाँ हृदय से लगाया यह तो ठीक लिखा तुलसीदास ने, पर बाद में नहा लिया होगा। मानों केवट को छूने के बाद राम को नहाना ही चाहिए। जिसकी मर्यादा इतनी सघन हो, उनके लिए तो श्री राम चरित्र है नहीं और उसका अभिप्राय है कि वस्तुतः भगवान् श्री राम के चरित्र में समग्रता है। वे मुनि भी हैं, गृहस्थ भी हैं, मित्र भी है सखा भी हैं और गम्भीरता के साक्षात विग्रह हैं और व्यंग्य विनोद के भी आचार्य हैं। उनके चरित्र में संतुलन क्या है? चरित्र तो समाज में चाहिए। व्यवहार में तो मर्यादाओं की आवश्यकता पग-पग पर होती है। आप सड़क पर चलते हैं, तो भी आपको सड़क की मर्यादा का ध्यान रखना पड़ता है। अगर एक रेखा बनी हुई है तो इसका अर्थ है कि आपको ध्यान रखना है कि आप अपनी ओर से चलें, किसी से टकराव नहीं, कोई दुर्घटना नहीं हो, पर उसके साथ-साथ उसका दूसरा पक्ष वह है कि जहां पर रस और भाव की आवश्यकता है और वह रस और भावना का जो दिव्य रूप है, वह एकांत में पत्नी से वार्तालाप हो। एक सज्जन ने मुझसे कहा कि कथा तो आप प्रारंभ करते हैं समय से, पर लगता है कि अंत में आप थोड़ा समय का ध्यान नही रख पाते और कुछ अधिक बोल जाते हैं। तो मैंने यही कहा कि अपनी पत्नी से

बात करते समय आप घड़ी सामने रख लेते हैं क्या? कि जहां वह घड़ी की सुई आई कि बस अब प्रेम की चर्चा बंद। इसका अर्थ है जब आप रस और आनन्द में डूबे हुए हैं तो आप फिर भी घड़ी को देख रहे हैं तो किस काम के। आप होंगे घड़ीदास। लेकिन वस्तुतः इसका अर्थ है रस का अपना आनन्द है, उसका अपना पक्ष है और उसका अर्थ है। श्रीराम के चरित्र में यही समन्वय है। एक ओर मर्यादा की पराकाष्ठा है, दूसरी ओर रस की भी पराकाष्ठा है और इसीलिए भोगों के संदर्भ में भी श्री राम के लिए कहा गया-अयोध्या में भगवान् राम जब सिंहासन पर बैठते हैं तो वह बहुत सुन्दर वस्त्र पहनते हैं, आभूषण धारण करते हैं, रत्न धारण करते हैं और जब राजा के रूप में निवास करते हैं तो भोगों को भोगते हैं और गोस्वामीजी ने वह पंक्ति लिखी श्री राम के विषय में जो श्री राम के चरित्र की परिपूर्णता है और शब्द यही है **'श्रुति पथपालक'**

भगवान राम वेद मर्यादा के परम पालक हैं- **'धर्म धुरंधर'**

धर्म और मर्यादा के महानतम रक्षक हैं।

'गुणातीत' गुणों से परे है, गुणों से ऊपर उठे हुए हैं पर उसके साथ साथ हैं-

गुणातीत अरु भोग पुरंदर

इन्द्र के समान भागों को भोगते हैं और गुणातीत हैं। यह जो गोस्वामीजी का शब्द है, उसका अर्थ है कि श्रीराम का चरित्र महानतम है। सबके लिए उसमें कुछ न कुछ संदेश और भावना विद्यमान है और पुराणों में जो कथाएं आती हैं, इस संदर्भ में वह चर्चा प्रारंभ की गयी थी कि ठीक है विवेक का पक्ष यही था कि अहिल्या के जीवन में त्याग का पक्ष, सेवा का पक्ष मुखर हुआ और पतिव्रता के रूप में सेवा कर रही है। पर इस संदर्भ में यह बात आपके ध्यान में होगी, जहां पर वह वर्णन आता है कि-

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि करदम कै प्रियनारी।।

(१-१४२-३)

कर्दम ऋषि का विवाह हुआ देवहूति से। कर्दम का चरित्र बड़ा उच्च कोटि का है। वे अनुभव करते हैं कि राजकुमारी ने मेरा वरण किया है वह त्याग और तपस्या में जीवन व्यतीत करने से ही संलग्न है। श्रीमद्‌भागवत की कथा में आप सुनेंगे कि उनहोंने कितना अधिक उनकी

प्रसन्नता के लिए किया। एक विमान का संकल्प से निर्माण करके उनको सांसारिक सौन्दर्य-श्रृंगार और भोग का सुख दिया।

अब आप संदर्भ में देखें इन्द्र का पक्ष। इन्द्र भोगी है और भोगी व्यक्ति कभी संतुष्ट होता ही नहीं। निरंतर स्वर्ग में अप्सराओं की सुंदरता का उपभोग करने के बाद भी उनकी भोग लालसा कभी समाप्त नहीं होती। यह चरित्र विषयी पक्ष का है। महर्षि गौतम बड़े ज्ञानमय, तपोमय हैं। अहिल्या ने बड़ी सेवा की पर सेवा साथ-साथ महर्षि कर्दम ने जैसे देवहूति के लिए ध्यान रखा कि राजकुमारी को नाना प्रकार के सुख की सामग्री प्राप्त होनी चाहिए वैसा महर्षि गौतम का पक्ष नहीं है। वहां पक्ष पावेंगे मर्यादा के अतिरेक का। महर्षि जमदग्नि को इसलिए पत्नी पर क्रोध आ गया कि रेणुका जल भरने नदी किनारे गयी और वहां पर गंधर्वों को स्नान करते देख कर देवताओं और देवताओं की पत्नियों को स्नान करते देख उसे विलंब हो गया। दृश्य देखने में अच्छा लगा और लौट कर जब आई तो महर्षि जमदग्नि ने पूछ दिया- "तुम्हें इतना विलंब क्यों हुआ?" उन्होंने सत्य बता दिया तो उन्हें क्रोध आया कि उन्होंने सिर काटने की आज्ञा पुत्रों को दे दी। यह तो कठोरतम पक्ष हुआ कि कोई व्यक्ति अगर दृश्य भी देख ले तो कठोरतम पक्ष हुआ कि कोई व्यक्ति अगर दृश्य भी देख ले तो अपराधी है और उसका सिर की काट लिया जाना चाहिए। यह पक्ष तो श्री राम के चरित्र के संदर्भ से सर्वथा अलग है। कथा आती है कि पुत्रों ने पिता से कहा कि यह कैसे संभव है कि हम अपनी माँ का सिर काट लें, केवल इसलिए कि वह थोड़ा दूसरों की क्रीड़ा का आनन्द लेने लगी, देखने लगी। अब मानों महर्षि जमदग्नि को यह रहा होगा कि दृश्य देखकर ही वासना आती है, वासना आती है तो मनुष्य के चरित्र का पतन होता है तो चरित्र का अतिवादी दृष्टिकोण वहां पर दिखाई देता है और फिर कथा दूसरी दिशा में पलट जाती है।

महर्षि गौतम के आश्रम में रहने वाली अहिल्या को भी एक ऐसा अवसर आता है, उसे क्या कह सकते हैं। जब इन्द्र ने गौतम का वेश बना करके अहिल्या को छलने की चेष्टा की और वह गौतम के वेश में आये तो अहिल्या से उन्होंने जो प्रस्ताव किया, अगर वह अत्यंत सजग वृत्ति की होती तो कह सकती थी कि महराज प्रातःकाल ब्रह्मवेला में तो आपका

यह प्रस्ताव उचित नहीं है। पर उन्होंने इन्द्र को गौतम समझ लिया और इन्द्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। ऐसी सांकेतिक कथा पुराणों में आती है। महर्षि गौतम ने जब इस दृश्य को जान लिया तो उन्होंने इन्द्र और अहिल्या दोनों को शाप दिया उन्होंने यही कहा कि पुण्य के द्वारा व्यक्ति देवता बनता है। स्वर्ग प्राप्त करता है और देवराज होते हुए भी तुम्हारी भोग के प्रति इतनी तीव्र वासना और लालसा है कि तुमने इस प्रकार का कार्य किया तो जैसे किसी घड़े में चाहे दूध रखा हो, चाहे अमृत रख हो लेकिन अगर छेद होगा तो बहे बिना नहीं रहेगा। इसी प्रकार से तुम्हारी ये वृत्ति इतनी कलुषित है कि "मैं यह शाप देना चाहता हूं कि तुम्हारी शरीर में हजार छिद्र हो जायें।" यह माना भोगी को, महर्षि गौतम का शाप था। अहिल्या को भी उन्होंने थोड़ा कठोर, जमदग्नि की तरह तो नहीं, पर कम से कम उसमें यह कठोरता तो थी ही कि अगर अहिल्या ने अजनजाने में ही इन्द्र को गौतम समझ लिया और गौतम को स्वीकार कर लिया तो उसका अपराध अक्षम्य है। वह नहीं पहचान पाई और उसने समझ लिया कि हमारे पतिदेव हैं। पर उनका आग्रह यह नहीं था। इसका अभिप्राय है कि तुम्हारे अन्तःकरण में कहीं न कहीं भोग की लालसा का संस्कार होगा। तुमने नहीं पहचाना, तुम पत्थर हो जाओ। तो मानों ये जो कथाएं हैं वे बताती हैं कि अगर चरित्र को ऐसा रूप दे दिया जाए, तब तो सिर कटने की बात या पत्थर बना देने की बात सामने आती है। महर्षि गौतम ने भले ही शाप दे दिया पर जब अहिल्या ने क्षमा माँगी तो उन्होंने अंत में यही कहा कि "मैं तो तुम्हारा परित्याग ही कर देता हूं और इस आश्रम में कोई विद्यार्थी, कोई पशु, कोई पक्षी नहीं रहेगा। इसका अभिप्राय है कि ऐसी अनजाने में की गयी भूल और इसका इतना कठोर दण्ड कि समाज ने परित्याग कर दिया, पति ने परित्याग कर दिया और वह शिला हो गयी। यह मानों चरित्र और मर्यादा का कठोर पक्ष है और इसका समन्वय कौन कर सकता है?

महर्षि गौतम की यह विशेषता है कि वे अनुभव करते हैं कि श्री राम ही इन दोनों को शाप से मुक्त कर सकते हैं। भगवान श्री राम के चरित्र में यह जो औदार्य है, स्वयं वे भले ही एकनिष्ठ पति हैं, पर इतना होते हुए जब उन्होंने आश्रम में प्रवेश किया और देखा कि एक नारी पत्थर के रूप

में पड़ी हुई है तो उन्होंने पूछ लिया और तब गोस्वामीजी ने लिखा—

पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहि बिसेही।

(१-२०६-१२)

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धारि धीर।

(१-२१०)

दृष्टि ही तो है। एक महात्मा ने कहा इसका क्षण भर ही सही, चित्त तो विचलित हो ही गया। विश्वामित्र ने उलट करके कहा "एक क्षण के लिए अगर विचलित भी हो गई, अनजाने में, उसका इतना बड़ा दण्ड और हजारों वर्ष में अविचल स्थिर हो करके, आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही है, इसका अभिप्राय यह है कि इसमें चेतना का संचार करके इसके पापों, (अगर वह पाप माना जाए) तो उससे मुक्ति यह तो आपके द्वारा ही संभव है" और वही भगवान श्री राम ने किया। भगवान् श्री राम की यह जो यात्रा है, वह यात्रा समन्वय की यात्रा है। भगवान् राम वही मानते हैं तो संत विश्वामित्र की धारणा है कि नहीं-नहीं एक क्षण के लिए किसी से त्रुटि होने से ही वह इतना पतित नहीं मान लिया जाना चाहिए कि उसको बहिष्कृत कर दिया जाए, दूर कर दिया जाए और सचमुच श्री राम के चरण का स्पर्श होते ही गोस्वामी जी कहते हैं—

परसत पद पावन सोक नसावन, प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होई कर जोरि रही।।

(१-२१०)

और कैसा प्रेम का संचार हुआ-

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहिं आवइ बचन कही।

और जब भगवान की

अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी,

अब शब्द गोस्वामी जी का देखेंगे-अहिल्या ने अत्यन्त निर्मल वाणी में प्रभु की स्तुति की। स्तुति तो बहुत से लोग करते हैं पर स्तुति करने वालों की वाणी बहुत निर्मल हो ऐसा होता नहीं है। बिरले ही ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनकी स्तुति सचमुच मन से, वाणी से, हृदय से एक जैसी हो। नहीं तो जिह्वा से, मुंह से प्रार्थना का शब्द निकल रहा है, और फिर बीच में कोई काम आ गया तो उसको बोल दे रहे हैं, किसी को डांट भी दे रहे हैं वह

जो प्रार्थना का रूप है, वह तो यांत्रिक है, समय से प्रार्थना करनी चाहिए लेकिन यहां गोस्वामी जी लिखते हैं-

अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी

और ये कहा-

ज्ञानगम्य जय रघुराई

(१-२१०-६)

"प्रभु आप तो ज्ञान के द्वारा ही जाने जाते हैं। वेदान्त के तत्व का निरूपण करते हुए कहा कि आप तो सचमुच घनीभूत ज्ञान हैं और ज्ञान के द्वारा ही आपको जाना जा सकता है और तब अहिल्या के मुख से निकला—

रावण रिपु जन सुखदाई

(१-२१०-६)

"हे रावण के शुत्र, आप जन को सुख देने वाले हैं।" गोस्वामी जी वह नहीं करना चाहते थे जो हमारे त्रिपाठी जी को लगा था। गोस्वामी जी तो बहुत बड़ी बात कह गए। वह बनाना चाहते थे, यही वह अहिल्या है जिसने एक दिन इन्द्र को सामने देख करके भी नहीं पहचाना था कि मेरे पतिदेव हैं कि इन्द्र और अब दृष्टि इतनी निर्मल हो गयी कि भविष्य में जो "रावण रिपु" होने वाले हैं वह भी दिखाई देने लगा। यह जो दृष्टि है इतनी निर्मल हो गयी, पवित्र हो गयी कि पूरी रामकथा दिखाई दे रही है। अभी अन्य लोगों को पता नहीं है कि रावण रिपु हैं पर अहिल्या की दृष्टि इतनी निर्मल है, वाणी निर्मल है, नेत्र निर्मल है, उसका जीवन निर्मल है और इसीलिए 'रावणरिपु' शब्द कह करके उन्होंने भूल नहीं की है अपितु 'रावण रिपु' कह करके तो उन्होंने यही बताया कि भई इतनी दूर दृष्टि तो बिना भगवनान् की कृपा के, भगवान् की भक्ति के, जीवन में आ नहीं सकती। इसलिए जब अहिल्या स्तुति 'रावण रिपु' शब्द कह करके करती है और उसके साथ वह सूत्र बड़े ही महत्व का है कि भई आप क्रिया के रूप में भले ही चरित्र में नियमों का पालन कर दें, क्रिया ही तो आप बना सकते हैं। उससे अधिक मन की जो एक धारणा है, मन का जो स्वभाव है उस पर काबू पाना अत्यन्त कठिन है और दिखाई तो दे रहा है कि हमारे आपके शरीर का महत्व तो है ही पर जैसे मान लीजिए

कि आप यह निर्णय कर लें कि हम नेत्र से दूसरे की ओर दृष्टि नहीं डालेंगे तो यह निर्णय करके आप आंख तो मूंद सकते हैं पर शरीर के पीछे एक और भी तो है और वह है मन। और यह मन बड़ा विलक्षण है। आप आंख मूंदे हुए हैं और आंख मूंद करके आप यही तो चेष्टा कर रहे हैं कि आप किसी को नहीं देखेंगे। जैसे आपने कमरा बंद कर लिया। क्यों-बोले पूजा का समय है। और उसके पश्चात् नेत्र का किवाड़ भी बंद कर लिया। पर बंद कर लेने के बाद वह जो भीतर बैठा हुआ आपका मन है क्या सचमुच वह उसी स्थिति में है, जिसमें आप स्वयं को दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं? इसका अर्थ है कि क्रिया के द्वारा हम नेत्र मूंद लें, कान मूंद लें, बाहरी रूप से उसका महत्व कम नहीं आकें पर इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मन अद्भुत है। गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका में बार-बार प्रभु से यही रोना रोया-

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुणामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ।।१।।

(वि.प.२४५)

"प्रभु! यह जो मन है, अब आप उसका खेल देखेंगे।" आप दिन भर चलें, बोलें, काम करें तो शरीर थक जायेगा। शरीर थक जायेगा तो कहेंगे चलो भई अब तो सोना चाहिए। जब आप सोने गये तो नींद क्यों नहीं आ रही? शरीर कहता है मैं थक गया और मन कहता है मैं तो थका ही नहीं तुम भले ही सोओ, हम क्यों सोएं। यही उस पलंग पर मन और शरीर का झगड़ा होता है, जब दोनों लड़ने लगे तो कहां से नींद आयेगी। मन कहता है, तुम आंख बंद कर लो, तुम कान बंद कर लो, हम सब कुछ बना लेंगे और वह मन एक ऐसा राज्य बनाता है कि वह राज्य बना करके उसमें घूमता फिरता रहता है। अगर अहिल्या से कोई पूछ दे कि तुमने जो भूल की वह आगे अब तो नहीं होगी? अहिल्या ने यही कहा कि महाराज मैं कैसे यह कह सकती हूं कि आज जो मुझसे भूल हुई कल नहीं होगी? और तब उसने उपाय यही कहा कि "महाराज एक ही उपाय है कि अब कुपथ्य से रोग होता है। कुपथ्य करना नहीं चाहिए पर कुपथ्य तो बार-बार व्यक्ति से होता है।" एक सज्जन ने, डॉक्टर ही थे, विनोद में मुझसे कहा, कि डॉक्टर लोग भोजन की बड़ी सूची बनाते हैं और आप उसे देख

करके भले ही प्रभावित हों पर जब ये लोग किसी पार्टी में भोजन करते हैं तो उनको देख के आप लोग अनुभव करेंगे कि वे कितने संयमी हैं। डॉक्टर श्रोता भी होंगे तो बुरा नहीं मानेंगे। सबकी दशा वही है चाहे वह जीवन के किसी पक्ष का व्यक्ति हो। इसका अभिप्राय है कि वह जो मन का इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है, वह मन को बहका देता है और तब अहिल्या ने यही कहा कि "प्रभु!" इतने वर्ष सेवा करने के बाद भी त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करने के बाद भी, अगर हमारे मन में वह वृत्ति आई तो मैं, यही कहूंगी कि जिस दवा के द्वारा मैं चैतन्य हो गयी हूँ, वह दवा मैं आपसे मांगती हूँ और वह मैं ले जाऊंगी-

पद कमल परागा रस अनुरागा

(१-२१०-११)

रस की जीवन में आवश्यकता है—

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागंउ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मन मत मधुप करै पाना।।

(१-२१०-११)

मेर मन भ्रमर उस दिव्य अनुराग रस का पान करता रहे मानों वह अनुराग रस देने की क्षमता महर्षि गौतम में नहीं है, जो भगवान राम में हैं। तब यह जो भक्ति रस का सामंजस्य है मानों यह बताने के लिए है कि हां, चरित्र निर्माण भी महान आवश्यक वस्तु है, पर मनुष्य के मन के लिए रस की आवश्यकता है, मनुष्य के जीवन में भाव की आवश्यकता है और यह भक्ति का पक्ष है। ज्ञान का पक्ष विवेक का पक्ष है। विवेक के पक्ष का अभिप्राय है कि कभी-कभी हमसे अनेक ऐसी ऐसी भूलें होती हैं जो हमारे अज्ञान के कारण, नासमझी के कारण, विवेक शून्यता के कारण होती हैं, तो उसका अभिप्राय है कि मनुष्य के विवेक में भी, मस्तिष्क में भी परिवर्तन होना परमावश्यक है। मनुष्य की अगर बुद्धि ही पवित्र नहीं होगी, शुद्ध नहीं होगी, अगर वह सत्य को बुद्धि से ठीक-ठीक समझ ही नहीं लेगा तो फिर व्यक्ति जीवन में धन्यता प्राप्त नहीं कर सकता। ज्ञानी जब मस्तिष्क या बुद्धि पर बल देता है तो उसका अभिप्राय है कि हम सही सही जाने। जानना परम आवश्यक है। क्या सही है क्या नहीं सही है, क्या पवित्र है, क्या अपवित्र है, क्या धर्म है? इसको हम सही सही

अर्थों में न जान पावें तो न जान पाने का परिणाम क्या होगा? आप जब यह जानते ही नहीं कि क्या धर्म है तो आप उसका पालन करके धर्म का अभिमान तो जीवन में लेंगे और वास्तविक धर्म आपने भुला दिया महाभारत में महाराज शल्य ने यह निर्णय किया कि युधिष्ठिर मेरे भांजे हैं और जब महान युद्ध हो रहा है तो मेरा कर्तव्य है कि मैं उनकी सहायता करूं और वे सेना को लेकर चले चतुर छली दुर्योधन ने सेवकों को आज्ञा दिया कि महाराज शल्य जिस मार्ग से जा रहे हैं, उस मार्ग में ऐसी सुंदर ठहरने की भोजन की, विश्राम की व्यवस्था करो जिससे वे प्रसन्न हो जायें। महाराज शल्य जहां जाते दुर्योधन के सेवक स्वागत करते, भोजन कराते, रात्रि का विश्राम कराते, शल्य बड़े गद्‌गद् होते। परम समस्या तब आ गई कि जब उन्होंने गद्‌गद् कंठ से कहा कि "आप लोग कितने अच्छे सेवक हैं, हमारे भांजे युधिष्ठिर ने कितना अधिक मेरा ध्यान रखा कि मेरे मार्ग में प्रबंध करा दिया।" तो सेवकों ने कहा- "क्षमा करेंगे आपके भाँजे युधिष्ठिर जी ने नहीं, आपके भांजे दुर्योधन जी ने आपके लिए प्रबंध किया है और तब धर्म के अविवेक का पक्ष सामने आया। शल्य ने निर्णय किया कि शास्त्र यह कहता है कि जिसका भोजन करें जिसका अन्न ग्रहण करें उसकी ही सेवा करनी चाहिए और जब मैंने दुर्योधन का अन्न खा लिया तो दुर्योधन की ओर से ही लड़ना कर्तव्य है। भला आप सोचिए इससे बढ़ कर मूर्खता कोई हो सकती है? उन्होंने प्राण भी दे दिया इस धर्म का पालन करने के लिए। दुर्योधन की ओर से लड़े, मारे गये यही मान करके कि भई मैं क्या करूं, मैं तो धर्म और मर्यादा को कैसे छोड़ सकता हूं? जब मर्यादा यही है, शास्त्र की, युधिष्ठिर से क्षमा मांगने गये कि तुम तो बड़े धार्मिक हो, तुम जानते हो कि अब धर्म को छोड़ना कैसे उचित होगा? अब यह जो धर्म के प्रति उनकी समझ है, पालन ही नहीं किया, प्राण दे दिया क्या वह सही धर्म था? और और तब मुझे वह बात कई बार दोहरानी पड़ती है कि अगर ऐसे ही धर्मात्मा हनुमान जी होते तो रावण की वाटिका का फल खाने के बाद रावण की ओर से लड़ने का निर्णय कर लेते? जब रावण के बाग का फल खा लिय तो अब तो रावण की ओर से लड़ेंगे। इसका अर्थ है कि धर्म के विषय में व्यक्ति का विवेक अगर सही नहीं है, तो अनर्थ हो सकता है। अर्जुन की

महानता है कि उसे समझ में आया कि मेरा कर्तव्य है कि मैं युद्ध छोड़ दूं, पर उसके साथ साथ अर्जुन की विशेषता ये है कि उसने भगवान से कहा-

"धर्मसम्मूढचेताः"

(गीता २-७)

महाराज धर्म के विषय में मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी है "सम्मूढ चेता" हो गया हूँ। आप बताइये कि सही अर्थों में धर्म क्या है। "इसका अर्थ क्या हुआ? मनुष्य में विवेक की आवश्यकता है कि धर्म और अधर्म का निर्णय कर सके, स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सके। मनुष्य में भावना और भक्ति की आवश्यकता है, जिससे उसके हृदय में रस का संचार हो। समाज के लिए, व्यक्ति के लिए चरित्र में ये सब विद्यमान हैं। आप आइये, इसमें आप धर्म का, ज्ञान का, सच्चा अर्थ ग्रहण कीजिए। इसमें भावना और रस का आप दिव्य आनंद लीजिए । चरित्र निर्माण की प्रेरणा प्राप्त कीजिए। गोस्वामी जी ने चार घाटों की जो कल्पना की, उसका तात्पर्य मानों यह था कि आप चाहे ज्ञानी हों, चाहे भक्त हों, चाहे आप कर्मयोगी हों, आइये तो। श्रीराम के चरित्र के इस दिव्य सरोवर में स्नान तो कीजिए। पर सबसे अधिक आनन्द तब है जब तुलसीदास जी से किसी ने कहा कि तीन घाट पर तो ये तीन महापुरुष हैं। चौथे घाट पर कौन है? आप किस घाट पर हैं? बोले हम तो भई पशुओं वाले घाट के हैं। सीढ़ी तो हमारे जीवन में कोई है नहीं कि जिससे हम उतर सकें। तो उनसे पूछा गया कि अब श्रीराम के चरित्र में शंकर जी ने तो सब कुछ ही निकाला। भुशुण्डिजी ने भगवान के गुण निकाले, श्री याज्ञवल्क्य जी ने भगवान राम का चरित्र बताया पर आपने श्री राम के चरित्र से क्या लिया और तब गोस्वामीजी ने ऐसी बात कही जो केवट वाली भाषा है, बोले शंकरजी ने श्रीराम से लिया, भुशुण्डि जी ने श्रीराम से लिया, याज्ञवल्क्यजी ने भी लिया। पर मैंने श्रीराम को दिया। तो आप उनसे बड़े हो गये। नहीं, बड़े तो भले ही न हों पर ये जो सारी वस्तुएं भगवान राम के चरित्र में हैं, इन्हें बड़े से बड़े व्यक्तियों ने ले लिया। एक वस्तु श्रीराम के चरित्र में नहीं थी- पानी में शीतलता होनी चाहिए।, मिठास होनी चाहिए, स्वच्छता होनी चाहिए, गहराई होनी चाहिए। पर कभी-कभी लोग कहते हैं कि जल है तो बढ़िया पर भारी बहुत है, पचता नहीं है। जल जो है शीतल हो, स्वच्छ हो, गहरा

हो पर उसे हल्का भी होना चाहिए। गोस्वामी जी ने बड़ी ही मधुर काव्यमयी भाषा में यह कहा कि श्रीराम के चरित्र में गहराई भी थी, मिठास थी यह सब कुछ था स्वच्छता भी थी पर हल्कापन नहीं था। अब जल में हल्कापन गुण है पर किसी के चरित्र के लिए कह दें, ये तो बड़े हल्के चरित्र वाला है, तो उसकी इससे बढ़के कोई निन्दा नहीं हो सकती। तो गोस्वामीजी ने कहा कि मैंने भगवान राम से कहा कि "प्रभु! आप में सब कुछ है, हल्कापन नहीं है और मुझमें कुछ भी नहीं है पर हल्कापन ही है तो आइये न हम अपना हल्कापन आपके चरित्र से मिला दें। अलग हल्कापन तो दोष होगा। पर आपके चरित्र से मिलकर वह हल्का जल भी लोगों के कल्याणकारी होगा और इस तरह से गोस्वामी जी ने चार घाटों की जो परिकल्पना की उसका अर्थ है कि ये किसी वर्ग, सम्प्रदाय या किसी मान्यता के लिए ही नहीं, वे समान रूप से सबके लिए उपादेय हैं, कल्याणकारी हैं और यही संकेत ये जो चार वृक्ष हैं और चार वृक्षों के नीचे जो साधना है, चार वृक्ष, चार घाट, चार फल, चार भाई-ये चार अंकों का जो बाहुल्य है वे सबके सब बड़े निहित अर्थ वाले अंक हैं। और यहां पर भी आप यही पावेंगे। उसको उस रूप में आप लेंगे- पीपल के नीचे ध्यान, पाकरी के नीचे जप, आम के नीचे मानस पूजा, बट के नीचे कथा, इसका मूल उद्देश्य यही है कि हमें जीवन में जो चाहिए ध्यान के द्वारा, जप के द्वारा, मानस पूजा के द्वारा, कथा के द्वारा ये समस्त तत्व भुशुण्डि जी की साधना में विद्यमान है और आनन्द यही है। सम्प्रदाय के और दीक्षा भी उन्होंने ली तो किसी भक्त से नहीं ली, ज्ञानी से ली। मानों संकेत यह है कि ज्ञान और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं है और पराकाष्ठा यह है कि शंकर जी ज्ञान घाट के आचार्य होते हुए भी भुशुण्डि जी की कथा स्वयं सुनने आये।

वस्तुतः श्रीरामचरित मानस समन्वय और सामंजस्य का ग्रन्थ है तो समग्र मनुष्य जाति के लिए समान रूप से उपयोगी है।

हमारे और आपके जीवन की जो समस्याएं हैं चाहे वे चरित्र की हों चाहे भावना की हों, चाहे विचार की हों, चाहे समर्थता की, सबका समाधान आपको श्रीराम के चरित्र में मिलेगा। इसकी चर्चा कल से प्रारंभ करेंगे।

बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।

तृतीय

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहीं दूजा।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहि अनेक विहंगा।।

(७-५६-५)

भगवत कथा रसिक महानुभावों, भक्तिमयीं देवियो,

आइये हम सब पूरी एकाग्रता से उस प्रसंग, उन पंक्तियों के माध्यम से गोस्वामी जी महाराज ने जो मानव समाज को, मनुष्य मात्र के कल्याण का जो पथ बताया, उस उपदेश को हृदयंगम करने की चेष्टा करें। भगवान् शंकर तीर्थों का भ्रमण करते हुए सुमेरु पर्वत पर पहुंचते हैं और उन्होंने यह दृश्य देखा कि सुमेरु पर्वत के चार शिखरों पर चार वृक्ष हैं। एक शिखर पर पीपल का वृक्ष है जिसके नीचे बैठ करके भुशुण्डि जी ध्यान की साधना करते हैं। दूसरा वृक्ष पाकरी का है जिसके नीचे जप करते हैं, जप यज्ञ जहां सम्पन्न होता है। तीसरा वृक्ष आम का था। उसके नीचे बैठ करके वे मानस पूजा करते हैं और चौथा वृक्ष वट का है जिसके नीचे बैठ करके वे भगवान् की मंगलमयी कथा सुनाते हैं। आप सब दो दिनों से जो भूमिका सुनते रहे हैं उसका समग्र सार तत्व यही है कि जब मनुष्य रोगी होता है, व्यक्ति रोगी होता है तो वह चिकित्सक की खोज करता है, डाक्टर या वैद्य की खोज करता है और जिस व्यक्ति को जिस पद्धति से लाभ होता है, उसका विश्वास उसी पद्धति पर होता है वह दूसरों को भी आग्रहपूर्वक यह बताता है कि इन वैद्य के द्वारा या डाक्टर के द्वारा या चिकित्सक के द्वारा मुझे लाभ हुआ है और आपको भी इसके द्वारा लाभ हो सकता है। तो ज्ञान मार्ग, भक्ति, कर्म या शरणागति का भी वही तात्पर्य और उद्देश्य है। ज्ञानी भी यह चाहता है कि मन के रोग दूर हों, मनुष्य की समस्याओं का समाधान हो, भक्त कर्मयोगी और शरणागत सभी तो यही चाहते हैं। इसलिए पद्धतियों में भिन्नता होते हुए भी जिस पद्धति से जिनको लाभ होता है वह उसकी प्रशंसा करेंगे।

अगर किसी को ज्ञान के माध्यम से परम सत्य का साक्षात्कार हुआ तो ज्ञान की प्रशंसा करेगा और यही भक्ति कर्म और शणागति के संदर्भ

में भी है और गोस्वामी जी भगवान् श्रीराम के चरित्र की जो परिकल्पना करते हैं, जो रूप प्रस्तुत करते हैं, उसमें वे यह कहते हैं कि एक दिव्य सरोवर और उस सरोवर में चार घाट हैं और वक्ता अपनी पद्धति से भगवान राम के चरित्र का निरूपण अथवा व्याख्या करते हुए दिखाई देते हैं तो आइये यह प्रसंग गंभीर है पर आप सब तो इतने प्रबुद्ध और सजग श्रेता हैं कि मैं नहीं समझता हूं कि इतने वर्ष निरंतर कथा श्रवण के बाद आपको उसमें कठिनाई होनी चाहिए। फिर भी मैं अनुरोध करूंगा कि आप पूरी एकाग्रता से उसे सुनने की कृपा करेंगे। ये जो चार वृक्ष हैं और चार वृक्षों के नीचे जो साधना सम्पन्न हो रही है उसका मूल सूत्र क्या है। आपने एक शब्द बार बार प्रवचन कर्ताओं, विद्वानों, संतों के मुख से सुना होगा, अन्तःकरण चतुष्टय। उनके कार्यों का बंटवारा इस रूप में किया गया कि जहां मनुष्य के मन में एक संकल्प विकल्प, यह ठीक कि वह ठीक, यह करें व वह करें, ये जो नाना प्राकर के संकल्प विकल्प उठते हैं उसी का नाम मन है और जिसके द्वारा आप निर्णय करते हैं । उस निर्णय के अनुवार कार्य जिसके द्वारा सम्पन होता है, उसी का नाम बुद्धि है। निर्णय होता है जैसे कोई निर्णायिक न्यायाधीश जब निर्णय करता है तो निर्णय के लिए वह संविधान नियम जो कानून है उनके माध्यम से व्याख्या करता है। उसी प्रकार से जब हम और आप कोई निर्णय करते हैं तो उसके पीछे क्या होता है। इसका उत्तर यह है कि इसको हमारी शास्त्रीय भाषा में संस्कार कहा गया है। संस्कार का अभिप्राय है मान लीजिए किसी देश में आपने जन्म लिया, किसी प्रान्त में आपका जन्म हुआ होगा, किसी जाति में हुआ होगा, किसी परिवार में हुआ होगा और स्वाभाविक रूप से उस देश की, उस प्रांत की, उस जाति की, उस परिवार की परम्पराओं में कुछ न कुछ भिन्नता होती है। तो अब छोटी सी अवस्था से ही बालक जो सुनता आया है, अपने परिवार के सदस्यों को जो करता देखता आया है, उसको लगता है कि यही सही पद्धति है और उस रूप में ही उसका आचरण क्रियान्वित किया जाता है। अब वह जो व्यक्ति निर्णय करता है, वह निर्णय उसके संस्कार से ही जुड़ा हुआ है। जैसे मैंने कहा कि चाहे वह देश का हो, काल का हो, चाहे व्यक्ति का हो, किसी समुदाय का हो, वे संस्कार उसके अन्तःकरण में संग्रहीत हैं। उसी के

आधार पर वह कहेगा कि नहीं बिल्कुल ये ठीक है, यह ही सत्य है। ये जो संस्कार हैं, जहां संग्रहीत हैं, जहां एकत्र हैं उसी का नाम है चित्त और हमारे सनातन धर्म में तो पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है। अब यह प्रश्न किया गया कि ऐसा भी दिखाई देता है कि एक व्यक्ति परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्तियों के स्वभाव में जब भिन्नता होती है तब यह प्रश्न होता है कि एक ही परिवार में एक ही जैसे वातावरण में रहने के बाद भी दो भाइयों के स्वभाव में भेद क्यों, उनके क्रियाकलाप में भेद क्यों है और तब सनातन धर्म ने इसका उत्तर दिया कि संस्कार केवल इसी जन्म के नहीं होते हैं, पूर्व-पूर्व जन्मों के संस्कार ले करके ही व्यक्ति, बालक जनम लेता है। तो अगर किसी व्यक्ति के पूर्वजन्म के संस्कार बहुत तीव्र हैं और मान लीजिए वर्तमान का जो वातावरण है उससे भिन्न है अब तो उस व्यक्ति के जीवन में जो संस्कार होगा वह अधिक शक्ति हो करके उसके क्रियाकलाप में और उसके विचारों में दृष्टिगोचर होगा। बड़ा विनोद भरा प्रसंग आपने सुना होगा कि भगवान् कृष्ण को यशोदा मैया बड़े प्रेम से स्नान कराती हैं, श्रृंगार करती हैं और वह खेलने के लिए उनको भेज देती हैं, पर थोड़ी देर बाद कृष्ण कीचड़ में लिपटे हुए जब उनके सामने आते हैं तो माँ को बड़ा क्रोध आता है। तब यह श्रीकृष्ण से कहती हैं कि मैंने इतने प्रेम से तुम्हारा श्रृंगार किया उसके बाद तुम इस तरह से कीचड़ में लथपथ हो गए। जब कीचड़ तुम्हें इतना प्रिय है तो मैं समझ गई कि तुम्हारा पूर्वजन्म क्या रहा होगा?

त्वं शूकरोसि गत जन्मनि पूतनारे

निश्चित रूप से तुम पूर्व जन्म में शूकर थे। शूकर को कीचड़ बहुत प्रिय है उससे लिपटा रहता है। माँ ने क्रोध, व्यंग में ही कहा था। कोई वह भूतकाल का सत्य नहीं बता रही थी। उन्होंने कहा कि पूर्व जन्म का अभ्यास होगा तभी तो तू कीचड़ से सन जाता है। इसको लेकर के घरों में कहावतें प्रचलित हैं। किसी व्यक्ति को दूध अच्छा नहीं लगता उसके भी लोग कोई न कोई कारण, कोई न कोई बात कह देते हैं। इस तरह से यहां पर इसका अर्थ है कि इस जन्म के जो संस्कार हैं तो हमारे आपके जीवन पर प्रभावशाली हैं ही, पूर्व जन्म के संस्कार जो संग्रहीत हैं, वह जहां संग्रहीत हैं उसी का नाम चित्त है और यह संस्कार जिस समय आपके

तरह से स्वस्थ नही हो सकता है। महर्षि पतजलि ने योग की पद्धति और कैसे क्रमश व्यक्ति ध्यान करते-करते समाधि की स्थिति मे जाता है और समाधि की स्थिति मे पहुचकर वह आत्मतत्व का ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, इसकी बडी ही विस्तृत और बडी जटिल व्याख्या पातजल योग दर्शन मे की गयी है। पर पहला सूत्र उसका यही है महर्षि पातजल योग दर्शन को प्रारभ करते है तो उनसे पूछा गया— क्या है? आजकल योग शब्द बडा प्रिय है। बहुत से लोग जब बात कहते है कि आजकल मै योगा करता हू वे योग को थोडा योगा बना है। उसमे अगेजी का रस थोडा मिल जाता है। योगा का अर्थ ठीक वह जो करते है वह भी योग का ही एक अग है, पर योग की पद्धति ही नही है कि आसन कर लिया, प्राणयाम कर लिया। उनके द्वारा लाभ ही है पर उसका उद्देश्य क्या है? महर्षि पतजलि कहते है व्यक्ति को क्रमश ध्यान के माध्यम से अपनी चित्त वृत्तियो के तक पहुचना है। यह उनका एक लक्ष्य है, सूत्र है। अब इसको सदर्भ मे विचार करके देखे। जैसे रावण के चरित्र मे मिलेगा। रावण विशेष प्रकार का ध्यान योगी है। उसके लिए ध्यानयोगी शब्द शायद उचित नही होगा। बहुत बडा ध्यान कुयोगी है। ध्यान योगी कुयोगी इसलिए है कि ध्यान का अगर कोई सदुपयोग करे तो ध्यान और ध्यान की शक्ति का अगर कोई दुरुपयोग करे तो वह कुयोगी रावण मे ध्यान करने का अद्भुत क्षमता है और रावण के जीवन मे ध्यान दिखाई देता है उस ध्यान की तो कल्पना तथाकथित जो माने योगी है, उनके जीवन मे भी नही दिखाई देती है। कितना बडा है? उसने ध्यान को किस सीमा तक पहुचा दिया है इसका सूत्र मिलेगा। मेघनाद मारा जा चुका है, कुभकर्ण मारा जा चुका लंका के अधिकाश योद्धा मारे जा चुके है। अब केवल रावण शेष है यह सदेश मिल जनकनदिनी सीता को बस आज प्रात काल से रावण से युद्ध प्रारभ होगा तो जनकनदिनी को यही लगा कि कुछ मे ही रावण का वध होगा जैसे कुभकर्ण और मेघनाद का युद्ध समाप्त हो जाएगी। अब

अन्तःकरण में उदित होगा, आप अपनी बुद्धि के द्वारा उसी को सही मानेंगे वैसा ही निर्णय करेंगे। तो मन वह है जो बुद्धि के द्वारा संकल्प और विकल्प करता है, बुद्धि है वह जो निर्णय देती है और चित्त वह है जो संस्कार के ही अनुकल निर्णय देता है। गोस्वामीजी से पूछा गया, "लोग इतनी कथा सुनते हैं, सत्संग में जाते हैं। सुन करके उनको लगता भी है कि हां ये बात तो अच्छी है ठीक है पर ऐसा क्यों हैं कि उनके जीवन में उनका व्यवहार वैसा नहीं हो पाता है?" गोस्वामी जी ने इसका उत्तर यही दिया कि "जैसे आपकी कोई आदत लड़कपन से पड़ गयी हो तो आप समझ लेते हैं कि यह आदत आपकी सही नहीं है अब अगर कोई व्यक्ति नाखून को ही दांत से कुतरने लगता है, तो एक बड़ा ही अभद्र दृश्य उपस्थि होता है। वह नहीं समझता है कि कोई मैं बड़ा वैज्ञानिक कार्य कर रहा हूं। मुंह में उंगली डाल करके उसको चबाने का कार्य रहा हूँ पर उसे पूछिए तो वह यही कहेगा कि क्या बतावें अनजाने में ही आदत पड़ गयी है और वह आदत मुझसे छूटती नहीं। गोस्वामीजी कहते हैं, जब एक जन्म में जो आदत पड़ गयी वह नहीं छूटती तो इतने जन्मों की जो आदत है और उसके लिए जो उन्होंने पद लिखा वह यही है-

मोह जनित मल लाग विविध विधि कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक लपटाई।।१।।

यह वह चित्त है जो इतने पूर्व संस्कारों से अभयस्त हो चुका है कि सुन करके समझने के बाद भी उसे क्रियान्वित कर सकने में सक्षम नहीं दिखाई देता है। तो जो गुण का केन्द्र सामने नहीं आता है वह चित्त है और उसी में संस्कार संग्रहीत हैं और उसके बाद जब आप कोई क्रिया करते हैं तो क्रिया करने के साथ या तो आप निर्णय करेंगे, मैं ये करूंगा, मैने ऐसा किया, मैं भविष्य में ऐसा करूंगा, पहले ऐसा कर चुका हूं तो इन सबके मूल में एक शब्द आप जोड़ देते हैं मैं। मैंने ऐसा किया, मैं ऐसा कर रहा हूं मैं ऐसा करूंगा। इस तरह से ये मन, बुद्धि और चित्त तथा अंहकार हमारे आपके अन्तःकरण में चार विभाजित रूप में विद्यमान हैं। प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व की बनावट अलग अलग है और उसके अनुकूल ही वे व्यक्ति को उपाय बताते हैं। किसके लिए कौन सा उपाय ठीक है। व किससे आप लाभ अनुभव करते हैं। हां, इससे मुझे लाभ हुआ आप ऐसा

अनुभव करेंगे तो आपके लिए यह पद्धति ठीक है। ध्यान की पद्धति जो रामचरितमानस में बताई है उसमें भुशुण्डि जी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ करके ध्यान करते हैं। आप में से रामायण का पाठ करते होंगे, न करते हों तो आप अवश्य करें इससे आप और अधिक आनन्द रामचरित मानस में ले सकेंगे क्योंकि जो पंक्तिया हैं वे एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। वे आपको बड़ी उपयोगी लगेंगी। जो विभाजन किया है वह चार अंक है। चाहे चार घाट हैं, चाहे चार युग हैं चाहे अन्तःकरण के चार रूप हैं, चाहे भगवान राम के चार भाई हैं। इस तरह से चार के अंक बहुत बड़ी संख्या में आपको धार्मिक और आध्यात्मिक प्रतीकों में मिलेंगे। तो इसमें सतयुग जिसे सर्वश्रेष्ठ युग पुराणों में माना। उस युग के लिए उन्होंने कहा कि ज्ञान प्रधान युग था और जिसमें व्यक्ति योग के माध्यम से सत का साक्षात्कार करता था। अब वह पंक्ति मानस में आपको मिलेगी-

सतजुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।

(७-१०२ख१)

सतयुग की साधना पद्धति में योग और ध्यान की प्रधानता थी और उसके माध्यम से ही व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार करता था। अब यह जो योग का मार्ग है जिसमें ध्यान को इतना महत्व दिया गया, आजकल भी ध्यान योग पर बहुधा चर्चा होती है। ध्यान योग के महत्व का प्रतिपादन किया जाता है। उसका वर्णन शास्त्रों में जिस रूप में किया गया है उसके पीछे जो निहित तात्पर्य है आइये उस पर दृष्टि डालें। ध्यान की साधना में चित्त की मुख्यता है। भक्ति की साधना में मन की मुख्यता है, कर्म की साधना में व्यक्ति के अहं की मुख्यता और असमर्थता में शरणागति की साधना विद्यमान है। इसे और स्पष्ट कर लें कि जैसे किसी रोग को नष्ट करना हो, तो नष्ट करने के लिए ऐसी दवा मिले जिससे व्यक्ति के शरीर में या मस्तिष्क में पीड़ा हो रही है उससे छुट्टी मिले पर सिर दर्द दूर हो गया पर सिर दर्द के कारणों का पता नहीं चला तो बार बार होगा, बार बार वही गोलियां लेनी पड़ेंगी और लेने के बाद फिर अभ्यास बनेगा। अभ्यास बनने के बाद वे दवाइयाँ भी प्रभावशाली नहीं रह पातीं, उनका भी प्रभाव वैसा नहीं होता। इसलिए वेदान्त की यह मान्यता है, योगशास्त्र की यह मान्यता है और ज्ञान की यह मान्यता है कि जब तक अंतरंग

कारण की चिकित्सा नहीं की जाएगी तब तक सही अर्थों में व्यक्ति पूरी तरह से स्वस्थ नहीं हो सकता है। महर्षि पतंजलि ने योग की पद्धति का और कैसे क्रमश: व्यक्ति ध्यान करते-करते समाधि की स्थिति में पहुंच जाता है और समाधि की स्थिति में पहुंचकर वह आत्मतत्व का ब्रह्म तत्व का साक्षात्कार करता है, इसकी बड़ी ही विस्तृत और बड़ी जटिल व्याख्या पातंजल योग दर्शन में की गयी है। पर पहला सूत्र उसका यही है जब महर्षि पातंजल योग दर्शन को प्रारंभ करते हैं तो उनसे पूछा गया—योग क्या है? आजकल योग शब्द बड़ा प्रिय है। बहुत से लोग जब बात हो तो कहते हैं कि आजकल मैं योगा करता हूं वे योग को थोड़ा योगा बना देते हैं। उसमें अंगेजी का रस थोड़ा मिल जाता है। योगा का अर्थ ठीक वही है वह जो करते हैं वह भी योग का ही एक अंग है, पर योग की पद्धति इतनी ही नहीं है कि आसन कर लिया, प्राणयाम कर लिया। उनके द्वारा भी तो लाभ ही है पर उसका उद्देश्य क्या है? महर्षि पतंजलि कहते हैं कि व्यक्ति को क्रमशः ध्यान के माध्यम से अपनी चित्त वृत्तियों के निरोध तक पहुंचना है। यह उनका एक लक्ष्य है, सूत्र है। अब इसको आप इस संदर्भ में विचार करके देखें। जैसे रावण के चरित्र में मिलेगा। रावण एक विशेष प्रकार का ध्यान योगी है। उसके लिए ध्यानयोगी शब्द कहना शायद उचित नहीं होगा। बहुत बड़ा ध्यान कुयोगी है। ध्यान योगी और कुयोगी इसलिए है कि ध्यान का अगर कोई सदुपयोग करे तो ध्यान योगी और ध्यान की शक्ति का अगर कोई दुरुपयोग करे तो वह कुयोगी। तो रावण में ध्यान करने का अद्‌भुत क्षमता है और रावण के जीवन में जैसा ध्यान दिखाई देता है उस ध्यान की तो कल्पना तथाकथित जो माने जाने योगी हैं, उनके जीवन में भी नहीं दिखाई देती है। कितना बड़ा वह ध्यान है? उसने ध्यान को किस सीमा तक पहुंचा दिया है इसका आपको एक सूत्र मिलेगा। मेघनाद मारा जा चुका है, कुंभकर्ण मारा जा चुका है। लंका के अधिकांश योद्धा मारे जा चुके हैं। अब केवल रावण शेष है। जब यह संदेश मिल जनकनंदिनी सीता को बस आज प्रातःकाल से प्रभु का रावण से युद्ध प्रारंभ होगा तो जनकनंदिनी को यही लगा कि कुछ समय में ही रावण का वध होगा जैसे कुंभकर्ण और मेघनाद का हुआ और हमारी विपत्ति और संकट की समाप्ति हो जाएगी। जब त्रिजटा आई

लौट करके सायंकाल के समय जनकनंदिनी सीता ने पूछा-"रावण मारा गया"। नहीं देवी दिन भर आज युद्ध चलता रहा किंतु रावण नहीं मरा, दूसरे दिन भी वही, तीसरे दिन भी वही, चौथे दिन भी वही उत्तर। जब सत्रह दिनों तक यही उत्तर जनकनंदिनी को प्राप्त होता रहा त्रिजंटा के द्वारा तो वह व्याकुल हो गयी और व्याकुल हो करके उन्होंने कहा-त्रिजटा मैं तो आज तक यही समझती रही कि हमारे प्रियतम प्रभु श्री रामभद्र का बाण अमोघ है। वह जब किसी लक्ष्य की ओर चलता है तो लक्ष्य तो पूरा हो ही जाता है। पर आश्चर्य है कि जब तुम यह कहती हो कि श्री राम बाण के द्वारा रावण का सिर काट देते हैं फिर भी रावण के नये सिर निकल आते हैं तो मुझे तो यही लगता है कि मेरा दुर्भाग्य इतना प्रबल है कि भगवान प्रभु श्री रामभद्र के बाण भी आज निष्फल हो गए तो इससे बढ़ करके मेरा दुर्भाग्य क्या होगा और फिर व्याकुल होकर उन्होंने कहा कि मेरे जीवन में दुर्भाग्यों की एक परम्परा सी बन गई है। भला सोचो, देवी त्रिजटा कि मेरे सामने रावण सोने का मृग ले करके आया और मेरा विवेक इतना सजग नहीं था कि मैं सोच पाती कि स्वर्ण मृग नहीं होता है। लेकिन मैंने उसे केवल असली ही नहीं मान लिया अपितु प्रभु से अनुरोध किया आप उसे ले आइये और उसके पश्चात् विधि की विडंबना है कि प्रभु जब मारीच के पीछे गये, तब वह वस्तुत: नकली स्वर्ण मृग निकला। प्रभु श्री राम जब गये तो लक्ष्मण जी को मेरे पास छोड़ा और ये कहा कि तुम सीता की रक्षा करना और यह भी कह दिया कि ध्यान रखना कि वन में बहुत से राक्षस विचरण कर रहे हैं और इसलिए-

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय बिचारी।।

(३-२७-५)

लक्ष्मण जी जैसा सजग भला कौन हो सकता है, वह मेरा कितना प्रिय कितना विश्वस्त कैसा समर्पित लक्ष्मण? पर मेरी बुद्धि की विडम्बना यह है कि मैंने मारीच के स्वर को प्रभु का स्वर मान लिया और उसके पश्चात् लक्ष्मण से मैंने आग्रह किया कि तुम अपने प्रिय भ्राता की सहायता के लिए जाओ। मेरा ज्ञान नष्ट हो गया था और जब लक्ष्मण जी ने हँस करके यह कहा कि आ .या कह रही हैं तो मैंने उन शब्दों और वाक्यों

का प्रयोग किया कि जिसकी कल्पना करके मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है। लक्ष्मण को मैं कैसे वे वाक्य कह पाई जो मेरे मुंह से निकले और फिर आज जब मैं देख रही हूं कि लंका में रहते हुए प्रभु के द्वारा संहार होने पर भी रावण की मृत्यु नहीं होती है, तब तो मैं यही कह सकती हूं कि आज विधि विधान हमारे प्रतिकूल है " और -

जेहि विधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए।।

(६-९८-८)

मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं, हरि पद कमल बिछोही।।

(६-९८-६)

त्रिजटा ध्यान पद्धति की भी आचार्य है। कृपया पूरी तरह मन भी लगाइयेगा, बुद्धि भी और चित्त को भी लगा के सुनियेगा-

सुनहु ताता मन मति चित लाई।

सूत्र क्या है- त्रिजटा कौन है? ये जो 'त्रि' शब्द है इसमें ध्यान की पद्धति के तात्विक पक्ष की ओर संकेत किया गया है। जब कोई व्यक्ति ध्यान करेगा तो जिसका ध्यान करता है उसके लिए शब्द है 'ध्येय' और जो करने वाला है वह है 'ध्याता' यही ध्याता, ध्यान और ध्येय जो है चाहे उसे शिखर कह दीजिए, चाहे जटा कह दीजिए या मानो त्रिवेणी कह दीजिए। प्रारम्भ में आप निर्णय करेंगे मैं भगवान राम का ध्यान करूंगा। उसके पश्चात् आप ध्यान करने बैठेंगे तो ध्यान की पद्धति आपको ज्ञात होगी। आपको कहां ध्यान करना है, हृदय में करना है, भ्रूमध्य में करना है और यह ध्यान की पद्धति है। यह प्रारम्भ है और जब धीरे धीरे क्रमश: इसका विकास होता है तो परिणाम की अंतिम स्थिति, वह है कि जब इन तीनों को अलग-अलग भान न रह जाए। मैं ध्यान करने वाला हूं मैं यह ध्यान कर रहा हूं , यह ध्यान की पद्धति है। तीनों मिल करके यहां बिल्कुल एकाकार हो गए हैं वह साधक न रह करके सिद्ध हो चुका है और यह त्रिजटा है। सचमुच कैसी अनोखी बात है।

श्री हनुमान जी जब लंका से लौट करके आए, तो प्रभु ने कहा कि "हनुमान अभी जाम्बवंत ने जो कथा सुनाई मुझे उससे लगता है कि तुमने रावण को, विभीषण को बड़ा सुन्दर उपदेश दिया, जनकनंदिनी को बड़ी सुंदर कथा सुनाई।" हनुमान जी ने कहा- "प्रभु यह सब भी हुआ लेकिन

लंका में जा करके मेरे भ्रम का जो निवारण हुआ मैं तो ऐसा अनुभव करता हूं कि लंक जाना केवल दूसरों के कल्याण के लिए ही नहीं मेरे स्वयं के कल्याण के लिए भी आवश्यक था। ज्योंकि मैं लंका में प्रविष्ट हुआ, सारी रात्रि लंका में जनकनंदिनी को खोजता रहा। लंका में प्रत्येक राक्षस के भवन में गया, महल में गया और अन्त में लंकेश्वर रावण के महल में गया पर जनकनंदिनी का दर्शन हीं हुआ। मैं निराश हो रहा था कि इतना प्रयत्न करके भी मैं उन्हें नहीं खोज पाया। अचानक मुझे दिखाई पड़ा एक भवन और भवन के बगल में दिखाई पड़ा एक हरिमंदिर जहां पर तुलसी के पौधे लगे हुए थे। मंदिर के ऊपर भगवान के आयुधों का चिन्ह था। मैं सोचने लगा कि कहीं मुझे फंसाने के लिए रावण की कोई माया तो नहीं है ? अगर वह साधु बन करके जनकनंदिनी को धोखा दे सकता है तो कहीं इस प्रपंच के द्वारा मुझे भ्रम में तो नहीं डालना चाहता और तब मेरे मस्तिष्क में यह तर्क भी आया कि लंका, जहां पर वासना भोग और केवल अपवित्रता का ही वातावरण है क्या वहां पर कोई व्यक्ति संत हो सकता है और ऐसा संत कि जो प्रतिकूलता में छिप करके नहीं, प्रत्यक्ष रूप से मंदिर में जाए, मंदिर में पूजा करे, मंदिर का दृश्य क्या रावण जैसा व्यक्ति सह सकता है? यह क्या है- और तब मेरे अन्तःकरण में यह तर्क आया। गोस्वामी जी ने कहा-

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।

(५-५)

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ।।

(५-१)

और हनुमान जी तर्क कर रहे हैं-

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करै कपि लागा।

(५-१)

लंका में क्या कोई सज्जन हो सकता है? प्रभु मैंने कहीं न कहीं भ्रमवश यह अभिमान पाल लिया होगा कि सारे सज्जन और संत तो केवल भारत में ही होते होंगे, बाहर नहीं और इस प्रकार ये मेरा सोचना तो एक

प्रकार का अभिमान है क्योंकि आप अगर सर्वत्र रहते हैं तो संत वहां भी हैं। सूत्र वही है कि ईश्वर जो है वह क्या निर्णय कर चुका है कि इस देश में रहेगा और उस देश में नहीं रहेगा, यहां रहेगा वहां नहीं रहेगा। प्रभु, लंका के संत से जब मेरा मिलन हुआ, तो मुझे लग गया कि आप कैसे कौतुकी हैं कि आपने यह दिखला दिया कि इतना बड़ा खोज करने वाला, जिसने लंका का कोना-कोना देख लिया हो और अन्त में लगा कि लंका में सीताजी नहीं है, पर लंका के संत की कृपा न होती तो जनकनदिनी का पता ठीक-ठीक नहीं चलता और वहां तक पहुंचने के मार्ग को भी मैं नहीं जान सकता था। हनुमान जी ने कहा कि मैं जिस उद्देश्य को ले करके आया था लंका में खोजने के बाद भी मैं नहीं ढूंढ पाया अब हनुमान जी ने ढूंढा और मशक के समान बन करके ढूंढा और फिर भी खोज न पाए और तब उन्होंने कहा कि संत ने मुझे एक युक्ति बता दी-

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।

(५-७-५)

पर गोस्वामी जी युक्ति शब्द का प्रयोग करते हैं। कोई कठिन कार्य सरलता से सम्पन्न करने की कला जिसको ज्ञात है, उसको कहते हैं 'युक्ति'। वह कार्य बड़ा कठिन लग रहा है विभीषण ने कहा कि अरे इस तरह से करो और वह कार्य बड़ी सरलता से हो जायेगा। बोले महाराज पहली बार मुझे अनुभव हुआ है कि नहीं नहीं भारत में ही नहीं लंका में भी इतने बड़े संत हैं जिनकी सहायता के बना तुम इतना प्रयत्न करते हुए भी सीताजी को नहीं ढूंढ़ सकते। अगर इस संत ने युक्ति नहीं बताई होती तो मैं निराश होकर लौट आता और तब

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।

(५-७-५)

प्रभु, मैने मान लिया कि नहीं-नहीं लंका में विभीषण संत है, पर मुझे यह लगा कि यह अपवाद है। संत यहां लंका में बहुत नहीं होंगे। पर अशोक वाटिका में जा करके तो ऐसा लगा कि लंका में जितनी उच्च स्थिति वाले संत हैं वैसे संत तो कोई हमें दिखाई नहीं दे रहे हैं और वे संत कौन थे। हनुमान जी का संकेत त्रिजटा की ओर था। प्रभु मैं अशोक वाटिका में भले ही पहुंच गया पर वहां पहुंच करके भी मैं विचार करने

लगा कि क्या करूं, आ तो गया पर इस वाटिका में मैं जनकनंदिनी के सामने कैस जाऊं यह राक्षसियां चारों ओर बैठी हुई हैं। मैं अगर जाता हुं तो युद्ध संघर्ष और एक भयावना दृश्य होगा। जनकनंदिनी मेरा विश्वास करेंगी नहीं ये समस्याएँ मेरे अन्त:करण में थी और तब-

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करउँ विचार करौं का भाई।।

(५-८-१)

मैं विचार करने लगा। उसी समय जब रावण आ गया तो और बड़ी विपत्ति। रावण जनकनंदिनी को डराने लगा, लोभ दिखाने लगा, यह सब मैं सुनता रहा। जाते हुए भी वह दृश्य आया कि जब वह राक्षस जनकनंदिनी की ओजमयी, तेजमयी भाषा सुन करके क्रोध में भर जाता है और तलवार निकाल करके उनका सिर काटने के लिए चलता है तो एक अनोखा दृश्य मैंने देखा-कि रावण को जनकनंदिनी की ओर बढ़ते देख करके उसकी पत्नी मंदोदरी ने रावण का हाथ पकड़ लिया—मैं चकित हो गया। रावण की पत्नी के हृदय में इतनी उच्च भावना, इतना सद्भाव। सौतिया डाह प्रसिद्ध है। रावण जनकनंदिनी से प्रस्ताव कर रहा है कि तुम मेरी ओर दृष्टि डालो। मेरे महल में निवास करो और मंदोदरी के सामने उसने कहा कि ये मंदोदरी सहित जितनी रानियां हैं, दासी बन करके तुम्हारी सेवा करेंगी-

कह रावनु सुन सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरी करउँ पर मोरा।

(५-८-४)

किसी पट्टमहिषी के लिए, मंदोदरी परम सुंदरी, परम विदुषी, और रावण इस सीमा तक पहुंच जाये कि जब सीता जी से यह कहे कि यह तो दासी बन करके तुम्हारी सेवा करेगी, उसे मन में कितनी ईर्ष्या होनी चाहिए। उसने यह दृश्य देखा कि रावण तलवार ले करके सिर काटने जा रहा है, तो मानवीय स्वभाव तो यही है कि उसे प्रसन्न होना चाहिए कि चलो यह तो मुझे दासी बनाने की कल्पना कर रहा था लेकिन अंत में सिर कट गया यहां कोई आशंका मेरे पट्टमहिषी पद से नीचे उतरने की नहीं है पर उसी में इतनी उदारता की वृत्ति कि उसने रावण का हाथ पकड़ करके रोका। मुझे लगा कि नहीं-नहीं, लंका में रावण जैसे दुश्चरित्र

तो हैं ही पर मंदोदरी जैसी पवित्र सच्चरित्र नारी भी है कि जिसके हृदय में इतने ऊँचे भाव हैं। पर उसके बाद रावण ने राक्षसियों से कहा कि मैं एक मास का समय देता हूँ और तुम सीता को डराओ धमकाओं और इनको प्रेरित करो कि ये किसी न किसी तरह से मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लें और यदि एक मास में भी इन्होंने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो मैं सिर काट लूंगा और तब राक्षसियां भयानक वेश बना करके श्री सीताजी को डराने लगी। अब मेंरी विपत्ति की परिकल्पना प्रभु आप करें कि मैं अनुभव करने लगा कि यहां कठिनाई से पहुँचा और पहुंचने के बाद एक के बाद दूसरी विपत्ति बाधा सामने आ रही है। अब क्या करूं मैं ? जिन राक्षसियों को रावण ने नियुक्त कर रखा था कि सीता जी को डराओ उसमें उसने त्रिजटा को भी नियुक्त कर दिया और तब त्रिजटा की वाणी हनुमान जी ऊपर से सुन रहे हैं। त्रिजटा ने कहा कि तुम इस प्रकार से इनको डराने की भूल मत करो। मैं तुम्हें बताना चाहती हूं कि मैंने एक स्वप्न देखा है। क्या स्वप्न देखा है? लंका में एक बंदर आया हुआ है। श्री हनुमान जी चौंक पड़े-मैं इतना छिप कर आया कि कोई देख न ले और स्वप्न में भी मेरे आने का समाचर जिसे मिल गया उसका अन्त:करण कैसा विलक्षण होगा। सपने को तो लोग झूठ ही मानते हैं। सपना माने झूठ। पर जिसका अनत:करण इतना पवित्र है कि उसका स्वप्न भी असत्य नहीं है, कल्पना नहीं है, यह यथार्थ है। उससे ऊची स्थिति तो कोई हो नहीं सकती । सपना तो झूठा ही माना जाता है। संसार को कहते हैं सपने की तरह है और उसने भविष्यवाणी की—याद रखना उसके आगे भी मैंन देखा है। वह बानर लंका को जलावेगा। अब यह तो हनुमान के लिए और भी बड़ा विचित्र संवाद था क्योंकि प्रभु ने तो लंका जलाने का कोई आदेश नहीं दिया था। त्रिजटा कहती है-

और भविष्यवाणी करते हुए कहा-

जातुधान सेना सब भारी।।

(५-१०-२)

अंत में राम आते हैं और सारी राक्षसों की सेना नष्ट हो जाती है और

खर आरूढ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि विधि से दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।

(५-१०-३)

सारे रामायण का भविष्य का वर्णन उसने सपने के माध्यम से कर दिया। युद्ध होगा राक्षस मारे जायेंगे, रावण का विनाश होगा और विनाश के बाद लंका के राज्य पर विभीषण प्रतिष्ठित होंगे। हनुमान जी को वह पता चला जो स्वयं उन्हें पता नहीं जिसके विषय में उन्हें ज्ञात नहीं है वह उसे ज्ञात। वह है कौन-गोस्वामी जी से पूछा गया यह अद्‌भुत पात्र कौन है। गोस्वामी जी ने कहा-नाम-इसका नाम त्रिजटा है। किस जाति में जन्म हुआ है- राक्षसी एका-राक्षसी जाति में उसका जन्म हुआ है। तो अब राक्षसी में इतनी भविष्यवाणी करने की शक्ति कहां से आ गयी और तब गोस्वामीजी ने त्रिजटा के लिए उन उपाधियों का, शब्दों का प्रयोग किया जो रामायण में बड़े से बड़े भक्तों के लिए सबसे उच्च कोटि के भक्त के लिए किया जा सकता है। साधना किस प्रकार की जाए? साधना का चरम फल क्या है? तो एक आम के वृक्ष का दृष्टान्त दिया गया, जैसे अमराई हो तो प्रारंभ में वृक्ष पर बौर आता है। पर वह भी सारे वर्ष के प्रत्येक महीने में नहीं आता। बसंत ऋतु में आता है। बौर के बाद धीरे-धीरे देखते हैं कि छोटे-छोटे फल आम का सबसे नन्हा रूप 'अमिया' के रूप में दृष्टिगोचर होता है। और फिर दिखाई देता है कि धीरे-धीरे जो नन्हा सा दिखाई देने वाल फल है बड़ा हो करके एक बड़े रूप में सामने हा जाता है और आ जाने के बाद वह फिर फल पक जाता है तो इतना रसीला हो जाता है कि उसका आनन्द, उसका रस पी करके व्यक्ति तृप्त हो जाता है। इसी प्रकार से हमारे आपके जीवन में जो एक भूख है-एक शरीर की भूख है वह तो सभी मैं है पर अगर अन्त:करण में भूख है, मन में भूख है तो उस भूख के लिए आवश्यक है कि आम का रसीला फल हमें मिले और तब वह क्रम है। पहले हमें चाहिए बसंत ऋतु की प्रतीक्षा करें, बसंत ऋतु को हृदय में लाने की चेष्टा करें। कम बताया गया। संत ही मानो आम के वृक्ष हैं। संतों का समूह मानों अमराई है और श्रद्धा ही बसंत ऋतु है। इसका अभिप्राय यह है कि संत के पास अगर आप अश्रद्धा की आंधी लेकर के जायेंगे, कुतर्क की आंधी लें करके जायेंगे तो संत के पास जा करके भी आपको लाभ नहीं होगा। बल्कि लाभ के स्थान पर हानि होने के संभावना है। जैसे आंधी आवे और वृक्ष की डालियों को

गिरा दे, वृक्ष को उखाड़ दे। इसी प्रकार से कुतर्क के स्थान पर पहले तो श्रद्धा और उसके बाद बौर लगेगा। बौर क्या है, बोले-

सम जम नियम फूल फल ग्याना।

(१-३९-१४)

संत के पास श्रद्धा ले करके जाएंगे, संत आपको बतावेंगे कि क्या साधना आपको जीवन में करना चाहिए। कौन सी साधना आपके लिए उपयोगी है। अगर यह साधना आपने स्वीकार कर लिया तो मानो बौर लग गया। उसमें नन्हें नन्हें दो एक संकल्प के द्वारा फल उत्पन्न हुये और बाद में साधना करते-करते जब अन्त:करण में ज्ञान का उदय हो जाए क्रिया के रूप में पहले साधना की गयी और बाद में जब ज्ञान का उदय हुआ तो मानो आम का फल पूरा बढ़ गया। लेकिन आम का फल पूरा बड़ा होने पर भी जब तक पकता नहीं है, तब तक रस नहीं आता है। तब तक वह आनन्द देने वाला, भूख मिटाने वाला नहीं है और वह क्या है- बोले-भगवान के चरणों में जब रति उत्पन्न हो जाए यही शब्द है- 'रति'। तो मानों आम का फल पूरी तरह से रसीला हो या, चौपाइयां मानस में आपको मिलेंगी-

संत सभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।

(१-३६-१२)

और तब वहां पर कहा गया-

सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस वेद बखाना।।

(१-३६-१४)

तो वह चरम स्थिति की बात है। जब अन्त:करण में भगवान के प्रति रति का उदय हो जाए तो जीवन में व्यक्ति धन्य हो गया, पूर्ण हो गया। वह रति शब्द का बहुत महत्व है। श्री भरत जी सबसे बड़े त्यागी माने जाते हैं। वैराग्यवान माने जाते हैं। उनहें कुछ नहीं चाहिए। मैंने कहा चार के अंकों का बड़ा महत्व है। तो उन भरतजी को अर्थ की भी इच्छा नहीं। धर्म का फल भी उन्हें नहीं चाहिए, काम का फल भी नहीं चाहिए और मोक्ष का फल भी उन्हें नहीं चाहिए। तो कुछ चाहिए कि नहीं चाहिए और तब आप उस दोहे को पढ़ें जिसमें त्रिवेणी के तट पर खड़े हो करके श्री भरत कहते हैं कि-

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरवान।

कुछ नहीं चाहिए-कुछ तो लीजिए-कहा-क्याँ?-बोले,

जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।

(२-२०४)

प्रभु श्री राम के चरणों में मेरी रति हो जाए बस इसे छोडकर और कुछ नहीं चाहिए। गोस्वामी जी ने बहुत बढ़िया विनोद किया-गोस्वामी जी ने भरत जी की वंदना की। लाभी के रूप में पहले जब वंदना की तो उनको लोभी भट्ट बात दिया। प्रारंभ में आप जो पढ़ते हैं-

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुधा मधुप इव तजइ न पासू।।

(१-१६-३)

भरत जी का मन लोभी भंवरा है और वह राम के चरण पंकज में मंडराया करता है। प्रश्न आया कि जिसके अयोध्या का राज्य छोड़ दिया हो, जो यह कह रहा हो कि अर्थ धर्म काम, मोक्ष भी नहीं चाहिए, आप उसको लोभी बनाए दे रहें हैं और तब गोस्वामी जी का विनोद कितना मधुर है, क्यों? भक्त लोग स्वार्थी होते हैं कि स्वार्थी नहीं होते हैं? स्वार्थ की तो लोग बड़ी निन्दा करते हैं पर भक्त कितने स्वार्थी होते हैं? भक्त तो जानता है कि समझियेगा कि भगवान के चरणों में जो प्रेम करते हैं वे बड़े निस्वार्थ हैं बल्कि-

स्वारथ साँच जीव कहुं एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।

(९-९५ख-१)

संसार में अगर कोई पद का बड़ा इच्छुक हो तो लोग कहते हैं बड़ा पद लोलुप है। पर रामायण में सबसे बड़े पद लोलुप कौन हैं? "श्री भरत जी" उनको पद नहीं चाहिए, उनको अयोध्या का राज्य नहीं चाहिए, पर राम का पद तो चाहिए ही और राम का पद ही नहीं चाहिए राम के पद में उनको रति चाहिए। कितनी मीठी बात है। कोई अतिथि आपके पास आवे। बड़े सात्विक व्यक्ति आये हुए हैं फल ही शायद लेंगे। अच्छा तो महाराज यह लीजिए केला ले लीजिए-नहीं भई हमको नहीं चाहिए, सेब ले लीजिए-नहीं चाहिए, संतरा ले लीजिए-कहा यह भी नहीं चाहिए और चौथा फल अनानास ही लीजिए-ये भी नहीं चाहिए। तो महाराज आप

पधारे हैं और इतने फलों में से आप एक भी नहीं ले रहे हैं तो मैं क्या करूं। अगर कहीं वह कह दें कि मुझे यह फल तो नहीं चाहिए पर रस दे दीजिए। तो पता चला कि पक्के चतुर निकले। रस माने छिलका वगैरा सब उसकी झंझट अलग कर दीजिए। अब उसको क्या कहें स्वार्थी कहें कि निस्वार्थी कहें जिसने फल लेने की चेष्टा की तो फल के साथ गुठली भी होगी, छिलका भी होगा, परिश्रम भी होगा तो यह जो भगवान के चरण की रति क्या है-

हरितपद रति रस वेद बखाना।

यही तो रस है। भरत जी इतने चतुर है कि फल नहीं चाहिए। पर भगवान के चरणों की रति के रूप में जो रस है उसको ग्रहण करने वाले हैं। यह रति ही रामायण में सर्वोत्कृष्ट ऊंची स्थिति है। सांसारिक अर्थों में रति को जिस श्रृंगार के अर्थों में प्रयोग करते हैं उस अर्थ को भी यहां जोड़ा जा सकता है। मानों युगल दम्पती के मिलन में इस शब्द को प्रयोग होता है। वही ब्रह्म और जीव के मिलन की स्थिति हो जाए, अन्त:करण में कोई रंचमात्र भेद न रह जाए, किसी प्रकार की कोई और तृप्ति का ध्यान न रह जाए। संसारिक रति क्षणिक है पर भगवान के चरणों में जो रति है वह रति शाश्वत है और इसीलिए आप देखेंगे सुमित्रा अंबा भी जब लक्ष्मण जी को विदा करने लगती है तो आशीर्वाद देती है और आशीर्वाद भी उन्होंने यही दिया कि-

रति होउ अविरल अमल सिय रघुबबीर पद नित नित नई।।

(२-७४)

तो इसका अर्थ यह है कि रति ही अंतिम स्थिति है। सांसारिक काम की स्थिति भी रति और भगवान के चरणों में जो प्रीति है उसकी भी स्थिति रति। यह इतनी कठिन वस्तु है, लक्ष्मण जी के जीवन में है, भरत जी के जीवन में है हनुमान जी के जीवन में हैं पर इन लोगों में जीवन में है यह आश्चर्य नहीं है। गोस्वामी जी त्रिजटा का परिचय देते हुए यही कहते हैं-

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। रामचरन रति.........

भगवान के चरणों में रति है इसकी। इतनी श्री राम के चरणों में एकमेक हो चुकी है, उस स्थिति को त्रिजटा ने पा लिया और उसके साथ-

साथ

रामचरन रति निपुन बिबेका।।

(५-१०-१)

महान ज्ञानी है, महान विवेकी है, महान योगी है और उसके साथ-साथ इसके जीवन में भगवान के चरणों में रति है। मानों वह स्थिति जिसमें ध्यान, ध्याता, ध्येय के उस चरमस्थल को उसने पा लिया है, जब वह मिल करके भगवान में एकाकार हो गयी है और जब व्यवहार में वह बोलती है तो वह सत्य को चाहे भूत हो, चाहे वर्तमान को हो, भविष्य का हो उसके सामने सब साकार दिखाई देता है। इस तरह की यह मान पात्र त्रिजटा है। ध्यान का सांकेतिक अर्थ क्या है? जैसे हम और आप अपने आंखों से जब देखें यहां इतने श्रोता बैठे हुए हैं, तो आखों से देखेंगे लेकिन जो जितना पास होगा उतना स्पष्ट दिखाई देगा। ज्यों ज्यों दूर होते जायेंगे थोड़ी स्पष्टता में कमी आ जायेगी और दीवाल के उस पार जो बैठे हैं वे दीवाल के कारण दिखाई नहीं दे रहे हैं। अब अगर ऐसी कोई दृष्टि मिल जाये कि जिसमें दीवाल के पार भी व्यक्ति देख ले तो उसका अभिप्राय है कि उसको दिब्य दृष्टि मिल गयी। योग की साधना में एक ऐसी स्थिति आती है जब व्यक्ति की यह जो दीवाल है और दीवाल केवल उस अर्थो में दीवाल नहीं, देश की दीवाल, प्रान्त की दीवाल आप इस देश में बैठे हुए हैं, इस प्रान्त में इस नगर में बैठे हुए हैं कोई व्यक्ति दूसरे नगर में दूसरे प्रान्त में दूसरे घर में बैठा हुआ है तो एक ऐसी स्थिति आती है वह व्यक्ति उसे भी देख लेता है। व्यवधान मिट जाता है। आपको वह प्रसंग मिलेगा भगवान् शंकर के चरित्र में भी जो ज्ञान घाट के आचार्य हैं। वहां पर भी ध्यान की पराकाष्ठा है और वह पराकाष्ठा यही है-सती जी भगवान राम की परीक्षा लेने के लिए गई। सीताजी का वेश बनाया, सीताजी का वेश बनाने के पश्चात् प्रभु ने जब मीठे व्यंग्य भरे स्वर में उनका स्वागत करते हुए प्रणाम किया और कहा-

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।।

(१-५२-७)

बड़ी भयभीत हो गई। मन में बड़ी ग्लानि हुई और वे लौटीं। भगवान शंकर ने पूछ दिया, प्रश्न किया-

लीन्हि परीछा कवन, बिधि, कहहु सत्य सब बात।

(१-५५)

आप परीक्षा लेने के लिए गयी थीं। आज तक इतने अनादि काल से ईश्वर की परीक्षा लेने की विधि का ज्ञान मुझे नहीं हो पाया पर आपने इतना बड़ा कार्य किया है तो कोई बहुत नयी विधि आपने निकाली होगी तो-

लीन्ह परीछा कवन बिधि

पर साथ-साथ सावधान कर दिया

कहहु सत्य सब बात।

झूठमूठ में बना न दीजियेगा सही-सही बिल्कुल बताइये। लेकिन फिर सतीजी घबरा गई कि मैं ने कुतर्क किया। सीताजी का वेश बनाया। वह स्पष्ट कह सकती थी कि महाराज मुझसे ऐसा हुआ। लेकिन उन्होंने कहा, नहीं-नहीं! महाराज मैं भला क्या परीक्षा लेती-तुम तो परीक्षा लेने के लिए गई थीं-नहीं, महाराज मैंने परीक्षा नहीं ली। तो वहां जाने की क्या आवश्यकता थी? आपने दूर से प्रणाम किया था मैंने सोचा जरा पास से प्रणाम कर आऊँ। यही उन्होंने कहा-

कछु न परीछा लीन्हि गुसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं।।

(१-५५-२)

प्रणाम तो मैंने भी आपकी तरह किया। आपने दूर से और मैंने पास से। शंकर जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने इतना समझाया पर समझ में नहीं आया और वहां जाकर प्रणाम करके लौट आई। तो शंकर जी जानबूझ करके दीवाल बनाये रखते हैं। दीवाल बनाने का अभिप्राय? शंकर जी में यह शक्ति है कि वह किसी के अन्तःकरण में या जीवन में क्या हुआ है, क्या हो रहा है, क्या होगा, सब पता लगा सकते हैं। लेकिन उसका प्रयोग वे नहीं करते और कोई भी विवेकी उनका प्रयोग नहीं करेगा। हमारे परम संत ब्रह्मलीन स्वामी उड़िया बाबा जी महाराज, उनके चरणों में मुझे रहने का सुअवसर मिला। वह अपने जीवन का संस्मरण सुनाते हुए यही कहते थे कि जब वह प्रारंभ में उड़ीसा के रहने वाले थे, घर छोड़ करके चले। आसाम के कामाख्या देवी के मंदिर में रहकर उन्होंने देवी का अनुष्ठान किया और वह इतना सफल अनुष्ठान

किया और वह इतना सफल अनुष्ठान था कि उनको एक ऐसी दिव्य शक्ति मिल गयी कि जो व्यक्ति आया उसके मन में क्या है, क्या करके आ रहा है सब दिखाई देने लगता था। अब जब पहला व्यक्ति आया और उन्होंने कहा- क्यों-तुम यह सोच रहे हो, यह करके आ रहे हो, अब वह घबरा गया। चारों ओर समाचार फैल गया-बहुत बड़े योगी हैं। सारी बातें जान लेते हैं। भीड़ लगने लगी। और सात दिन की भीड़ के बाद बाबा के मन पर क्या प्रभाव पड़ा उन्होंने कहा देवी कृपा करो और यह सिद्धि अपने पास ही ले जाओ, मुझे छोड़ दो। क्यों-दिन भर मैं बैठ करके दूसरों का मन देखूं दूसरों का चरित्र देखूं। इससे बढ़ करके विडम्बना क्या होगी। वह शक्ति का कितना दुखद रूप है। आपने सामने वाले व्यक्ति का स्वागत किया। अब सामने वाले व्यक्ति की सब अच्छाई, बुराई, अच्छाई कम दिखाई दे, बुराई ज्यादा दिखाई दे और उन्होंने का कि मेंरे प्रर्थना करने से वह शक्ति मिट गई। मानों उन्होंने उसका एक पक्ष प्रकट किया। भगवान शंकर तो त्रिकाल हैं। वे साक्षात् ईश्वर के ही रूप हैं। पर भगवान शंकर की यह महिमा है कि वे इस शक्ति का उपयोग कितना कम करते हैं। अब भी जो किया वह इसलिए किया कि भगवान राम भविष्य में शंकर जी के द्वारा एक महान लीला कराना चाहते थे और तब वे शब्द आपको मिलेंगे-

त संकर देखेउ धरि ध्याना। (१-५५-४)

शंकर जी तुरंत नेत्र मुंद करके ध्यान की स्थिति में पहुंच जाते हैं और फिर

सती जो कीन्ह चरित सब जाना ।।

(१-५५-४)

सती जी ने जो कुछ किया था वह शंकर जी को दिखाई देने लगा। तो इसका अभिप्राय है कि काल व्यक्ति का व्यवधान है। अन्तराल में ध्यान की पद्धति ज्यों-ज्यों विकसित होती जाती है त्यों-त्यों वे व्यवधान दूर होते जाते हैं और दिव्य शक्ति मनुष्य के अंत:करण में आ जाती है। बुद्धिमान व्यक्ति इन शक्तियों के प्रलोभन में नहीं पड़ता है। जो व्यक्ति इसी में प्रसन्न होता है कि भीड़ जुटी रहे और माला पहनाती रहे और कहती रहे कि वाह भई इन्होंने तो मन की बात जान ली तो वह बेचारा

उसके द्वारा अपनी लोक मान्यता में उसका उपयोग करता हुआ दिखाई देता है। तो यह जो ध्यान की पद्धति है उसमें बड़ी विलक्षण क्षमता है। इसमें मन की शक्तियों का, अन्त:करण की शक्तियों का विकास होता जाता है और व्यक्ति की दृष्टि और अधिक स्वच्छ होती जाती है। पर मूल तत्व यही है कि मान लीजिए किसी व्यक्ति में यह ज्ञान हो जाए ऐसी शक्ति आ जाये कि सामने वाला व्यक्ति क्या कर रहा है, क्या करके आया है और फिर उसके बाद उसको धमकाने लगे और यह कहने लगे कि हम दूसरों को बता देंगे, जैसा हम कहते है वैसा करो, जो हम चाहते हैं हमें वह दो, कितना दुरुपयोग सकता है ध्यान की शक्ति का, और ऐसी शक्ति का दुरुपयोग करने वाले संसार में न जाने कितने व्यक्ति दिखाई देती हैं। किन्तु ध्यान की वह स्थिति कि जब कोई रंचमात्र दूरी, व्यवधान, अंतराल कुछ नहीं रह गया, वह शुद्ध ध्यान का चरम रूप है जैसा शंकर जी ने देखा। यह ध्यान का चमत्कार है। वस्तुत: यह जो त्रिजटा है यह ध्यान योग के चरमोत्कर्ष में पहुंच करके भगवान से एकाकार हो चुकी है और उसकी जागृति स्वप्न और सुषुप्ति में कोई भेद नहीं रह गया है। जागृति है वही सत्य देखती है, सपने में भी वही सत्य दिखाई देता है। सुषुप्ति में भी वही सत्य उसके अन्त:करण में स्थित होता है। ऐसी अनोखी यह त्रिजटा है और इस त्रिजटा ने जब यह कहा तो हनुमान जी को लगा इतनी ऊँचाई, इतनी विलक्षण क्षमा और आश्चर्यचकित हो गये। त्रिजटा ने डराने वाली राक्षसियों से कहा कि अगर तुम कल्याण चाहती हो तो डराओं मत। भविष्य मैं देख रही हूं और तुम अपना कल्याण चाहती हो तो-

सीतहि सेइ करहु हित अपना।

(५-१०-२)

सीताजी की सेवा करो जिससे तुम्हारा भविष्य सुरक्षित रहे। पर वे राक्षसिया सेवा क्यों नहीं कर पाई? बोले- एक ओर तलवार रावण की और दूसरी ओर देवीजी सुना रही हैं भविष्य में क्या होने वाला है। चलो भई, हम दूर चले जाते हैं न डरावेंगे न सेवा करेंगे और वे सीताजी के पास से दूर चली जाती हैं। हनुमान जी सोचने लगे, प्रभु ने कैसा उपाय बना दिया कि हमें जो चाहिए वह एकांत मिला। उसके बाद फिर समस्या

आई। श्री सीताजी के हृदय में एक क्षण के लिए इतनी निराश आ गयी (वे महाशक्ति हैं इस बात को अलग रख दें) लीला में जिस विपत्ति में , जिस संकट में जिस वातावरण में वह हैं उसमें व्याकुल हो करके उन्होंने कहा- ''माँ तुम तो मेरी विपत्ति में संगिनी हो''-

मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।

(५-११-१)

''तुम विपत्ति में मेरा साथ देने वाली हो, इस लंका में भी। पर मेरी एक सहायता और करो। एक महीने तक यह कष्ट भोगना पड़े और उसके पश्चात् रावण मेरे ऊपर प्रहार करे तो यह दुख मिटाने का एक ही उपाय है कि तुम लकड़ी ला करके अगर अग्नि प्रज्वलित कर दो तो मैं अपने शरीर को जला करके इस दुख से, इस वातावरण से मुक्त हो जाऊँ''-

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।

(५-११-३)

और तब कितनी विलक्षण मेधावाली त्रिजटा है। उसने यह नहीं कहा कि जलने की आवश्यकता नहीं। अब आप इतना आग्रह कर रही हैं तो ठीक है लेकिन ये तो रात्रि का समय है तो मैं आपसे एक ही अनुरोध करूँगी कि-

निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।

(५-११-३)

''रात्रि में अग्नि में आपका प्रवेश उचित नहीं है।'' पर यह बड़ी सांकेतिक भाषा थी। देवी अंधकार सदा नहीं रहता है। आप इतनी निराश हो गईं अंधकार को देख करके, सूर्य वंश की पुत्रवधू, श्री राम के रूप में जो महानतम सूर्य उदित होने वाला है उसकी प्रतीक्षा करके।

पर मानो त्रिजटा को यह ज्ञात था उसने अवसर दिया इतना ही नहीं राक्षसियाँ भी दूर चली गयीं और यह कह करके त्रिजटा तुरंत सीता जी को प्रणाम करके-

अस कहि सो निज भवन सिधारी।

(५-११-३)

अब सीताजी बिल्कुल अकेली। हनुमान से आगे जो कुछ हुआ उसमें तो

त्रिजटा की कृपा सबसे मुख्य थी। जिस तरह से उसने राक्षसियों को दूर कर दिया, स्वयं भी दूर चली गयीं और उसके पश्चात् फिर आप देखते हैं कि हनुमान जी को यही मानना पड़ा कि त्रिजटा की दृष्टि कितनी गहरी और उसके हृदय की रति कितनी विलक्षण है। भगवान से कितनी एकाकार है? मुझे प्रभु ने यह कहा था कि हनुमान तुम्हें सीताजी को मेरा संदेश सुनाना है" पर त्रिजटा ने यह कहा कि बंदर लंका जलावेगा। श्री हनुमान जी के मन में एक दुविधा हुई। सपने को प्रमाण मानें कि नहीं, कई लोग सपने को प्रमाण मान लेते हैं। अखबारों में उसको लेकर के कई दुर्घटनाएं भी आती रहती हैं। सपने में देवी जी ने कहा कि अपने पुत्र का बलिदान कर दो। अब ऐसे मूढ़ बुद्धि वाले भी होते हैं कि जो सपने को प्रमाण मान लेते हैं। और बहुत वर्ष पहले भोपाल में कोई महानुभाव जो अब हैं या नहीं हैं संसार में कोई चुनाव था और उसमें वे खड़े हुए। तो अन्य लोग जब कोई चुनाव में खड़े होते है तो लोग पूछते है-आपका क्या, किस उद्देश्य से खड़े हुए हैं आप क्या चाहते हैं? तो उन्होंने यही कहा कि मेरा और कुछ उद्देश्य नहीं है। सपने में भगवान कृष्ण ने मुझे आदेश दिया कि तुम चुनाव में खड़े हो जाओ। तो भगवान की आज्ञा का पालन करने के लिए मैं चुनाव में खड़ा हो गया और वह कहने के बाद उनकी जमानत हो गई जब्त। अब भगवान ने सपने में खड़ा कर दिया और बाद में इनकी जमानत भी जब्त करा दी। क्या सचमुच सपने में भगवान बोल रहे थे क्या? कई लोग तो ऐसा मान लेते हैं। सपने में कोई बात कह दी जाए तो आप इतनी सरलता से इसको सचमुच सत्य मान लेने की भूल न कर लीजिएगा। ये भूल बड़ी घातक सिद्ध हो सकती है।

स्वप्न के विषय में उसका विवेक, उसके विषय में विचार होना चाहिए। अब कैसे विचित्र लोग होते हैं। पिछले चुनाव में मैं बंबई में था। एक सज्जन खड़े हुए थे, किसी संस्था बिशेष के प्रतिनिधि के रूप में। पर वे कभी प्रचार कने नहीं जाते थे। कभी उन्होंने समाचार पत्र में या मिल करके कोई प्रचार नहीं किया। मुझसे मिलने आये तो बातचीत चली तो पता चला चुनाव में खड़े हैं। मैंने कहा कि आप प्रचार तो करते हुए दिखाई नहीं दते हैं। बोले, नहीं-मेरे गुरुदेव ने स्वप्न में यह कहा है कि तुम चिंता मत करो वोट जो है उसे डालने वाले दूसरी पेटी में डालेगे पर उनकी पेटी

से तुम्हारी पेटी में आ जायेगा और बिचारे खड़े हो गये। उनकी भी वही दुर्दशा हुई जो कि ऐसे लोगों की होती है। स्वप्न उसका प्रामाणिक होता है जिसके अन्तःकरण में कभी भी असत्य का एक कण भी न हो। अगर ऐसा अन्तःकरण है कि जिसमें एक क्षण के लिए भी असत्य का प्रवेश न हो, उसका स्वप्न सत्य हो सकता है और जिसका मिला-जुला अन्तःकरण है, जीवन है, वह सपने को मन के खेल के रूप में देखता है, आपके मन में कोई वासना उत्पन्न हुई और वह आपको दिखाई पड़ा भगवान ने आज्ञा दे दी, गुरुदेव ने आज्ञा दे दी-यही सब मन का जो खेल है, वस्तुतः वास्तविक नहीं होता है। इसीलिए स्वप्न को प्रामाणिक मान करके, प्रतिवर्ष ही मैं देखता हूँ अनेक दुर्घटनाएं होती हैं। सपना तो एक परम प्रमाण उसके लिए, जिसके मन में जागृति की ही बात नहीं, स्वप्न में, सुषुप्ति में, किसी काल में जिसका अन्तःकरण इतना विशुद्ध हो ऐसा विशुद्ध अन्तःकरण होना क्या सरल वस्तु है? लेकिन त्रिजटा ने जब कहा कि मैंने स्वप्न में देखा है, तो हनुमान जी के मन में आया कि अब स्वप्न को प्रमाण मान करके मैं लंका जला दूं और प्रभु पूछे कि तुमने किसकी आज्ञा से लंका जलायी और मैं कहूं कि त्रिजटा का सपना सुनके जलाया तो प्रभु कहेंगे इतने बड़े अभिज्ञानी हो करके तुमने स्वप्न को सच माना। मैंने प्रत्यक्ष आदेश दिया उसका तुम्हें ध्यान नहीं रहा। सपने को सुन लिया तो तुमने लंका को जला दिया और तब बड़े ज्ञानी हैं, बड़े चतुर हैं-उपाय निकाल लिया। अब रावण की सभा में तो जाना है, पर हम बंधा के जायेंगे, तो बंधा हुआ व्यक्ति जो काम करेगा अगर उसके द्वारा होगा तो वह बिचारा तो परतंत्र है। तो मानों उन्होंने मन ही मन प्रभु से कहा कि अब तक तो वह किया जो आपने आज्ञा दी पर आगे क्या आप करावेंगे? मैं तो बंदी हूं मैं तो पराधीन हूं आपको जो कराना है वह आप करा लीजिए और इसीलिए रावण से बातचीत हुई। रावण ने आज्ञा दे दी इस बंदर को मार डालो-हनुमान जी तो राक्षसों से लड़तेथे, मार देते थे पर वह बिल्कुल शांत भाव से खड़े हैं मैं तो बंधा हुआ हूं मैं कैसे बचाऊं अपने को और विभीषण आ गये, विभीषण ने कहा-

नीति विरोध न मारिअ दूता।

(५-११-३)

इसको मारना नीति के विरुद्ध है। रावण ने कहा-छोड़ दो- पर हनुमान जी तो उस समय आश्चर्यचकित हो गये जब उसने यह कहा कि मैं मृत्यु दंड नहीं दूंगा पर दंड तो अवश्य दूंगा। क्या? बंदर की पूंछ में कपड़ा लपेटो, घी डाले, तेल डालो, आग लगा दो। हनुमान जी ने मन ही मन त्रिजटा देवी को प्रणाम किया। देवी आपका सपना ही सच्चा था। मैंने तो कोई प्रबन्ध नहीं किया। जलाने के लिए आग चाहिए, कपड़े चाहिए। आपका सपना कितना सच्चा था कि सचमुच रावण के द्वारा ही सारा प्रबन्ध हो गया। उनके मन में कोई दुविधा नहीं रह गयी और हनुमान जी त्रिजटा के स्वप्न को परम प्रणाम मान करके लंका जला करके नष्ट कर देते हैं। ऐसी दिव्य ध्यान की मूर्तिमती घनीभूत रूप सिद्धि, जिसको कह सकते हैं ऋतंभरा प्रज्ञा, ऐसी प्रज्ञा है त्रिजटा। सीताजी तो सबके परे है। पर लीला में वह बताना चाहती है कि कोई साधना के द्वारा भी कहां तक पहुंच सकता है। उसी त्रिजटा ने जब श्री सीता जी से बार-बार ये कहा कि आज भी रावण नहीं मरा तो सीताजी ने कहा- देवी रावण की मृत्यु नहीं हो रही है, प्रभु का बाण लगने पर भी-क्यों? त्रिजटा ने कहा क्षमा कीजिएगा। रावण की मृत्यु न होने में आप ही कारण हैं। इस समय उसने ध्यान योग की महिमा का वर्णन किया। ध्यान योग को मंच पर उतने विस्तार से कहना, उसको ग्रहण करना सबके लिए संभव नहीं है। योग साधना की पद्धति में शक्ति और ब्रह्म के मिलन की धारणा की गयी है। मानो मूलाधार चक्र में शक्ति सुषुप्त है। प्रत्येक जीव के मूलाधार में वह शक्ति विद्यमान है। ब्रह्म स्थित है, सहस्रार में । जब ब्रह्म और उस शक्ति का मिलन होता है, योग शास्त्र की मान्यता है। त्रिजटा ने कहा कि रावण निरंतर आपका ही ध्यान करता रहता है।

अब आप जरा कल्पना कीजिए हम और आप ध्यान में बैठें और मच्छर काट ले तो ध्यान में बाधा पड़ जाती है और मक्खी काट ले या कोई काट ले तो बाधा पड़ जाती है। पर इतने शस्त्र रावण के ऊपर मारे जा रहे हैं, और उतने में भी उसका ध्यान नहीं टूटा, इतने बंदर पहाड़ फेंक रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं। भगवान के बाण से सिर कट रहा है- किसके ध्यान में डूबा हुआ है? त्रिजटा ने कहा कि प्रभु के सामने समस्या यही है कि निरंतर रावण आपका ही ध्यान करता रहता है। पर रावण

का दुर्भाग्य और यही उसका अभागापन है कि वह आपका तो ध्यान करता है पर आप जिसका ध्यान करती हैं, उसका ध्यान वह नहीं करता। इसीलिए अगर वह ध्यान करता कि जिन सीताजी का, महाशक्ति का मैं ध्यान करता हूं वह किसके ध्यान में डूबी हुई है तो बस वह तो महान भक्त हो जाता है। शक्ति और शक्तिमान को एक साथ पा लेता। पर समस्या ये है कि रावण हर क्षण किसी भी स्थिति में आपके ध्यान में डूबा रहता है। फिर प्रभु के सामने प्रश्न ये है कि रावण आपका ध्यान करता है, आप श्री राम के ध्यान में डूबी हुई हैं और श्री राम के उदर में ही सारा ब्रह्मांड है। प्रभु को लग रहा है कि रावण पर अगर मैं बाण चलाऊंगा तो रावण के साथ-साथ सारे संसार का विनाश हो जाएगा। ध्यान की शक्ति के द्वारा कोई व्यक्ति कितनी ऊंची स्थिति तक पहुंच सकता है उसका सूत्र यही है कि रावण शक्ति को ब्रह्म से नहीं मिलाना चाहता। वह स्वयं शक्ति का स्वामी बनना चाहता है। इसलिए शक्ति को अगर वह शक्तिमान और शक्ति एकत्व के रूप में देखना चाहता तो श्रीराम को सीता जी से अलग करने की चेष्टा के स्थान पर योग का उपयोग करता। दोनों के मिलन और दोनों के मिलन रूप का जो ध्यान करता तो रावण योग का सफल योगी होता ।और अब कितना बड़ा उसका ध्यान साकार हो चुका है कि उसके विनाश में रावण का ही नहीं संसार का नाश हो सकता है। श्री सीताजी ने कहा तब तो फिर रावण कभी नहीं मरेगा-कहा नहीं-रावण जैसे व्यक्ति जब ध्यान का ऐसा दुरुपयोग करें तो प्रभु को एक ऐसा बाण चलाना पड़ेगा कि-

काटत सिर होइहि विकल, छुटि जाइहि तब ध्यान।
तब रावनहिं हृदय महिं, मरिहहिं राम सुजान।।

(६-९९)

जब तक आपके इस महान शक्ति केन्द्र से उसको अलग नहीं कर दिया जाता रावण का विनाश संभव नहीं। रावण कितनी एकाग्रता से उस साधना में लगा होगा आप इसकी कल्पना कीजिए। पर वही उस ध्यान की शक्ति दुरुपयोग करता है, उसको शक्ति और शक्तिमान से अलग करने की चेष्टा करता है। शक्ति के द्वारा जो अमृत स्रवित होता है उसके द्वारा अपने को अमर बनाने की चेष्टा करता है। अंत में जिस ध्यान योग

बंबई में, अंतिम दिन डॉक्टर साहब ने ... भोजन करना चाहिए? तो चाहते तो ... खाइये-पर उन्होंने कहा कि बस एक ही ... अच्छा लगे वह मत खाइये। वाक्य तो ... उसका अभिप्राय यही तो हुआ कि ... भोजन में भी अतिरेक हो सकता है। ... रूप में हो सकता है, तो उन्होंने विनोद में ही ... रामचरित मानस में भी यही कहा गया कि

सरुज सरीर बादि बहु भोगा।

यदि शरीर रुग्ण है तो कितने भी भोग क्यों न ... दुखी बनाते हैं। व्यक्ति के सामने है, पर उनका ... तो जो शरीर का सत्य है, उससे अधिक सत्य वह है ... का है और उस मन के सत्य का अभिप्राय यह है कि ... होने पर भी कोई व्यक्ति मन से रोगी है, मन से अस्व... है, मन से पीड़ित है तो क्या वह व्यक्ति अपने ... अनुभव करते हुए जीवन में आनंद पा सकता है? ... रही थी। योग का लक्ष्य है समाधि। गोस्वामी जी ने ... अंतिम प्रसंग में लिखा कि-

एक व्याधि बस नर मरहिं ये असाधि बहु ...

एक रोग से भी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और ... इतने असाध्य रोग हैं तो-

पीड़हिं संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै ...

के द्वारा रावण ने शक्ति पाई है, उस ध्यान को जब विच्छिन्न कर दिया जाता है, तब रावण का विनाश होता है, तो मानों यह शक्ति ध्यान के द्वारा कितनी सीमा तक पहुंच सकती है वह रावण के चरित्र में विद्यमान है। वह बड़ी प्रसिद्ध कथा आपने सुनी होगी जब कुंभकर्ण को रावण ने जगाया। उस कुंभकर्ण ने पहले तो रावण को फटकारा। पर बाद में पूछा कि जब तुमने इतना अनर्थ कर डाला था तो तुम तो वेश बदलने की कला में बड़े निपुण हो। जो तुम ध्यान करते हो वही वेश तुम्हारा हो जाता है। तुमने साधु का वेश तो बना ही लिया, राम का भी रूप बना लेते और सीताजी को भ्रम में डाल देते। रावण ने कहा-तुम्हारे कहने से पहले मेरे मस्तिष्क में आया था, तुम तो सोते रहते हो मेरा विवेक जागृत रहता है वह नहीं सोता-क्या हुआ? बोले-मैंने जब यह सोचा कि राम का रूप बनाऊँ और ध्यान करने बैठा तो मेरा हृदय इतना शुद्ध और पवित्र होने लगा कि डर लगा कि थोड़ी देर ध्यान करूंगा तो राज्य-वाज्य छूट जायेगा, वन में जा करके भीख ही मांगनी पड़ेगी-छोड़ो यह ध्यान का चक्कर-

अनीता बहुतायदापतिरता साध्वी धारित्रि सुधा

ऐसी भावना! भला सोचिए, जो व्यक्ति कहता है कि कहीं हमारा हृदय बहुत शुद्ध न हो जाए, केवल रावण ही नहीं, बहुत से लोग ऐसे हैं जो बहुत से लोग हैं जो बहुत डरते हैं कि उतना ही भक्ति भाव ठीक है इतना अधिक न आ जाये कि हमारा सारा ये भौतिक रागरंग रस है, वह समाप्त हो जाए, यह स्वभाव की बात है। यह है ज्ञान का प्रयोगी रावण और ध्यान की जो महानतम शक्ति है वह है शंकर जी के जीवन में और जो हनुमान जी के या श्री लक्ष्मण, श्री भरत के जीवन में है वह एक महानतम ध्यान की पद्धति है। भुशुण्डि जी भी ये इनकी महानता है, ये ध्यान योग के भी आचार्य हैं, ज्ञानियों के द्वारा जिस साधना का आश्रय लिया जाता है वह भी भुशुण्डिजी के जीवन में है और वह पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ करके ध्यान करते हैं। वह ध्यान क्या है और पीपल के वृक्ष से उसका क्या संबंध है इसकी चर्चा कल आपके सामने होगी। आज इतना ही।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय।

चतुर्थ

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।।

(७-५६-५)

श्री जन्माष्टमी के पावन पर्व पर माननीय श्री राजेन्द्र शुक्ल मंत्री महोदय और अन्य सभी सह उपस्थित महानुभावों का, देवियों का मैं स्वागत करता हूं और मुझे विश्वास है कि आप जिस एकाग्रता, मन्मयता से कथा प्रसंग सुनते रहे हैं आज भी आप पूरी तन्मयता से ही इसे सुनेंगे। अभी शुक्लजी से उनकी उत्साहवर्धक वाणी मैं सुन रहा था तो मुझे प्रसन्नता हुई कि कल मैं अनुरोध पर आपने ध्यान दिया और उनको आनंदित किया। पर अब वृद्धावस्था में उनकी भूख बढ़ गयी है तो आप लोग जो हैं उनकी भूख, जब देना ही है, भूख मिटाना ही है तो पूरी तरह से प्रयत्न करना चाहिए। तो मुझे विश्वास है कि आप लोग उनके सत्कार्य की ओर कल्याण की जो भूख है उसे संदर्भ में उदार बने रहेंगे। तो आइये उस प्रसंग पर दृष्टि डाले जिसकी चर्चा आपके सामने तीन दिनों से चल रही है। सुमेरु पर्वत पर चार वृक्ष हैं और उन वृक्षों के नीचे भुशुण्डि जी के द्वारा जो साधनाएं सम्पन्न होती हैं उनका वर्णन भगवान शंकर ने पार्वती जी को सुनाया। उन्होंने कहा पीपल के वृक्ष के नीचे भुशुण्डि जी ध्यान करते हैं, पाकरी के नीचे जप करते हैं, आम्रवृक्ष के नीचे मानस पूजा करते हैं और वट वृक्ष के नीचे कथा कहते हैं। ये श्री राम चरित मानस में चार युग, चार घाट, चार भाई, चार फल, ये चार की संख्या का एक प्रतीकात्मक प्रयोग विभिन्न प्रसंगों में किया गया है। अगर मनुष्य शरीर से अस्वस्थ और विविध प्रकार की भोग सामग्री उसे पास होते हुए भी उसका वह उपभोग न कर सके, तो उसको कितना दुख होगा। एक तो अभाव का दुख है, जहां पर वस्तु नहीं है और दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति भी हैं कि जिनके पास अभाव नहीं है पर उसका उपभोग करने में वे समर्थ नहीं हैं और समर्थ इसलिए नहीं हैं कि शरीर में रोग है। डॉक्टर या वैद्य ने बता दिया

कि आपको पौष्टिक वस्तुएं नहीं खानी हैं, स्वादिष्ट वस्तुएं आपको नही लेना चाहिए। मुझे अपना ही संस्मरण ध्यान में आता है। अस्वस्थ था बंबई में, अंतिम दिन डॉक्टर साहब से मैंने पूछ दिया कि आप बतावें क्या भोजन करना चाहिए? तो चाहते तो वे गिना सकते थे, यह खाइये, यह न खाइये-पर उन्होंने कहा कि बस एक ही बात आप ध्यान में रखें कि जो अच्छा लगे वह मत खाइये। वाक्य तो छोटा सा है पर बड़े महत्व का है। उसका अभिप्राय यही तो हुआ कि भई जो वस्तु प्रिय लगती है, उस प्रिय भोजन में भी अतिरेक हो सकता है। उसका परिणाम भी अस्वस्थता के रूप में हो सकता है, तो उन्होंने विनोद में ही अच्छी बड़ी बात कह दी। रामचरित मानस में भी यही कहा गया कि

सरुज सरीर वादि बहु भोगा। (२-१७८-३)

यदि शरीर रुग्ण है तो कितने भी भोग क्यों न हों, वे भेग और भी दुखी बनाते हैं। व्यक्ति के सामने है, पर उनका उपभोग नहीं कर सकता। तो जो शरीर का सत्य है, उससे अधिक सत्य वह है जो हमारे आपके मन का है और उस मन के सत्य का अभिप्राय यह है कि अगर शरीर से स्वस्थ होने पर भी कोई व्यक्ति मन से रोगी है, मन से अस्वस्थ है, मन से अशांत है, मन से पीड़ित है तो क्या वह व्यक्ति अपने आप में स्वस्थता का अनुभव करते हुए जीवन में आनंद पा सकता है? योग की चर्चा कल चल रही थी। योग का लक्ष्य है समाधि। गोस्वामी जी ने रामचरित मानस के अंतिम प्रसंग में लिखा कि-

एक व्याधि बस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि।।

एक रो से भी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है और मन में एक साथ यदि इतने असाध्य रोग हैं तो-

पीड़हि संतत जीव कहुँ, सो किमि लहैं समाधि।।

(७-१२१क)

शास्त्रों ने कह दिया कि समाधि में व्यक्ति दुख से मुक्त हो जाता है, परम शांति, परम सत्य का साक्षात्कार योगी करते हैं समाधिकाल में। पर वे कहते हैं कि समाधि के लिए भी तो वह व्यक्ति स्वस्थ होना चाहिए केवल शरीर से ही नहीं। शरीर की स्वस्थता तो आवश्यक है ही, पर

उससे भी अधिक आवश्यक है मन की स्वस्थता और तब यह प्रश्न आता है कि उसका क्या समाधान है और वही आपके जीवन का अनुभवजनित सत्य है। वही सत्य यहां पर भी दृष्टिगोचर होता है और वह यह है कि जब व्यक्ति रोगी होता है तो चिकित्सकों के पास जाता है और चिकित्सा पद्धतियाँ अनेक हैं। डॉक्टरी की एलोपेथी की पद्धति से या वैद्य के माध्यम से आयुर्वेद की पद्धति से या प्राकृतिक चिकित्सा से, होमियोपैथी से और उन चिकित्साओं से अनेक लोगों को लाभ होता है और वे दूसरों को भी कहते हैं कि ये हमारे बड़े विश्वस्त डॉक्टर हैं, वैद्य हैं इनकी औषधि से मुझे लाभ हुआ है। आप भी उसका सेवन करें। तो ये जो चार घाट हैं रामचरित मानस में उनका भी अभिप्राय यही है।

एक धारणा यह है कि ज्ञान ही व्यक्ति की समस्याओं का सर्वश्रेष्ठ समाधान है। प्रश्न गंभीर है पर आप सब तो बड़े जिज्ञासु और बड़े प्रबुद्ध श्रोता हैं, उसको आप ध्यान में रखेंगे और क्रम के रूप में उसे समझेंगे। उसका तात्पर्य यह है कि जो दुख वास्तविक है उसका विनाश प्रयत्न से होगा और जो दुख भ्रमजन्य है, अज्ञानजन्य है, उसका विनाश प्रयत्न से नहीं होगा केवल ज्ञान लेने से होगा, ज्ञान से होगा और इसका दृष्टान्त रामचरित मानस में दिया गया, वेदान्त के ग्रंथों में दिया गया। वेदान्त का तो प्रसिद्ध दृष्टान्त है रज्जु सर्प का दृष्टांत। रस्सी अंधेरे में पड़ी हुई है देख करके भ्रम हो गया कि यह तो सांप है। अब उस सांप को मारने के लिए कोई व्यक्ति लाठी लाओ, अस्त्र लाओ, यह चिल्लाएं तो भले ही चिल्लाए लेकिन वह सांप मरेगा नहीं लाठी से, उसको मारने का उपाय तो एक ही है कि प्रकाश ले आवे तो प्रकाश होते ही दिखाई देगा, अरे जिसको मैं सांप समझता था, वह रस्सी थी। तो अगर सर्प वास्तविक होगा तो उसे शस्त्र से मारना पड़ेगा और अगर सर्प केवल भ्रम के कारण, अंधकार के कारण लग रहा है। तो जान लेने से ही उसका विनाश होगा वह किसी अस्त्र-शस्त्र के द्वारा नहीं होगा। तो रामायण का भी यह बड़ा प्रसिद्ध दृष्टांत है और वह आप देखेंगे भगवान शंकर श्री राम की वंदना करते हुए कहते हैं-

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।।

जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई।।

(१-१११-१)

दूसरा दृष्टान्त रात्रि में, निद्रा में, कोई किसी का सिर काटा रहा है। वह देख रहा है, मेरा सिर यह व्यक्ति काट रहा है। अब उससे रक्षा करने के लिए क्या किसी सशस्त्र

व्यक्ति की आवश्यकता है। उसका भी उत्तर यही है कि अगर कोई सपने में चिल्ला उठे कि अरे मेरा यह सिर काट रहा है और बचाओ और व्यक्ति आ करके उसे पास में खड़े हो जाए और ये कहे कि अच्छा, जो तुम पर प्रहार कर रहा है उसको मैं अभी परास्त कर दूंगा तो वह भी दुख दूर जो होगा एक ही उपाय से होगा—

जो सपने सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख कोई।।

(१-११७-२)

स्वप्न में जो दृश्य दिखाई दे रहा है, उस व्यक्ति को जगाना ही एक मात्र उसका उपाय है, अन्य कोई उपाय नहीं। वेदान्त की ज्ञान की मान्यता है कि व्यक्ति का जो दुख वस्तुत: है भले ही उसको मिटाने लिए, व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए, पर जो अज्ञानजन्य दुख है वे तो केवल ज्ञान से ही मिटेगा और किसी उपाय से नहीं। कुछ भी आप करिये, कितना भी साधन कीजिए पर उससे कोई अंतर नहीं पड़नेवाला है। इस बात को अगर थोड़ा मानस के उस तात्विक संदर्भ में देखे-महाराज श्री जनक ने जनकपुर में आयोजन किया है और उनकी यह प्रतिज्ञा है कि भगवान् शंकर के इस धनुष को तोड़ने में जो समर्थ होगा उसी का मेरी कन्या वरण करेगी, उसके गले में जयमाला डालेगी। अब उसका एक जो व्यावहारिक सूत्र है उसे आप परिचित हैं। और एक आध्यात्मिक संकेत है और वह संकेत जुड़ा हुआ है महाराज जनक से। कृपया फिर मैं कहूंगा कि केवल मन ही नहीं—

सुनहु ताता मन मति चित लाई।

मन, बुद्धि, चित्त लगा करके ही आप उसे समझने की चेष्टा करेंगे। अब जनक के नगर में श्री राम का आगमन हुआ है। भगवान श्री राम ने एक जो अनोखी लीला वहां की उसका अभिप्राय क्या है? आप यह पढ़ते

हैं कि जब महाराज श्री जनक के बाग में, वाटिका में श्री राम ने जनकनंदिनी का सौन्दर्य देखा तो मुग्ध हो गये और हृदय में उनके सौंदर्य की सराहना करते हुए, सायंकाल के समय संध्या करने गये। लेकिन पूर्व दिशा में चन्द्रमा को उदित देख करके—

सिय मुख छवि विधु व्याज बखानी। गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी।।

(१-२३७-४)

सीता जी के मुख चन्द्र की स्मृति आ गयी और स्मृति आने के बाद भगवान् राम लौट कर आते हैं, गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करते हैं, विश्राम करते हैं। पढ़ करके लगता है, कितना अनुराग है, कितनी प्रीति है, कितनी व्याकुलता है श्री राम के हृदय में जनकनंदिनी के प्रति। किन्तु दूसरे दिन का दृश्य बड़ा अटपटा था जब श्री राम और श्री लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र के साथ महाराज जनक ने आग्रहपूर्वक बुलाया और बुला करके उच्च सिंहासन पर बैठा दिया तो उस सारी सभा में देश-विदेश के राजा एकत्र थे। जनकनंदिनी को पाने की व्याग्रता उनके हृदय में है और जनकनंदिनी के उस संदर्भ में जहां पर प्रत्येक हृदय में व्याकुलता है तो कल्पना यही होती है कि एक दिन पहले ही गोस्वामी जी यह लिखते हैं कि श्री सीताजी के प्रति श्री राम का कितना प्रेम है। दिन भर उनके सौन्दर्य का चिंतन या चन्द्रमा को देख करके भी उनकी सुंदरता की स्मृति। ऐसी स्थिति में जब यह घोषणा की गयी कि धुनष तोड़नेवाले को सीता मिलेगी तो अनुमान तो यही होना चाहिए था कि सबसे पहले श्री राम ही उठ खड़े होते और व्यग्रतापूर्वक धनुष के पास पहुंच जाते, धनुष तोड़ देते, जनकनंदिनी गले में जयमाल डाल देती, पर ऐसा तो नहीं हुआ। प्रत्येक राजा प्रयत्न कर रहा है पर सबसे अधिक जो शांत भाव से बैठे हुए हैं, वह श्री राम हैं। अब श्री राम का अनुराग कहां चला गया? जिस प्रीति का वर्णन पुष्प वाटिका प्रसंग में किया गया उसका तो कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ रहा है। पर उसका आध्यात्मिक पक्ष बड़ा गंभीर है और उसको आप उस संदर्भ में विचार करके देखिए कि जनक कौन है। जनक उस समय विश्व के महानतम ज्ञानियों में अग्रगण्य माने जाते थे और वह इतने बड़े ज्ञानी माने जाते थे कि बड़े-बड़े महामुनि भी उनसे

ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे और रामायण में कहा गया है कि जैसे सूर्य के प्रकाश में कमल खिल जाता है, उसी प्रकार से महाराज जनक के ज्ञान के प्रकाश में—

जासु ग्यानु रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा।।

(२-२७६-१)

महान ज्ञानी जनक की प्रतिज्ञा से सभी में व्यग्रता का होना बड़ा स्वाभाविक है। पर श्री राम तो बैठे हुए हैं। जब श्री राम बैठे हुए हैं तो परिणाम यह हुआ कि धनुष तोड़ने की बात ही दूर, कोई व्यक्ति उसको खिसका भी नहीं पाया और इस दृश्य को जब जनकजी ने देखा तो उनकी आंखों में आँसू आ गये। जैसे अपनी कन्या के विवाह की चिन्ता पिता के मन में होती है और जैसे विवाह न होने पर पिता दुखी हो जाते हैं वैसे ही सारा लक्षण जनक के मुख पर उनकी आंखों में दिखाई दे रहा है उस समय गोस्वामी जी ने वर्णन किया—

नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने।।

(१-२३७-४)

अरे मैंने जब प्रतिज्ञा की तो उस प्रतिज्ञा को सुन करके सारे संसार के राजा एकत्र हुए—

दीप-दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पनु ठाना।।
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा।।

(१-२५०-७)

लेकिन क्या बताऊँ—

रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई।

(१-२३७-४)

उठाना, तोड़ना तो दूर रहा आप लोग तिल भर भी तो नहीं उठा पाए और तब उन्होंने कह दिया—

तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।

(२-२५१-४)

मैं समझा गया कि ब्रह्मा ने मेरी पुत्री के भाग्य में विवाह नहीं लिखा है। भला इतनी हमारी सुंदरी पुत्री, इतनी गुणमयी पुत्री। क्या संसार में

ऐसा कोई व्यक्ति हो सकता है कि जिसके हृदय में इस सौन्दर्य के प्रति इस गुणमयी सीता के प्रति आकर्षण न हो। पर इतना होते हुए भी—

कुंअरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय।।

(१-२५१)

विभिन्न प्रकार की वृत्तियां आई पर लक्ष्मण जी के भाषण को सुन करके सबसे अधिक प्रसन्नता किसको हुई। गोस्वामी जी ने जो वाक्य लिख दिया वह तो आश्चर्य की पराकाष्ठा है। लक्ष्मण जी कह रहे हैं कि धनुष तोड़ दूं मैं और इसको सुन करके सबसे अधिक चोट किसको लगनी चाहिए? या तो श्रीराम को लगनी चाहिए या सीताजी को लगनी चाहिए। उन दोनों को यह कष्ट होना चाहिए। श्री राम को— कि मैंने सीता के प्रति जो अपना अनुराग है उसका ऐसा वर्णन किया और यह इतना ढीठ है, अमर्यादित है, कि कह रहा है कि मैं धनुष तोड़ दूं और श्री सीताजी को कितना कष्ट होना चाहिए कि जिसके प्रति हमारी इतनी वात्सलयमयी भावना हो क्या उससे मैं यह आशा कर सकती हूं कि वह ऐसा बोलेगा, पर गोस्वामी जी नई बात लिखते हैं। उन्होंने कहा जनक जी तो थोड़ा संकोच में पड़ गये । जनक बहुत बड़े ज्ञानी थे पर अब एक किशोर अवस्था के युवक ने भरी सभा में उनको फटकार दिया यह तो नया अनुभव था तो उस समय जनक जी तो—गोस्वामी जी ने कहा—

लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले।।

(१-२५३-१)

सकल लोक सब भूप डराने।

प्रसन्नता किसको हुई तो पहला नाम गोस्वामी जी ने कहा—सीताजी

सिय हियँ हरष जनकु सकुचाने।। (१-२४-१)

जनक जी के संकोच के पहले भी उन्होंने लिखा कि सीताजी के हृदय में बहुत हर्ष हुआ—श्री राम को कैसा लगा? श्री लक्षमण जी का यह भाषण, गुरुजी को लगना चाहिए, मुनियों को लगना चाहिए। हुआ यह कि विश्वामित्र जी के शरीर में तो रोमांच हो आया, श्री राम गदगद हो गये, गला रुंध गया, इतनी प्रसन्नता की अनुभूति हुई।

गुरु लघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं।।

(१-२५३-३)

इतने आनंदित हो रहे विश्वामित्र, इतने आनंदित हो रहे मुनि, प्रसन्न हो रहे हैं श्री राम, प्रसन्न हो रही हैं सीताजी, किस बात पर? लक्ष्मण के यह कहने पर कि मैं धनुष तोड़ दूं। और यही वस्तुतः वेदान्त का प्रसंग है। इसमें तत्व ज्ञान है ओर वह तत्वज्ञान क्या था—लक्ष्मण वस्तुतः जानते हैं कि महाराज अपने सिर पर जो अपने कन्या के विवाह की चिंता लिए फिर रहे हैं उनको अगर ये जानते होते तो? परिणाम क्या हुआ? जनक का यह भाषण सुन करके जितने जनकपुर वासी हैं उनकी आंखों में आंसू आ गये। स्त्रियों की करुणा का तो कहना ही क्या है, बड़ा करूण दृश्य और तब अचानक लक्ष्मण जी बोलने के लिए खड़े हो गये- इस भूमिका को क्रम की दृष्टि से आप विचार करके देखें-श्री राम प्रतिज्ञा सुन करके नहीं उठें और उनके स्थान पर लक्ष्मण जी उठे और लक्ष्मण जी ने जो भाषण दिया वह अगर बहिरंग दृष्टि से देखें तो बड़ा अटपटा है-उन्होंने जब कहा कि—यह वाक्या जो जनक ने कहा है जनक के स्थान पर किसी और ने कहा होता तो मैं बुरा न मानता लेकिन जनक, मैंने सुना था कि वे विश्व के महानतम ज्ञानी हैं और वह व्यक्ति ऐसा बोल सकता है। तब उन्होंने श्री राम से कहा प्रभु आप मुझे आज्ञा दीजिए इस धनुष को मैं उठाकर चार सौ कोस तक लेकर दौड़ूं और जैसे कोई मूली को तोड़ देता है उस प्रकार से मैं इसको तोड़ दूं—

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौ बिलाकिअ सोऊ।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लैं धावौं।।
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पदै सपथ, कर न धारौं धानु भाथ।।

(१-२५३)

बड़े महत्व का प्रश्न है क्या लक्ष्मण जी को यह कहना चाहिए कि मैं धनुष तोड़ दूं क्योंकि व्यवहार की दृष्टि से तो इससे बढ़ करके अनौचित्य हो नहीं सकता क्योंकि पुष्प वाटिका में श्री राम के साथ केवल लक्ष्मणजी थे और सीताजी के सौन्दर्य, उनके आभूषणों की ध्वनि सुन करके श्री राम

के हृदय की जो दशा थी उसको उन्होंने छिपाया नहीं, पूरा का पूरा लक्ष्मण को सुनाया। जब लक्ष्मण जी को यह ज्ञात है कि श्री रामभद्र के अन्तःकरण में जनकनंदिनी के प्रति इतना दिव्य अनुराग है तो क्या इसको जानने के बाद मैं धनुष तोड़ दूं-क्या ऐसा वाक्य बोलना चाहिए था? तो जिन्हें मतिभ्रम होता है वह तो न जाने क्या-क्या समझ लेते है। लेकिन यह बड़ा तात्विक प्रसंग है और उसके पीछे एक तत्व ज्ञान है-लक्ष्मण जी ने तोड़ा-वोड़ा कुछ नहीं केवल आज्ञा मांगी। लक्ष्मण जी का भाषण सुन करके अलग-अलग प्रभाव पड़ा। जितने राजा थे वे तो थोड़ा उद्विग्न हुए थोड़ा प्रसन्न भी हुए, चिंता इनके सिर से उतर जाती। लक्ष्मण को यह ज्ञात है कि श्री राम तो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं और सीताजी उनकी शक्ति। अनादि अनंत तो निरंतर एकरस एकमिलित हैं—

गिरा अरथ ज बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।।
बन्दउँ सीता-राम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न।।

(१-१८)

तो मानो व्यंग्य है कि पिता कन्या के विवाह के लिए चिंता करता दिखाई दे तो लगेगा कि क्या नाम समझ है? सीताजी कौन हैं? बोले जनक की पुत्री तो दिखाई दे रहीं हैं, पर वस्तुतः जनक की भी मां है, इसलिए तुलसीदास जी जब वंदना करते हैं तो कहते है-

जनक सुता जग जननि

(१-१७-७)

दिखाई तो वह पुत्री दे रही हैं पर वे तो मां हैं-मानों लक्ष्मण जी को आश्चर्य हुआ कि अब इनको चिंता हो रही है कि मेरी कन्या का विवाह कैसे होगा। इन्हें पता नहीं है कि यह विवाह होना-वोना कुछ नहीं। लक्ष्मण जी यह मानते ही नहीं है कि धनुष के तोड़ने से विवाह का कोई संबंध है। और इसके लिए लक्ष्मण जी ने जो दृष्टांत दिया वह वेदान्त का दृष्टांत है—भगवान राम ने उस रात्रि के बाद (जब वह पुष्प वाटिका में गये थे) प्रातःकाल लक्ष्मण से कहा कि "लक्ष्मण जा करके देखो तो सूर्य निकल आया?" लक्ष्मणजी ने अपनी उसी आध्यात्मिक भाषा का प्रयोग करते हुए कहा, प्रभु एक सूर्य तो निकल आया है पर अभी दूसरे सूर्य की

आवश्यकता है। इस भौतिक अंधकार को दूर करने वाला सूर्य तो उदित है वहां पर जनकपुर में यह धनुष का एक आध्यात्मिक अंधकार छाया हुआ है। उसको मिटाने की आवश्यकता है और जब आपकी भुजा के सूर्य का उदय होगा तो धनुष का अंधकार दूर हो जायेगा। उन्होंने यही कहा-

रवि निज उदय व्याज रघुराय। प्रभु प्रताप सब पृपन्ह दिखाया।
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी।।

(१-२३८-५)

और जैसे धनुष के, जैसे सूर्य के निकलने पर—

कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना।।
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहरिं टूटे धनुष सुखारे।।

(१-२३८-२)

पर आपने लक्ष्मण जी के वाक्य की गहराई को समझा, काव्य के संदर्भ में अगर वे कहना चाहते तो जैसे जनकपुर की सखियों ने कहा-प्रार्थना की तो यही कहा-गणेश जी ऐसा कृपा कर दो कि जैसे कोई हाथी कमल नाल को क्षण में तोड़ देता है इसी प्रकार से श्री राम की भुजा में इतनी शक्ति आ जाये कि कमल नाल की तरह धनुष तोड़ दें। लक्ष्मण जी कह सकते थे कि आपकी भुजा गज, उसके द्वारा वह धनुष कमल नाल की तरह टूट जायेगा। पर लक्ष्मण जी ने धनुष को अंधकार क्यों कहा-भगवान राम की भुजा को सूर्य क्यों कहा-अभी आपके सामने चर्चा चल रही थी अंधकार में और प्रकाश में वस्तुओं में कोई परिवर्तन नहीं होता, अंधेरे में जो वस्तु जैसी है वह वैसी नहीं दिखाई दे रही है, प्रकाश हो गया तो जो वस्तु जैसी थी स्पष्ट दिखाई देने लगी। लक्ष्मण जी ने कहा कि जनक को भ्रम हो गया है कि धनुष जब तक नहीं टूटेगा तब तक विवाह नहीं होगा पर यह तो अंधकार है। धनुष टूटने पर क्या होगा-बोले प्रभु अंधकार से जैसे वास्तविकता नहीं दिखाई देती है इसी प्रकार से जो लोगों को भ्रम है, जनक के भ्रम है, कि मेरी कन्या अविवाहित रह जायेगी, वह भ्रम धनुष के साथ टूट जायेगा ओर प्रभु और उनकी शक्ति का चिर विवाह लोगों को दृष्गिोचर होगा।

लक्ष्मण जी का संकेत यह था कि महाराज मैं क्या कहूँ इतने व्यक्ति हैं

ये मान बैठे हैं कि जनकनंदिनी का विवाह तब होगा जब धनुष टूट जायेगा और मैं तो जानता हूं कि विवाह कब होगा का प्रश्न ही नहीं है। वह विवाह कब हुआ यह बताने वाला भी कोई आज तक नहीं है, वह तो एक अनादि अनन्त-

न आदि न अनत बिहार करैं दोउ
लाल-प्रिया में भइ न चिन्हारी।

ऐसा दिव्य सत्य है। लक्ष्मण जी जब ये बोलते हैं कि मैं धनुष तोड़ दूंगा तो मुनि लोग प्रसन्न होते हैं क्योंकि वेदान्त की भाषा में उन्होंने कहा जनक की चिंता वास्तविक नहीं है, केवल अपने भ्रम से उन्होंने मान लिया। उस बुढ़िया की तरह कि उसके पास एक मुर्गा था और वो सबेरे बांग दिया करता था। गांव के लोगों ने उसको तंग किया, उसको बड़ा क्रोध आया तो उसने कहा-मैं गांव छोड़ के चली आऊंगी। चली चाओं। जानते हो मैं जाऊंगी तो मुर्गा साथ में लेती जाऊंगी। तो मुर्गा भी साथ में ले जाओ। याद रखो जब मेरा मुर्गा बोलता है तभी सूर्य निकलता है। मैं लेके चली जाऊंगी तो सूर्य का निकलना बंद हो जायेगा। क्या सचमुच मुर्गा नहीं बोले तो सूर्य नहीं निकलेगा क्या-पर बुढ़िया को भ्रम यही हो गया था। उसने देख लिया था कि मुर्गे की बांग होती है। और उसके बाद ही सूर्य निकलता है। दोनों का संबंध न होने पर भी उसने मस्तिष्क में संबंध जोड़ लिया था। लक्ष्मणजी का अभ्रिाय यही है कि जनक महाराज ने कहां यह भ्रम पाल लिया कि सीताजी का विवाह तब होगा जब धुनुष टूटेगा। इसलिए जब बाद में किसी ने लक्ष्मण से पूछा-आप कहने लगे मैं तोड़ दूं आपने तो तोड़ा नहीं-तो हंस करके उन्होंने कहा "मुझे धनुष नहीं तोड़ना था, जनक का भ्रम तोड़ना था जो वे मान बैठे थे। मैं यह बताना चाहता था कि अगर मेंरे मन कें विवाह की इच्छा होती या विवाह से धनुष का कोई नाता मैं मानता तो मैं तो वहीं था पहले उठ करके प्रयत्न करता। पर आपको बहुत बड़ा भ्रम हैं।" मेरी कन्या कुंवारी रह जायेगी यह मानो जनक का जो दुख है, वास्तविक नहीं है- कन्या अविवाहित रह जाए तो यह दुख वास्तविक है और जो शाश्वत विवाहित कन्या है जो अनादिकाल से जगन्माता है उसकी चिन्ता? लक्ष्मण जी ने फटकार दिया

और उसके बाद आप यही पावेंगे कि भगवान् श्री राम भी धनुष तोड़ने आगे नहीं आये। लक्ष्मण जी को प्रभु ने धीरे से संकेत किया, बैठ गये, और उसके बाद गुरुजी ने कहा-

उठहु राम भंजहु भव चापा।

बस, जनक का भ्रम उन्होंने भी दूर कर दिया। इन महापुरुष ने मान लिया कि धनुष टूटने से मेरी कन्या का विवाह होगा यह कुछ नहीं। श्री राम से भी किसी ने पूछ दिया इतना प्रेम, आपका इतना अनुराग और आपने उनकों पाने के लिए रंच मात्र प्रयत्न हीं किया। तो प्रभु ने कहा कि मुझे अगर यह भ्रम होता कि मुझे प्राप्त नहीं है तब न मैं प्रयत्न करता। जब मुझे पता ही है कि वे मुझसे अलग हैं ही नहीं तो हम उनके लिए प्रयत्न क्या करते-

मेटहु ताता जनक परितापा।।

(१-२५३-६)

जो भ्रान्तिजन्य, अज्ञानजन्य माने हुए कारण से दुख है, उसका निवारण आपके द्वारा होना चाहिए। धनुषभंग के द्वारा विवाह हुआ ये तो दिखाई देता है पर तात्विक सत्य तो यह है कि यह विवाह शाश्वत है। मानो सूत्र यही है कि भगवान क्या हैं

ग्यान अखंड एक सीताबर।

जनक भी ज्ञानी हैं पर उनका जीव का है और श्री रामया लक्ष्मण वे तो अभिन्न हैं, उनका जो ज्ञान है अभिन्न ज्ञान है, अखण्ड ज्ञान है इसीलिए वहां पर भी यही शब्द है—

ग्यान अखंड एक सीताम्बर।

(७-७७-४)

सीतावर राम ही एकमात्र अखण्ड ज्ञान है तो उसका अभिप्राय है कि जनक का ज्ञान सूर्य की तरह होते हुए भी जैसे दिन में बादल आए तो सूर्य का प्रकाश नहीं दिखाई देता और बादल के बाद कोई सूर्य चला नहीं गया था, बादल के कारण सूर्य दूर हो गया, अंधकार हो गया, बादल हट गया, सूर्य दिखाई देने लगा। इसीलिए वेदान्त शास्त्र का मूल संकेत यह है कि हमारे जीवन में दुख का सबसे बड़ा कारण यही है, जो कारण

वास्तविक न हो करके भ्रम के कारण, अज्ञान के कारण है। हमने आने आप मान लिया कि यह कार्य नहीं हुआ, जब हो जायेगा तो हम सुखी होंगे। इसलिए वेदान्त कहता है कि ज्ञान को छोड़ करके और कोई उपाय ही नहीं है जिसके द्वारा व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर सके, जिसके द्वारा व्यक्ति परम सत्य का साक्षात्कार कर सके। इस तरह से ज्ञान की महिमा का अनेक प्रसंगों में यह संकेत मिलता है और व्यवहार में भी यही है। अगर कोई वस्तु है और वस्तु का ज्ञान हमें नहीं है तो वस्तु हमें सुख नहीं देगी। आप देखते है एक टुकड़ा चमक रहा है। आप उसको कांच समझते हैं, उसके बाद किसी जौहरी की दृष्टि पड़ी, उसे कह दिया हीरा है। उसके मूल्य का ज्ञान होते ही वही वस्तु हमें सुखप्रद बन जाती है। भगवान् कहते हैं जब कोई मेरे पास आात है तो मैं कुछ देता नहीं हूं। तो फिर आपके पास आपका दर्शन होने से क्या लाभ हुआ? भगवान् ने कहा— बस मेरे दर्शन का एक ही फल है और वह फल क्या है—

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।

(३-३५-९)

मै कुछ नहीं देता, जीव को यह बता देता हूं कि तुम मुझसे भिन्न नहीं हो। तुम्हारा स्वरूप जो है मुझसे अभिन्न है और उससे जो उसने अपने आपको मिथ्या जीव बुद्धि मान लिया है उससे मुक्त हो जाता है। योग का उद्देश्य क्या है? योग का प्रारम्भ ध्यान से होता है ओर उसके लिए भुशुण्डि जी ने जो वृक्ष चुना है, वह पीपल का वृक्ष है—

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई।

(७-५६-५)

ध्यान से साधना का प्रारंभ होता है और उसकी चरम परिणति समाधि में होती है और समाधि में व्यक्ति को इस सत्य का ज्ञान हो जाता है कि वस्तुतः हमारा ब्रह्म से क्या संबंध है और तब वह व्यक्ति परिपूर्णता का अनुभव करता है। ध्यान तो दिन रात हम आप लोग किया करते हैं। मन में कुछ-न-कुछ बात आती ही रहती है, हो सकता है कि आप यहां बैठ करके भी ध्यान कर रहे हों, कथा का न करके, घर का ध्यान कर रहे हों, कुछ काम बाकी है उसका ध्यान कर रहे हों, उस

लघुगाथा की तरह कि जहां दो मित्र कार्य से लौट रहे थे। मार्ग में कथा देखकर एक मित्र ने दूसरे मित्र से कहा—कथा हो रही है चलो, 'सुना जाए।' दूसरे ने कहा, भई, मेरी पत्नी प्रतीक्षा कर रही होगी, व्यग्र होगी, मैं जाऊंगा, आराम से लेटूंगा, चाय-वाय पीऊंगा मैं तो कथा में नहीं जाऊंगा।" वह घर आया। मित्र कथा में बैठ गया पर कथा गंभीर थी उसके पल्ले कुछ पड़ नहीं रहा था। एक सज्जन से मैंने नया शब्द सुना, आप की कथा तो सिर के ऊपर से निकल गयी। तो इसका अर्थ है कि वह समझ से परे ही हो गयी। तो शायद उस दिन कथा कुछ, वक्ता गंभीर ही कह रहे होंगे। उसको लगने लगा, कहां फंस गया। अब देखो हमारा मित्र तो आराम से लेटा हुआ पलंग पर चाय पी रहा, पत्नी से हँस के बातचीत कर रहा होगा और मैं उठ के जाऊं तो लोग असभ्य कहेंगे। क्या करूं घर की याद आने लगी। मेरी पत्नी भी तो मेरी याद कर रही होगी, प्रतीक्षा कर रही होगी। वह व्यक्ति तो चला गया था पत्नी की स्मृति से, घर में जाते ही पत्नी से झगड़ा हो गया तो उसने सोचा कि इससे अच्छा होता कि मैं भगवान् राम का चरित्र सुनता। सीता जी के प्रेम की कथा सुनता। परिणाम क्या हुआ? जो कथा में था, वह घर में था, जो घर में था, वह कथा में था। तो इसका अभिप्राय? ध्यान तो कोई न कोई आता ही रहता है, पर ध्यान माने जो आया है वह ध्यान नहीं, जो किया जाता है, वह ध्यान है। इसका अभिप्राय है कि अनजाने में ही चाहे जो बात मस्तिष्क में आ रही है, हृदय में आ रही है यह तो होता ही रहता है। ध्यान का अभिप्राय है कि जब हम निश्चित करें कि हम इस रूप का, इस प्रकाश का इसमें ही अपने को एकाग्र करेंगे और अन्यत्र कहीं हम अपने मन को नहीं जाने देंगे। यह ध्यान की पद्धति का मूलतत्व है तो ध्यान का तो अभ्यास मनुष्य को सहज रूप में ही प्राप्त है। हर व्यक्ति को कोई न कोई ध्यान आता रहता है, पर अधिकांश ध्यान ऐसे आते हैं जो हमारे दुख को बढ़ाते हैं, हमारे मन में ईर्ष्या, हमारे मन में द्वेष, हमारे हृदय में रोष को उत्पन्न करते हैं। इसके स्थान पर यह जो ध्यान है, जिस ध्यान के द्वारा हमारा हृदय शीतल हो जाता है, प्रकाशित हो जाता है, धन्यता प्राप्त होती है और जिस ध्यान का अंतिम परिणाम होता है समाधि में ब्रह्म का

साक्षात्कार। उसे कर कहां रहे हैं? पीपल के वृक्ष के नीचे। कितना सांकेतिक चुनाव है। आप में से बहुत वृक्ष से परिचित होंगे और आप देखेंगे कि जितने भी वृक्ष हैं, उनमें पत्ते तो है पर सबसे अधिक हिलने वाला अगर कोई पत्ता है तो पीपल का। इतनी थोड़ी सी भी हवा चले, जरा सी हवा चले तो यह केवल हिलने ही नहीं लगता बल्कि आवाज भी करने लगता है। इसीलिए रामायण में भी जब किसी के मन की चंचलता की बात कहनी हो तो पीपल के पत्ते का दृष्टांत देते हैं—

पीपर पात सरिस मन डोला।

पीपल के पत्ते की तरह मन डोलने लगा। बड़ी विचित्र बात है ध्यान के लिए लोग कमरा बनाते हैं जिसके पास सामर्थ्य है। अब वे बनाने के बाद क्या करते हैं यह तो वह जानें, लेकिन बनवाने के लिए साधन है तो बनवा तो लेते ही हैं और बड़ी चेष्टा करते हैं कमरा बंद करके इसमें ध्यान में बैठे हुए हैं । पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान तो बड़ा कठिन है। अब हवा में जरा जरा हवा आये और हिलने लगे, वहां खड़खड़ आवाज होने लगे तो कोई अच्छा स्थान भुशुण्डि जी ने नहीं चुना। पर यही ध्यान का रहस्य है, ध्यान का सूत्र है कि अगर यह जो ऊपर मन की दशा है मन में जो बातें ऊपर हैं, हमारा-आपका मन जो है कितनी छोटी सी बात में हिलने लगता है आवाज करने लगता है, चिल्लाने लगता है इसका अनुभव आप सबको होता होगा पर-

पीपर पात सरिस मन डोला।।

के साथ-

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई।

का अर्थ क्या है? ऊपर देखियेगा तो आपको बस यही दिखाई देगा-सुनाई देगा पर जरा उस पीपल के नीचे जो मूल है, उसको देखिये इतने पत्ते हिल रहे हैं और वह बिल्कुल नहीं हिल रहा। इसका अभिप्राय है कि संसार की वस्तुओं को देखियेगा तो मन का पत्ता हिले बिना नहीं रहेगा, पर उसके मूल में जो ब्रह्म है उसमें स्थित हो जाइये तो बस पत्ते हिलते रहें, पत्ते कुछ भी करते रहें, लेकिन उसका मूल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ध्यान का तत्व यह है कि हमें अपने आपको मूल में स्थित करना

ह—

बहुशाखाह्यनन्ताश्च, बुद्धयोऽव्यसायिनाम्।

(श्रीमद्भगवद्गीता २-४२)

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से गीता में कहते हैं कि अर्जुन-

बहुशाखाह्यनन्ताश्च ....

यह जो अनन्त शाखाएं तर्क-वितर्क की हैं उसका मूल क्या है? यह जो सृष्टि दिखाई दे रही है, ये जो घटनाएं घटित हो रही हैं, जो कुछ दिखाई दे रहा है इसके मूल पर दष्टि, उसके मूल की खोज, यही ध्यान का उद्देश्य है, यही ध्यान का तात्पर्य है। जब कोई व्यक्ति उसमें स्थित होने के लिए प्रयत्न करेगा और प्रयत्न करने की प्रक्रिया तो लम्बी है। एक ही क्षण में ध्यान करें और समाधि में पहुंच जायें, यह तो संभव नहीं। आजकल ऐसे भी लोग हैं जो एक क्षण में समाधि में पहुंचा देते हैं तो अब वह तो ठीक है जिन्हें उसका अनुभव हो रहा है वे बड़े बधाई के पात्र हैं। लेकिन वह इतना सरल नहीं है। उस मूल में स्थित होने के लिए यह जो ध्यान की पद्धति है वह मानो यह है कि धीरे-धीरे हमारे मन में जो वृत्तियां उठ रहीं हैं, बुद्धि में जो विचार उठ रहे हैं चित्त में संस्कार जो जागृत होने वाले हैं, हम उनसे अपने आपको अलग करने की चेष्टा करें और आप देखते ही हैं आप नित्य तो अनुभव करते हैं, दिन भर आप जब व्यवहार करते हें तो आपको मन का भी, बुद्धि का भी, अहंकार का भी प्रयोग करना पड़ता है। लेकिन जब आप सोना चाहते हैं, आप याद करके नहीं सो सकते भूल करके ही सो सकते हैं। इस सत्य को अगर व्यक्ति समझ ले—जिन लोगों को अनिद्रा का रोग है वह क्यों? अब लेटे हुए तो वे हैं शैय्या पर और बस याद कर रहे हैं। पर याद करने की जगह, व्यवहार में, दिन में ठीक है। अब रात्रि में शांति अगर पाना चाहते हैं तो भूल जाइये—मैं किस, पद पर हूं, मेरी क्या जाति है, मैं कौन व्यक्ति हूं, मैंने क्या किया है, मुझे क्या करना है। जो भूल जाता है एक क्षण में उसको नींद आ जाती है। उसे अपने आपको विच्छिन्न कर लिया। इसलिए यह जो ध्यान की पद्धति है इसका रामचरित मानस में बड़ा ही महत्व है और वर्णन है। भगवान शंकर महानतम योगियों में हैं। योगियों के

शिरोमणि हैं, भगवान शिव। विवाह के संदर्भ में नारद जी ने यह कहा कि कि इस कन्या को जो वर मिलेगा वह योगी होगा—

जोगी जटिल अकाम मन...........

(१-६७)

नारद जी से हिमांचल ने कहा—"मेरी कन्या का हाथ देख करके जरा फल तो बताइये" उन्होंने देखा। कहा-तुम्हारी पुत्री तो बड़ी गुणमयी है। संसार में इसकी पूजा होगी। महराज यह सब तो है पर मेरी कन्या का विवाह कहां होगा। तो अब तुम्हारी कन्या का विवाह होगा—तो पहला शब्द उन्होंने कहा—

जोगी—योगी होगा

जटिल—जटाधारी होगा

अकाम मन—कामना से, काम से ऊपर होगा,

नग्न रहने वाला और चिता की राख-वाख लपेटे हुए, बिल्कुल अमंगल वेश—

अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख।

(१-६७)

अब इतने दुखी हुए हिमांचल। जिस कन्या को ऐसा दूल्हा मिल जाये वह कोई भाग्यशाली होगी? विवाह तो भोग का विषय है, वह तो योग विषय नहीं। कह रहे हैं कि वह तो योगी है और जटिल है, जटाधारी है तो जटाधारी तो मुनि लोग हुआ करते हैं। नंगा रहता है। जो स्वयं नंगा रहेगा तो पत्नी को साड़ी क्या पहनावेगा, पत्नी को क्या वस्त्र धारण करावेगा? जब वह स्वयं चिता की राख-वाख लपेटे रहेगा, तो वहां दुर्गंध ही होगी, वहां सुगंध की कोई संभावना नहीं। लेकिन लिखा हुआ है—

दुख दम्पतिहिं

हिमांचल और मैना दुखी हुए और

उमा हरषानी।।

फल एक ही है और जिसका विवाह होना है वह प्रसन्न हो रही है और माता-पिता जो हैं बिचारे दुखी हो रहे हैं—

दुख दम्पति हिं उमा हरषानी।।

(१-६७-१)

क्यों ? उसका अर्थ यह है कि पार्वती जी को यह दोष नहीं लगा है, यह गुण लगता है। क्यों? बोले भोगी शब्द और योगी शब्द—इस पर आप विचार करके देखें। संसार के भोगियों की समस्या यह है कि जिस वस्तु के प्रति उनका आकर्षण होता है और उन वस्तुओं के उपभोग का अगर उन्हें अवसर मिल जाता है, तो धीरे-धीरे उनको अरुचि होने लगती है और कभी तो बैर-विरोध न जाने क्या-क्या किस रूप में हो जाता है। तो भोगी जब होगा तो उसका अर्थ है कि उसका मन आज यहां, कल कहां जायेगा नहीं कहा जा सकता। योगी माने जिसका अपने मन पर अधिकार है। वास्तविक सच्चे अर्थों में भोगी तो योगी ही हो सकता है क्योंकि उसका अभिप्राय है कि उसका अपने मन पर अधिकार है उसका मन एकरस है और एकरस है तो ऐसी स्थिति में वहां कोई डर नहीं है। विवाह करने के बाद फिर विवाह विच्छेद की स्थिति भी आ सकती है, विरोध बैर की वृत्ति उत्पन्न हो सकती है। पार्वती जी बड़ी प्रसन्न हो जाती है—अहा! हमारे प्रभु कितने महान हैं। भगवान शिव सबको वस्त्र देते हुए भी जो स्वयं नग्न रहते हैं, कितने उदार हैं जो अमंगल वेश धारण करके भी साक्षात् दूसरों को मंगल का दान देते हैं। भगवान शिव योगी हैं और योग के संदर्भ में उनका जो प्रसंग है वह रामायण में बहुत सुंदर ढंग आया, कई रूपों में आया। एक तो यही होता है कि सती जी के कारण जब विक्षेप उत्पन्न हुआ और सतीजी के परित्याग का संकल्प शंकर जी ने लिया तो एक लीला होनी थी। सीताजी का वेश उन्होंने बनाया है। शंकरजी को मानों यह प्रेरणा मिली कि अब इस शरीर में सती से मेरा मिलन नहीं होगा और उसके पश्चात् जब शंकर जी कैलाश गये सीताजी सामने हैं, सतीजी दुखी हैं, सती जी व्याकुल हैं, शंकर जी ने उनको बड़ी मीठी-मीठी कथाएं सुनायी कि किसी तरह से इनकी पीड़ा दूर हो। पर सती जी बार-बार पूछ देती थीं कि आकाशवाणी हुई है कि आपने कोई प्रतिज्ञा की है वह प्रतिज्ञा क्या है? पर शंकरजी ने बिल्कुल नहीं सुनाया—बोले—

कृपा सिंधु सिव परमा आधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा।।

(१-५७-२)

इनको दुखी मैं क्यों करूं। इसलिए उन्होंने उसको नहीं सुनाया। पर वह बड़ी दुखी हैं अत्यन्त अशान्त। शंकरजी कथा सुनाते हैं तो मन नहीं लगा- महाराज आपने कथा तो सुनाई पर यह तो बताइये कि आपने क्या प्रतिज्ञा की है? तो अब शंकरजी ने सोचा क्या करना चाहिए, कुछ उपाय निकाल लिया-

शंकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।

(१-५७-२)

भगवान् शिव चले गये भीतर। जब बाहर संकट आवे तो भीतर जाने की कला सीख लेना ध्यान है। पानी बरसता है तो आप क्या करते हैं— बाहर अगर बहुत भीगे तो बीमार पड़ेंगे इसलिए छाया में चले जाते हैं आप, घर में चले जाते हैं बहुत तेज धूप हो तो आप क्या करते हैं, भीतर चले जाते हैं। इसी प्रकार से बाहर जब अशांति दिखाई दे तो भीतर जाना जो सीख लेता है, वह व्यक्ति ध्यान करता है। ध्यान माने बाहर के स्थान पर हम स्वयं भीतर पैठ जायें। जब हम भीतर चले जायेंगे तो बाहर का वह जो संकट है नहीं रहेगा। शंकर जी जानते हैं सती का दुख तो न जाने कब दूर होगा, अवसर आने पर दूर होगा। पर मैं अशांत हो करके उनकी चिन्ता में निमग्न क्यों होऊँ-शंकर जी समाधि में चले जाते हैं और समाधि में चले जाने के पश्चात्—

बीते संबत सहस सतासी।

(१-५९-२)

इतना विशाल समाधि का वह काल है कि ध्यान से समाधि में जा करके—

शंकर सहज सरूपु सम्हारा।

शंकर जी अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं और इस तरह से समाधि का जो दिव्य रूप है कि जहां पर विश्व प्रपंच का कोई आकर्षण नहीं, राग-द्वेष इन सबकी वृत्ति शेष नहीं रह गयी है, उस समाधि में शंकर जी चले गये। उसे पश्चात् फिर वह प्रसंग आता है जिसकी विस्तार से व्याख्या का अवकाश नहीं है, जहां पर फिर सती जी किस तरह से शरीर त्याग करती हैं, पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं और पार्वती के रूप में जन्म लेने

के बाद गोस्वामी जी ने दो सत्य लिखे-विवाह करके शंकर जी लौट करके आये तो यह नहीं कहा-उन्होंने कि कथा सुनाने लगें। हर वस्तु का एक उचित समय होता है। कथा ही सुनाने लगे और यह कहें कि कथा से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है तो वह कोई योग्य पति नहीं है। जीवन के जो दोनों पक्ष है तो उन सबको स्वीकार करना चाहिए। इसलिए गोस्वामीजी ने लिखा कि भगवान शंकर जब विवाह करके लौट करके आये तो बिना संकोच के गोस्वामी जी ने लिखा—

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा।

(१-१०२-५)

उमा के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हुए

हर गिरिजा विहार नित नयऊ।

(१-१०२-६)

और

एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ।।

विस्तार से ऐसे प्रसंगों को सुनने की इच्छा व्यक्ति में बहुत होती है तो गोस्वामी जी ने कहा—

जगत मातु-पितु संभु भ्वानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी।।

(१-१०२-४)

भगवान् शंकर के श्रृंगार के वर्णन की अपेक्षा नहीं है, पर मानों भगवान शंकर का यह रूप देख करके यह लगता है कि वे तो श्रृंगार रस में डूबे हुए हैं। लेकिन फिर जो संकेत आते हैं बड़े महत्व के हैं- भोग से रोग उत्पन्न हुआ तो भोग जो है अकल्याणकारी हो या और भोग से पार्वती और शंकरजी के इस विहार का परिणाम क्या होगा-बोले दो पुत्रों का जन्म हुआ-

तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा।।

(१-१०३-४)

तारकासुर का संहार करने वाले स्वामी कार्तिकेय का जन्म हुआ जिन्होंने तारकासुर जो विश्व को कष्ट देने वाला दैत्य है उसको नष्ट किया। गणेश जी का प्राकट्य हुआ जो विवेक के देवता के रूप म जीव

को विवेक का दान देते हैं। संकेत यह है कि भोगी का भोग अंत में रोग की ओर ले जाता है पर यह जो महानतम भोग है वह योगी का भोग है। भगवान शिव योगी हैं और तब दोनों पुत्रों का जन्म होता है और उसके पश्चात् फिर दूसरा पक्ष है, भगवान शंकर एक दिन वट के नीचे जा करके बैठ गये। कोई गण साथ में नहीं था, कोई शिष्य साथ में नहीं था, पार्वती साथ में नहीं थी। शंकर जी अपने बगल में अपना व्याघ्रांबर दवाये हुये गये और गोस्वामी जी ने कहा-भगवान शंकर ने-

निज कर डासि नाग रिपु छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला।।

(१-१०५-५)

भगवान् शंकर बैठ गये सहज भाव से और उस समय शंकर जी को देख करके क्या लग रहा है? जीवन में अनेक आवश्यकतायें हैं और उन आवश्यकताओं को समय के अनुकूल उपयोग करना व्यक्ति के लिए परमावश्यक है। पर विलक्षणता क्या है? भगवान् शंकर जब यहां पर बैठे हुए हैं तो गोस्वामी जी ने कहा, जो शंकरजी कुछ दिन पहले श्रृंगार के साकार रूप दिखाई दे रहे थे, अब कैसे लग रहे हैं-बोले—

बैठे सोह काम रिपु कैसे। धारे सरीरु सांत रसु जैसे।।

(१-१०६-१)

यही है विजय मंत्र। हम जो बात चाहते हैं जहां हमारे जीवन में उपासना होनी चाहिए वहां हम श्रृंगार का चिंतन करने लगे। जहां श्रृंगार की आवश्यकता है, हम अन्यत्र श्रेष्ठ वस्तु के नाम पर उनका चिंतन करने लगे। परम शांत भाव से, शांत रूप में भगवान् शंकर विद्यमान हैं और पार्वती जी की भी विशेषता यही है कि अब वह निरंतर यह नहीं कि अब भगवान् शंकर जा कर अकेले बैठ गये तो मेरी ओर ध्यान कम हो गया ऐसी चिन्ता उनको नहीं हो गयी। यह नहीं कि अब इतने दिन तो मुझसे ही बात करते रहते थे अब मुझे बताया भी नहीं चुपचाप चले गये-क्या हो गया-गोस्वामी जी ने कहा-

पार्वती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी।।

शंकर जी के पास गई-

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा।

(१-१०६-२)

आइये-आइये और,

बाम भाग आसन हर दीन्हा।।

वाम भाग में पार्वती जी विराजमान हो जाती हैं और फिर उसके पश्चात् प्रार्थना करती है, भगवान् के कथा के संदर्भ में-आप भगवान् की कथा जो है, कृपा करके हमें सुनाइये और साथ-साथ उन्होनें यह भी कहा, बहुत मधुर, जैसे विनोद भरा वाक्य, उन्होंने कहा-

कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैल कुमारी।।

(१-१०६-६)

सारे संसार को मोहित करने वाली रामकथा है उसे शैल कुमारी सुनना चाहती है। इसमें मीठा विनोद था कि जब तक मै दक्ष कुमारी थी तब तक तो आपने सुनाया नहीं या मैं ने सुना नहीं पर अब तो ऐसी बात नहीं है अब तो मैं शैल कुमारी हो गयी हूं-अब मैं स्थिर हूं। आप कृपा करके कथा सुनाइये-और जब भगवान् शंकर से अनुरोध किया गया तो भगवान शंकर साधना के क्रम का एक अनोखा परिचय परिचय देते हैं, ध्यान के स्वरूप का। गोस्वामी जी ने लिखा-यह प्रश्न सुन करके शंकर जी प्रसन्न हुए और उन्होंने नेत्र मूंद लिया और ध्यान में बैठ गये। ध्यान के लिए गोस्वामी जी ने एक बड़ी मीठी बात कही-आपने देखा होगा कि कई बार कई वक्ता बड़ी ऊँची बात सुना देते हैं पर सुनने वाले कभी-कभी आपस में कहते हैं वहां बात तो थी पर रस नहीं आया-तो इसका अभिप्राय है जैसे जलेबी बनाने वाला कितना भी शुद्ध घी और अच्छा मैदा हो और अगर वह जलेबी को घी से निकाले और ज्यों की त्यों परोस दे और वह सामने वाले से कहे भी कि शुद्ध घी की जलेबी है तो कहेगा मजा तो कुछ नहीं आ रहा है। लेकिन उसी जलेबी को जिस समय रस में डुबो करके परोसता है कितना आनन्द आता है। वक्ता लोगों की आपने परंपरा देखी होगी नेत्र मुंद करके कथा के पहले ध्यान करने की परंपरा-अब वह अपनी-अपनी स्थिति है कि ध्यान कौन करता है कौन नहीं करता है। पर ध्यान का उद्देश्य क्या है-बोलने के पहले जो सत्य आप बोल रहे हैं उसको रस में डुबो दीजिए तभी कल्याण होगा और ध्यान क्या है-बोले-

मगन ध्यान रस

(१-१११)

भगवान् शंकर ध्यान करते हैं-

श्री रघुनाथ रूप उद आवा। परमानन्द अमित सुख पावा।।

(१-११०-८)

और

मगन ध्यान रस दण्ड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह।।

(१-१११)

बहुत बड़ा सूत्र है। रस कहां है? जो लोग यह मानते हैं कि केवल विषयों में रस है, वे बिचारे बहुधा दुखी होते हैं। विषय मिला तो सुखी है विषय नहीं मिला तो दुखी हैं। कभी-कभी विषय मिला तो धीरे-धीरे रस का अभाव हो गया। मानो ध्यान रस है और वह रस आपके ही हृदय में है। ध्यान योग का अभिप्राय है, जरा भीतर तो पैठिये, भीतर आपको अनन्त रस का केन्द्र मिलेगा और यह रस का जो अंतरंग स्रोत है शंकर उस रस का अपने आप में अनुभव करते हैं और अनुभव करने के बाद फिर वे मन को बाहर निकाल करके श्री राम कथा को सुनाते हैं। तो ध्यान जो हैं, उसकी रामायण में इतनी व्याख्या है कि वह सात दिन में भी पूरी नहीं हो सकती। ध्यान के अनेकानेक प्रसंग हैं। भगवान् शंकर क्रम से वही संकेत करते हैं जब वे समाधि में स्थित हैं तो समाधि में स्थित होने के बाद? जैसे यहां पर भुशण्डि जी जप करते हैं, ध्यान करते हैं, मानस पूजा करते हैं बट के नीचे जो साधना करते हैं वह हैं, कथा सुनाने की साधना। तो कथा में और अन्य साधनों में अंतर क्या है? अंतर यह है कि अन्यत्र जो रस है केवल आप अकेले पा रहे हैं और कथा माने उसको बंट रहे हैं लोक कल्याण का यही संकेत भगवान् शंकर के प्रसंग में है, वे समाधि में बैठ गये। तारकासुर अत्याचार कर रहा है। भगवान् शंकर बाहर नहीं देख रहे हैं और तब वहां पर वर्णन आता है। वे सारे प्रसंग बड़े दार्शनिक हैं और उनमें संकेत यही है कि भगवान् शंकर को समाधि से जगाने के लिए, नीचे उतारने के लिए प्रयत्न करना पड़ा। काम ने बाण चलाया। बाण चलाने के बाद भगवान् शंकर के हृदय में क्षोभ का उदय हुआ और वह क्षोभ लोक के लिए, परम कल्याणकारी है। आप कभी-

कभी देखते हैं आपने अच्छा दूध रखा, सबेरे दूध जो है वो विकृत हैं कहेंगे, अरे, भई, दूध फट गया- और एक स्थिति यह है कि दूध में आप दही की जामन रात को डालें, सबेरे भी दूध का रूप बदल गया, पर अगर आप आप बदल गया तो कहेंगे फट गया और जामन डाला तो कहेंगे दूध जम गया, दोनों बदले। तो चाहे वो फट गया तो भी बदल गया और जमा दिया तो भी बदल गया। इसका अर्थ है जब हमारे हृदय में विकार अचानक प्रवेश करते हैं, तो अमारे अन्त:करण का दूध फट जाता है और जब जामन डाल लिया तो जम जाता है। भक्तों ने कहा-शंकर जी महाराज, आप तो इतने दुश्पाच्य हो गये हैं। उन्होंने काम के द्वारा जैसे प्रयोग किया शंकरजी जग गये और वह तारतम्य है शंकर जी ने काम का जब क्षणिक अुनभव किया तो अनुभव करने के बाद भगवान् शंकर ने सोचा कि आज मेंरे मन में काम कहां से आया-देखा आम के वृक्ष पर काम को। नेत्र खोला और भस्म हो गया। भगवान शिव में यही जो सामंजस्य है परिपूर्ण है-

तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।

(१-८६-६)

और जब काम जल करके भस्म हो गया तो काम की पत्नी रति विलाप करती हुई शंकर जी के पास आयी और उसने कहा कि महाराज आपने मेंरे पति को जला दिया। साथ-साथ मुझे भी जला दिया होता तो ठीक था। पर शंकर जी ने कहा नहीं-काम को जलाना आवश्यक है। तुम्हें जलाना आवश्यक नहीं-कल जो लोग कथा में रहे होंगे उन्होंने रति की बड़ी व्यापक व्याख्या सुनी होगी। रति ही जो है, रामायण की वह सर्वश्रेष्ठ वस्तु है जिसे पाने के लिए बड़े से बड़ा भक्त व्यग्र रहता है। भगवान् शंकर कहते हैं काम की आवश्यकता नहीं पर रति की आवश्यकता है। रति तुम्हें कैसे मैं नष्ट कर दूं? तुम्हारे बिना तो भक्ति का जो चरम उद्‌देश्य है वह भी पूर्ण नहीं होगा। पर वहां पर बड़े महत्व का सूत्र है और सूत्र यह है कि रति ने कहा- "महाराज आपको मेरे पति काम को दण्ड नहीं देना चाहिए, क्यों? आपसे प्रभु श्री राम ने विवाह करने का आग्रह किया और आप भूल गये। भगवान् के ध्यान में स्थित आपको

हमारे पति ने बाण चलाकर भगवान् के आदेश की याद दिला दी, तो दण्ड देना चाहिए कि पुरस्कार?" शंकर जी ने कहा-अच्छा दण्ड तो दे दिया अब पुरस्कार भी दे रहे हैं, तुम्हें दे रहे हैं और तुम्हारे पति को दे रहे हैं और उन्होंने आज जिनका जन्मदिन है उनकी बात न कही तो यह तो बड़े अनर्थ की बात हो जायेगी। उन्होंने कहा-

जब जदुबंस कृस्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा।।
कृस्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा।।

(१-८७-२)

जब यदुवंश में भगवान कृष्ण अवतरित होंगे, संसार के भार का हरण करने के लिए, तब तुम्हारा पति उनका पुत्र बनेगा और पुत्र बन करके तुम पुनः अपने पति को प्राप्त करोगी और तुम धन्य हो जाओगी। कितना अनोखा संकेत है। जीवन में काम से ऊपर उठ जाना सबके लिए संभव नहीं है। संसार का व्यवहार तो काम से जुड़ा हुआ है। तो शंकरजी योगी के रूप में भस्म करने में भी समर्थ हैं, पर वह एक आर्शीवाद देते हैं कि जब तक तुम्हारा पति भगवान् का पुत्र नहीं बनेगा, तब तक अनर्थ ही करता रहेगा। जब वह भगवान् का पुत्र बन जायेगा तो संसार के लिए अकल्याणकारी नहीं होगा और वस्तुतः जैसे भगवान् शंकर महान योगी हैं इसी प्रकार से भगवान् कृष्ण तो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, अनन्त गुण उनमें निवास करते हैं पर उनका वर्णन बार बार योगी के रूप में-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।

(श्रीमद्भवद्गीता १८-७८)

उपरोक्त श्लोक गीता के अंत में आता है। भगवान कृष्ण योगेश्वर हैं और योगेश्वर का तात्पर्य है कि वस्तुतः आप उनकी समस्त लीलाओं का अगर आनन्द लेंगे, समस्त लीलाओं का रसास्वादन करेंगे तो आपको यही दिखाई देगा। एक रूप में देखेंगे तो ऐसा लगेगा कि भगवान् श्री कृष्ण के चरित्र में भोग की पराकाष्ठा है पर दूसरी ओर उनके चरित्र की परिपूर्णता यही है। जो भगवान् शंकर हैं, योगेश्वर हैं, भगवान् कृष्ण के लिए ----- ? उनको और भी उच्च स्थान दिया जाता है। मानो भगवान् शंकर ने कहा-रति मैं योगेश्वर के रूप में तुम्हारे पति के लिए वरदान तो

देता हूँ पर महान् योगेश्वर के रूप में जब श्री कृष्ण अवतरित होंगे तो वे काम को स्वीकार करने में सक्षम हैं। मानो भगवान् श्री कृष्ण काम को धन्य करते हैं, काम को धन्य करते हुए प्रतीत होते हैं कि यह तो बड़े भोगी हैं पर वस्तुतः इतना होते हुए भी वे निरन्तर समस्त जीवों को धन्य करते हैं। चाहे श्री राम के संदर्भ में देखें, चाहे भगवान कृष्ण के संबंध में देखें, दोनों एक ही तो हैं। वह जो ग्रंथ अभी प्रकाशित हुआ पिछले वर्षों में मैं देखता रहा—श्रीमद्भागवत और रामायण के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन तो भगवान् राम और भगवान कृष्ण की लीलाओं में भिन्नता प्रतीत होती है। पर एक ही ब्रह्म दोनों रूपों में आपको लीला करता हुआ दिखाई देगा और उस ब्रह्म की लीला के भी वही सूत्र हैं— "राम" शब्द का अर्थ क्या है—राम शब्द का अर्थ यही है कि जहां पर जिनमें योगी रमण करते है। बस राम कौन हैं। जो योगियों के हृदय में रमण करता है या योगी जिसके हृदय में रमण करते हैं। रति का संबंध रमण से होता है। जब तक संसार में रमण हो रहा है तब तक उसके साथ अनेक समस्याएँ है। पर संसार के साथ जब भगवान् में, राम मे रमण हो जाये तो राम में रमण होने के पश्चात् ये योगी भी यही अनुभव करते हैं—अरे आप सब कुछ छोड़ करके वहां चले गये? बोले राम जिनको कहते हैं, उनसे रमण करने के लिए।

श्याम सुंदर की जो यह लीला है, वहां पर वे महारास में रमण करते हुए दिखाई देते हैं। पर वह वस्तुतः मानो आत्मा और परमात्मा की एकता का दिव्य रस है। उस रस को ही भगवान् कृष्ण अपनी लीला के द्वारा प्रकट कर देते हैं। कितने उदार हैं, यहां तो गेपियों को धन्य बनाते ही हैं। पर जब आप मथुरा में पहुंचते हैं तो क्या होता है। भगवान् राम और भगवान् कृष्ण—भगवान् राम गये जनकपुर में और भगवान् कृष्ण गये मथुरा में—पर कहां कंस और कहां जनक? जनक विदेह हैं कंस जैसा घोर देहवादी कोई नहीं। यह जो जनक जी का निमंत्रण था वह भी धनुष यज्ञ के लिए था और श्रीमद्भागवत में आता है कंस ने भी धनुष यज्ञ का ही निमंत्रण कह करके बुलाया था। धनुष दोनों स्थानों पर था पर अंतर क्या है? जनक चाहते हैं धनुष टूट जाये और कंस चाहता है लोग धनुष

की पूजा करें, फूल चढ़ायें, छूने की बात नहीं, बस दूर से प्रणाम करें—यह एक सांकेतिक भाषा है—यह जो धनुष रूपी अभिमान है-ज्ञानी चाहता है धनुष-अभिमान टूटे और देह का अभिमानी जो कंस है, वह चाहता है नहीं हमारे अभिमान की लोग पूजा करें, अभिमान न टूटने पाये। उसको एक ही चिंता है और भगवान् कृष्ण थोड़ा अधिक, या यों कहें भगवान् राम, श्री कृष्ण के रुप में थोड़ा अधिक प्रगल्भ दिखाई देते हैं। और इसका अर्थ क्या है कि धनुष यज्ञ में पहुंच गये और पहुंच गये तो कहा कि जरा पास से देख लें तो जितने रक्षक थे वे बिगड़ खड़े हुए कि यह दूर से देखने के लिए है कि पास जाने के लिए तो ढकेल दिया। इस विषय में वह चेष्टा करके ढकेल देते हैं और धनुष के पास जाते हैं। जनक ने चाहा और धनुष टूटा और यहां कंस ने नहीं चाहा पर गये धनुष के पास, उठा के तोड़ भी दिया। सारे बिगड़ खड़े हुए कंस के रक्षक सैनिक, यह क्या अनर्थ हुआ और तब भगवान ने धनुष के टुकड़ों से ही सबको मार करके ठिकाने पहुंचा दिया। यह क्या है—अभिमान की ही पूजा, यही संसार के देहाभिमानियों का स्वभाव है। पर भगवान् कहते हैं कि वह तो टूटेगा ही। तुम सीधे नहीं तोड़ोगे तो मैं तोड़ दूंगा और फिर तुम्हारी पिटाई होगी। उसी तुम्हारे अभिमान से। व्यक्ति का अभिमान ही व्यक्ति को इतना कष्ट देता है इसका संकेत मिलता है जिस प्रकार से भगवान् ही व्यक्ति को इतना कष्ट देता है इसका संकेत मिलता है जिस प्रकार से भगवान् इतने उदार हैं कि जो धोबी से उन्होंने कह दिया, बड़े अच्छे कपड़े हैं मुझे दे दो भाई।'' बिगड़ खड़ा हुआ—तुम्हारा यह दुस्साहस! जंगल में रहने वाले महाराज कंस के कपड़े पहनने की सोच रहे हो। भगवान् राम की तरह वह धोबी को क्षमा नहीं करते है। वह तो धोबी के सीधे प्राण ले लेते हैं नष्ट कर देते हैं। ये सब आध्यात्मिक संकेत हैं। इसको जाति-वाति के संदर्भ में देखने की आवश्यकता नहीं है और वही भगवान् जब आगे जा रहे हैं तो कुब्जा, जो मुख से सुंदर है लेकिन जिसके पीछे टेढ़ापन है, शरीर में और वह अंगराग की कला में बड़ी निपुण है। प्राचीन काल में सुगंध के लिए जितने भी साधन होते हैं, उनको अंगराग कहा जाता था और उसको शरीर में लगाते थे सुगंध और स्वास्थ्य के लिए।

कंस की वह दासी थी। कंस के लिए नित्य अंगराग लेकर के जाती थी।

भगवान् कृष्ण ने उसको देखते ही कहा—सुदंरी, क्या यह अंगराग तुम मुझे दे सकती हो? और वे धन्य हुई। उसने कहा कि आपसे बढ़ करके इसका कौन पात्र हो सकता है। भगवान् कृष्ण ने तुरंत अंगराग उठा लिया और उसके चरण पर अपना चरण रख करके जो उसकी ठुड्डी पकड़ उठा दिया तो उसका टेढ़ापन दूर हो गया-कथा का अभिप्राय यह है। माने अंगराग तो सबके पास है शरीरवाला अंगराग न हो तो मन में जो राग है वह तो भरा पड़ा है। और उस मन के राग से हम निरंतर कंस को सजाते रहते हैं। अपने अभिमान पर ही, अपने को प्रिय कहे जाने पर ही प्रयोग करते हैं। इतने उदार हैं श्याम सुंदर। इस तरह से भगवान् कृष्ण ऐसा दिखाई देता है कि उनकी लीलाओं में मर्यादा का वही रूप नहीं है जो भगवान् राम के चरित्र में है। पर उनको योगेश्वर कहने का अभिप्राय यह है कि सब कुछ दृश्य प्रपंच में रहते हुए भी जीव को जो परम धन्यता और पूर्णता प्रदान करते हैं। वही श्री राम जिन्होंने श्री राम के रूप में अवतार लिया वही द्वापर युग में श्री कृष्ण के रूप में उस युग के जीवों को धन्य बनाते हैं। तो आज घड़ी आगे बढ़ गयी। मैं चिंता करूंगा एक क्षण के लिए गोरे लाल जी की समय के बड़े पाबंद हैं। पर मैंने तो पहले ही कह दिया कि मैं उसको मानता-बानता नहीं हूं कथा के अंत के लिए क्या समय होता है और अभी तो आधी रात बाकी है। भई, आज तो आप जाइये भी तो कम से कम आधी रात तक जरूर जागिएगा और कथा में बात की गयी है उस पर विचार कीजिएगा और बन सके तो ध्यान कीजिएगा और ध्यान करके अनुभव करिए कि अरे हम तो कंस के कारागार में बंदी हैं, पराधीन हैं हम कुछ करने में स्वतंत्र नहीं हैं, प्रभु आप ही कृपा करके इस कारागार से हमें मुक्त करें। कारागार में प्रकाश करें, मुझे विश्वास है कि यह ध्यान जन्माष्टमी का आनन्द आप सबको देगा। आज इतना, इसके बाद की चर्चा कल।

बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।

।। श्रीराम शरणं मम।।

।। श्रीराम शरणं मम।।

पंचम

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहीं दूजा।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक विहंगा।।
(७-५६-५)

महानुभावो, भक्तिमति देवियो,

भगवान् शंकर ने भगवती उमा को पुरातन संस्मरण सुनाते हुए यह बताया कि जब तुमने दक्ष के यज्ञ में शरीर का परित्याग कर दिया, तो तुम्हारे वियोग में मैं भ्रमण करता हुआ मुनियों को कहीं उपदेश देता था, भगवान् के गुणों का वर्णन करता था और इस तरह से भ्रमण करते हुए मैं सुमेरु पर्वत पर गया और मुझे वहां के दृश्य देखने को मिला। बड़ा ही अनोखा दृश्य था। समेरु पर्वत के चार शिखरों पर चार वृक्ष लगे हुए थे और उन वृक्षों के नीचे भुशुंडि जी के द्वारा चार प्रकार की साधनाएं सम्पन्न होती थीं। भुशण्डि जी पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ कर ध्यान करते हैं, पाकरी वृक्ष के नीचे बैठ करके जप यज्ञ सम्पन्न करते हैं, आम्र वृक्ष के नीचे बैठकर मानस पूजा करते हैं और बट वृक्ष के नीचे बैठ करके कथा सुनाते है। भगवान् शंकर ने कहा कि उस दृश्य को देख करके मुझे अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति हुई। विविध प्रकार के पक्षी कथा श्रवण करते हुए दिखाई दिए। मैं आश्चर्यचकित हुआ जहां कौआ बोल रहा हो और हंस सुन रहे हों, तब मेरे हृदय में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी यह कथा सुनूं। मैं ने भी हंस का वेश बना लिया और उन हंसों के बीच में जा करके बैठ गया और भुशुण्डि जी के द्वारा जो राम कथा सुनाई गयी उस कथा को मैंने सुना और फिर बिना मिले ही मन ही मन उनके प्रति अपना स्नेह भाव अर्पित करते हुए कैलाश चला गया। तो भुशुण्डि जी के चरित्र में ये जो चार शिखर हैं और चार शिखरों पर उनके द्वारा जो चार साधनाएं सम्पन्न हो रही हैं, उनका तात्पर्य क्या है और अगर सरल भाषा में कहें तो जैसे बाहर जब प्रदूषण फैलता है, प्रकृति में जब नाना प्रकार की वस्तुएं

विकृत रूप में अपनी गंध फैलाती हैं, तो आज उस विपत्ति का अनुभव भौतिक वैज्ञानिक भी करते हुए चिंतित दिखाई देते हैं और उस पर्यावरण में शुद्धि लाने की एक प्रक्रिया है, वनों के लगाये जाने की प्रक्रिया। तो बाहर भी आवश्यक है कि वन अधिक से अधिक लगाये जायें, वृक्ष अधिक से अधिक लगाये जाएं पर उतना ही अधिक और उससे भी आवश्यक यह है कि बाहर के प्रदूषण के साथ-साथ जो समाज में व्यक्ति का हृदय प्रदूषित हो राह है उसमें जिस प्रकार की विकृतियों का विस्तार हो रहा है उसका निवारण कैसे हो और वहां भी सूत्र यही है कि वृक्ष लगाइये और उन वृक्षों के माध्यम से साधना के जिस रूप को उपस्थित किया गया आज भी हमारे लिए वह परम कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है। तो पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान की बात कही जाती रही। अब तो बहुत थोड़े ही दिन शेष रह गये थोड़े दिन क्या आज, कल और परसों। तो भला क्या यह प्रसंग पूरा हो सकता है? मैं चेष्टा यही करूंगा कि संक्षेप में कुछ न कुछ बातें उस संदर्भ में आ जायें। दूसरा वृक्ष पाकरी का है और पाकरी के नीचे बैठकर कागभुशुण्डि जप यज्ञ करते हैं। जप शब्द से आप परिचित हैं अधिकांश व्यक्ति जानते हैं कि जब, कोई व्यक्ति मंत्र की आवृत्ति करता है उसको जप करते हैं अंगुली पर, माला पर, मन में इस तरह से जप की प्रक्रिया आप बहुत से व्यक्तियों के जीवन में देखेंगे पर यहां जप के साथ एक साथ एक शब्द और जोड़ा गया है और वह शब्द है-

जाप जग्य पाकरि तर करई।। (७-५६-५)

भुशुण्डि पाकरी वृक्ष के नीचे जप यज्ञ करते हैं। जप यज्ञ का तात्पर्य क्या है? जप यज्ञ के माध्यम से भगवान् शंकर किस दिशा में संकेत कर रहे हैं, यहां पर आपका ध्यान मैं भगवत् गीता की ओर भी आकृष्ट करना चाहूंगा। भगवान् कृष्ण ने गीता में सूत्रों के रूप में यज्ञ की महिमा का वर्णन किया और उन्होंने कहा कि जब प्रजापति ब्रह्मा संसार का निर्माण किया और तब उन्होंने मानव जाति को उपदेश देते हुए कहा-कि तुम यज्ञ के द्वारा देवताओं की आराधना करो और देवता बदले में तुम्हारी इच्छा और आकांक्षाओं को पूर्ण करें। यह जप यज्ञ निरंतर चलते

ही रहना चाहिए और इस यज्ञ से जब समाज और व्यक्ति जुड़ा रहता है उसकी स्थिति बड़ी उदात्त होती है, बड़ी उच्चकोटि की होती है। भगवान् बार-बार इसकी ओर संकेत करते हैं और उसको सरल भाषा में कहें तो यों कह सकते हैं, मनुष्य कर्म करने के लिए तो बाध्य है, पर मनुष्य जितने कर्म करता है उसके मूल में कोई न कोई कामना होती है, कोई न कोई इच्छा होती है। अगर मनुष्य के मन में कामना न हो, इच्छा न हो तो कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य कामनाओं से भरा हुआ है, कामनाओं से मुक्त होना या कामनाओं से उठ पान तो बिरले व्यक्ति के लिए ही संभव है। अब मनुष्य यदि कामनाओं से प्रेरित होकर कर्म करता है तो एक बड़ी समस्या आती है। कर्म करता हुआ व्यक्ति यदि अपने ही स्वार्थ, अपने ही लाभ की चिंता करे तो उसका स्वाभाविक परिणाम होगा कि दूसरों से उसकी टकराहट होगी। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहे कि मेरी इच्छा पूरी हो, मेरी कामना पूरी हो और वह साथ-साथ यह भी मान लेता है, करता भी है, दूसरों की इच्छा की पूर्ति में बाधा डाल करके भी हम अपनी इच्छा पूर्ण करें और उसका स्वाभाविक परिणाम होता है कि समाज में मात्सर्य, ईर्ष्या, राग, द्वेष, संघर्ष की वृत्ति बढ़ती जाती है। प्रत्येक युग में और आज के युग में और उसका समाधान भगवान् यह देते हैं कि अगर केवल व्यक्ति स्वार्थ के लिए कर्म करेगा तो स्वयं दूसरों के लिए और अपने लिए अंततोगत्वा दुख की ही सृष्टि करेगा। वह कभी सुखी और शांत नहीं रह सकता है। इसीलिए यज्ञ का एक सरल अर्थ है आदान-प्रदान की भावना। केवल लेना ही नहीं, देना और सही-सही अर्थों में जब यह आदान और प्रदान लेने और देने की प्रक्रिया व्यक्ति और समाज के जीवन में भरी रहती है तो संतुलन रहता है, समाज में व्यक्ति में, परिवार में शांति रहती है। मनुष्य की यह बड़ी विचित्र प्रवृत्ति है कि वह लेने पर विश्वास करता है। लेने से न मिले तो छीनने पर विश्वास करता है। लेकिन देने की आकांक्षा उसमें नहीं है तो यह तो आदान प्रदान की वृत्ति है, भगवान् कहते हैं इसको चाहिए कि व्यक्ति स्वीकार करे और जितना कर्म करेगा और इस रूप में करेगा तो वह उसका कर्म जो है यज्ञ कर्म हो जायेगा और यज्ञ कर्म का परिणाम यह

होगा कि जब यज्ञ के माध्यम से कर्म किया जायेगा तो कर्म सबके कल्याण के लिए होगा और बंधन का हेतु नहीं बनेगा। केवल स्वार्थ के लिए होगा तो बंधन का हेतु बनेगा। भगवान् यही कहते हैं कि व्यक्ति को चाहिए कि वह यज्ञ करे जिसका परिणाम कल्याणकारी होता है और नहीं तो—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः

(गीता ३-९)

फिर वहां तो भगवान् ने एक वाक्य कहा और उसका श्री गणेश उन्होंने कामना की पूर्ति से क्रिया पर कामना की पूर्ति जो है वह पहली कक्षा है अंतिम कक्षा नहीं। जैसे एक विद्यार्थी को पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं तो उसके मन में जो लालसाएं होती हैं, मिष्टान्न की, खिलौनों की, वस्तुओं की उस प्रकार का लोभ देते हैं और लोभ दे करके उसको विद्या प्राप्ति के लिए विद्यालय में जाने की प्रेरणा देते हैं और उसके पश्चात् जब विद्यार्थी एक बार प्रलोभन से विद्यालय में जाता है तो धीरे-धीरे प्रलोभन की वृत्ति कम हो करके पढ़ने की वृत्ति उसके हृदय में उदित हो जाती है। मानों यज्ञ का पहला तात्पर्य यही है कि कामना की पूर्ति के लिए ही एक बार श्रेष्ठ कर्म, यज्ञ कर्म जीवन में स्वीकार तो करें। भगवान् से कोई पूछ सकता है कि यज्ञ में आहुति दी जाती है और आहुति में अन्न डाला जाता है, तो जो अन्न डाला गया वह भस्म हो गया-खेत में हम अन्न डालते हैं तो हमें वह मिलता है। पर भगवान् यह कहते हैं कि नहीं जब आहुति को आप अग्नि में डालेंगे तो उसके द्वारा बादल बनेंगे, बादल जल की वर्षा करेंगे, वर्षा करने से अन्न उपजेगा अब यह एक परिभाषा है। इस परिभाषा के मूल का अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति खेती करता है तो वह चाहे उसमें अच्छा से अच्छा बीज डाल दे, लेकिन अगर पानी की वर्षा न हो तो उसका परिणाम यही होगा कि जो डाला गया है वह भी समाप्त हो जायेगा। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति को यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवन में जितनी भी वस्तुएं पाता है, जो भी सफलताएं पाता है वे केवल उसे पुरुषार्थ का ही परिणाम नहीं हैं। उस पुरुषार्थ के साथ-साथ प्रकृति की कृपा, इंद्र की कृपा, ईश्वर की कृपा इन शब्दों के

माध्यम से आप इसका अनुभव कर सकते हैं कि हम निरन्तर उस सहयोग के बिना कभी भी पुरुषार्थ करते हुए भी सफल नहीं होंगे।

भगवान् से अगर कोई यह निवेदन करे, "महाराज यह तो विचित्र सी बात है, जब हम देखते हैं कि अन्न को खेत में डाला गया अंकुर फूटा और खेत होती है। पर यज्ञ के बाद बादल बनेंगे, वर्षा होगी और वर्षा से अन्न बढ़ेगा ये तो केवल विश्वास की बात हुई कि यह विश्वास कर लिया कि यज्ञ किया तो बादल बनेंगे, बादल बनेंगे तो वर्षा होगी। तो कई लोग कह दिया करते हैं कि क्या जहां पर यज्ञ नहीं होते वहां वर्षा नहीं होती है क्या-तो बात तो तर्कसंगत लगती है। पर उसके द्वारा भगवान् जो बताना चाहते हैं वह महत्व की बात है और वह सूत्र क्या है? भई, जीवन में कुछ तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं उसे स्वीकार करते हैं और करना चाहिये पर जिसे आस्तिकता कहते हैं आध्यात्मिकता कहते हैं उसके मूल में विश्वास की आवश्यकता भी है। जो आपको दिखाई देता है उतना ही सत्य नहीं है इस दिखाई देने वाले सत्य के साथ-साथ ऐसी अनेक वस्तुएं हैं जो हमें दृष्टिगोचर नहीं होती और तब हमारा कर्तव्य है कि हम अपने पुरातन ऋषियों पर, मुनियों पर, महापुरुषों पर श्रद्धा करके इसे मान लें कि हां ऐसा होता है। और उस होने के पीछे जो सूत्र है वह बड़े महत्व का है-महत्व का यह है कि अच्छा भई, हम सीधे बस अन्न खेत में डालें और उपजा लें, बादल बने इससे क्या-नहीं नहीं अंतर है- जब आप खेत में अन्न डालेंगे तो कहेंगे मेंरा यह खेत है, अपने खेत में जो अन्न डालेंगे और बीज डालने के बाद परिश्रम करने के बाद जब अन्न उपजेगा तो आप कहेंगे मेरे खेत से उपजा हुआ यह अन्न मेरा है, इस पर मेरा अधिकार है। पर जब भगवान् कहते हैं कि यज्ञ से बादल बनते हैं और बादल जल की वर्षा करते हैं तो जो यज्ञ में आहुति डालता है उसकी के खेत पर बादल बरसते हैं कि सबके खेत पर बरसते हैं तो उसका उत्तर यह है कि बीज आप अपने खेत में डालेगे पर बादल जब बरसेगा तो आपके खेत में नहीं, दूसरों के खेत में भी बरसेगा और सीधा सा अभिप्राय यह है कि कर्म करते समय केवल इस स्वार्थ में संलग्न न हो जायें कि बस वस्तु पर मेंरा अधिकार हो जाय। तो अब इसके मूल में मानो यह जो आहुति के रूप में अन्न की आहुति, या और

भी है? उस भगवान् ने फिर यज्ञ के अर्थों का विस्तार किया। आप गीता में अनेक प्रसंगों में पावेंगे भगवान् के द्वारा यह प्रतिपादन किया गया कि इस तरह से अनेक यज्ञ हैं और प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नही है कि इसी प्रकार का यज्ञ करें। वह अपने जीवन में जिस यज्ञ को उपयोग समझे उसे करें। अगर वह उस यज्ञ के द्वारा कर्म करेगा तो अपने लिए और समाज के लिए कल्याणकारी होगा। पर भगवान् से जब यह प्रश्न किया गया कि इन यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कौन है तो भगवान् ने इसके दो उत्तर दिये। एक तो उन्होंने कहा कि समस्त यज्ञों में ज्ञान यज्ञ, सर्वश्रेष्ठ है। तो ज्ञान यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ क्यों है इसका एक अंतरंग सूत्र है। वह यह है कि आप खेत में अन्न डालते हैं तो उपजता है और जब अग्नि में अन्न डालते हैं तो भस्म हो गया। उसका अभिप्राय है कि ज्ञानी यह जानता है कि अगर हम कामना के द्वारा, परिश्रमपूर्वक कामना के बीज डालेंगे तो कामना का फल हमें मिलेगा। पर एक बड़ी समस्या है। संसार में साधारणतया तो दिखाई देता है कि एक वृक्ष में एक प्रकार का फल होता है पर आपने पढ़ा होगा बड़ा गंभीर प्रसंग है। जब भगवान् सिंहासन पर विराजमान हुए तो वेद भगवान् की स्तुति करते हैं और वेदों ने भगवान् की स्तुति करते हुए संसार बृक्ष का वर्णन किया। उसमें एक अनोखी बात की गयी और वह यह हैं-

अव्यक्त मूल

वृक्ष की जो जड़ होती है वह भीतर है। आप भीतर जायें तो मूल आपको दिखाई देगा। पर उन्होंने कहा कि यह जो वृक्ष है इसमें विलक्षणता यह है कि-

अव्यक्त मूल

इसका मूल जो है वो व्यक्त न हो करके अव्यक्त मूल है और वृक्ष जब लगाते हैं तो किसी विशेष समय में लगाते हैं पर यह वृक्ष

अव्यक्तमूलमनादि तरु, त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंधा साखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने।।

(६-१२ग-छंद ५)

विधि इस वृक्ष में जो फल लगाता है वो कैसा है, बोले-

फल जुगल विधि कटु मधुर

संसार में साधारण वृक्षों में एक ही प्रकार का फल लगता है पर वे इस वृक्ष का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि हे प्रभु, यह जो आपने विलक्षण संसार वृक्ष के रूप में अपने को प्रकट किया है, उसकी विलक्षणता है कि-

फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे।।

(६-१२ग-छंद ५)

"हे प्रभु यह संसार विटप आपका स्वरूप है और आपको मैं प्रणाम करता हूं।" इसकी व्याख्या मैं विस्तार से नहीं करूंगा। बुद्धिमान श्रोताओं को भी यह न लगने लगे कि सिर के ऊपर से निकल गया। तो इसका तात्पर्य बस इतना ही है कि जीवन में दिखाई भी देता है कि कर्म करके सुख मिलेगा कि दुख मिलेगा और स्पष्ट है कि वे तो दोनों मिल रहे हैं। जहां सुख मिल रहा है वहां दुख भी मिल रहा है। सुख-दुख एक साथ ही व्यक्ति के जीवन में। इसका अभिप्राय है कि प्रयत्न किया सफलता मिली तो सुख हो गया, पड़ोसी को देखा कि अधिक सफल हो गया तो दुख हो गया। कैसी विचित्र बात है? दुख उसका अपने कष्ट से नहीं, सामने वाले के सुख से हैं इससे बढ़ करके व्यक्ति की विचित्र दशा क्या होगी कि वह अपने अभाव से जितना दुखी होता है वह तो समझ में आता है, पर अभाव के बाद जब उसकी इच्छा पूरी हो गई तो उसको सुखी होना चाहिए। बोले नहीं-तब वह कहता है कि अरे मेरे पास तो केवल यह है और हमारे पड़ोसी के पास तो न जाने क्या-क्या है कितना है और वह बेचारा दुखी हो रहा है। तो हमारी इस कामना के द्वारा जिस फल की उपलब्धि होती है वह मधुर और कटु दोनों है और उस मधुर-कटु से बच पाना व्यक्ति के लिए संभव नहीं हैं। तो अब मनुष्य जब भी कर्म करेगा तो पाप और पुण्य दोनों मिश्रित हैं और वह कर्म जो है निरंतर चलता ही जायेगा। इसका उपाय क्या है? उपाय यही है कि जो यज्ञ में, अग्नि में आहुति दी जाती है, उसमें बहुधा तीन वस्तुओं को मिलाया जाता है- एक है चावल, दूसरा है यव, और तीसरा है तिल और आपने देखा कि तीनों के रंग अलग-अलग हैं, चावल का रंग यदि श्वेत है तो तिल का रंग काला

है और यव का रंग पीला है। तीनों रंग के अन्न जब आप सामने रखते हैं तो अलग-अलग दिखाई देते हैं। पर तीनों को आप जिस समय घी में या किसी वस्तु में लपेट करके आहुति के रूप में डाल देते हैं तो तीनों भस्म हो गये और भस्म होने के बाद कोई बता सकता है कि ये तिल है, चावल है और यव है।

मानों संकेत यह है कि तीन प्रकार के कर्म जो हैं हमारे आपके जीवन में ही तो हैं। श्वेत माने जो हमारा कर्म सत्वमूलक है वह मानों चावल की तरह है, जो हमारा कर्म रजोमूल है वह मानों यव के समान पीला है और जो हमारा कर्म तमोमय है वह तिल के समान काला है। तो तीनों को अगर खेत में डालेंगे तो तिल में तिल, यव में यव या धान में धान उपजेगा। जब अग्नि में आप उसे डाल देंगे तो भस्म हो करके एक रंग होता है- तो इसका अभिप्राय ये है कि कर्म को जिस समय हम आहुति के रूप में डाल देते हैं उस समय सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण तीनों का विनाश हो करके वह शुद्ध भस्म बन गया। हमारे यहां परंपरा है, बड़ी अनोखी बात है, यज्ञ में आहुति देने के बाद अंत में जो आचार्य होते हैं, पंडित होते हैं वे भस्म ले करके यजमान के माथें पर लगाते हैं और उसका नाम भी आपने सुना होगा—कहते हैं विभूति-तो विभूति तो ऐश्वर्य को कहते हैं। किसी के पास बड़ी सम्पत्ति हो तो कहेंगे इनके पास तो बड़ी विभूति है। पर नहीं-नहीं वह जो सम्पत्ति दिखाई देती है वही विभूति है और उसको धारण करके व्यक्ति जितना धन्य होगा उतना वह उस सांसारिक विभूति मात्र से धन्य नहीं होगा। उसका अभिप्राय यह है कि अगर हमारा ऐश्वर्य केवल स्वार्थ के लिए है तो और बात है और भस्म बन करके अगर वह संसार के लोग कल्याण से जुट गया तो सच्ची विभूति तो वही है। इसलिए भगवान् शंकर भी अपने शरीर में-

सुकृति संभु तन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।

(१-३)

ऐसा वर्णन किया गया है। इस तरह से यज्ञ की व्याख्या क्रमश: बदलती चली जाती है। भगवान् ने ये कहा कि समस्त यज्ञों में द्रव्य या ये जो आहुति देने वाले यज्ञ हैं उन यज्ञों में श्री सर्वश्रेष्ठ ज्ञान यज्ञ है। मानो

जब व्यक्ति ज्ञानाग्नि में, अपने अन्त:करण की समस्त वृत्तियों को आहुति के रूप में अर्पित कर देता है, तो उसके जीवन में कर्म है-न सतोगुणमय है, न रजोमय है न तमोमय है। अपितु वह शुद्ध-भगवान शिव के स्वरूप में, भगवान् शिव के समान, ज्ञानस्वरूप बन करके वह परिपूर्णता को प्राप्त कर लेता है। एक ओर तो भगवान् कृष्ण ने यह कहा कि सब यज्ञों में ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है, पर भगवान् ने एक दूसरी बात भी कही जहां उन्होंने वर्णन किया जिसको आपने पढ़ा होगा-उसको कहते हैं ''विभूतियोग''। विभूतियोग में भगवान् ने बताया पढ़ा होगा-उसको कहते हैं ''विभूतियोग''। बिभूतियोग में भगवान् ने बताया है कि संसार में जो वस्तुएं है उनमें जो श्रेष्ठतम है भगवान् कहते है वह मैं ही हूं। तो उन्होंने सब वस्तुएं गिनाई। उसमें भगवान् ने कहा-यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूं। पर भगवान् ने अपने आप को ज्ञान यज्ञ ने कह करके उसे विभूति योग कहा। भगवान् ने जो वाक्य कहा-आप में जो गीता को पढ़ते होंगे वे इसे जानते होंगे कि उन्होंने यह कहा कि-

यज्ञानां जपयज्ञोस्मि

(श्रीमद्भगवत्गीता १०-२५)

यज्ञों में जप यज्ञ मैं ही हूं। तो अब दो सूत्र हुए या तो ज्ञानयज्ञ सर्वश्रेष्ठ है या जप यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। श्री रामचरित मानस में समस्त यज्ञों का तुलानात्मक वर्णन किया गया। श्रीमद्भगवत्गीता में तो सूत्र है। पर उसको प्रत्यक्ष दृष्टान्त के द्वारा, प्रकट करने का कार्य श्री रामचरित मानस में, रामायण में, किया गया। इसलिए कई लोग मुझसे पूछते हैं कि आपको गीता की सबसे अच्छी टीका कौन लगती है, तो मैं यह कहता हूं कि गीता की सबसे अछची टीका तो रामायण है। अगर गीता के श्लोकों को समझना है तो आप रामायण के द्वारा जितना समझ सकते हैं और किसी टीका के द्वारा नहीं। तब यह जो यज्ञों का वर्णन किया गया रामायण में, उन यज्ञों को प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग पात्रों के द्वारा दिखाया गया है। इस संदर्भ में आप चार पात्रों की ओर दृष्टि डालें और वे चार पात्र हैं महाराज दशरथ, महामुनि विश्वामित्र, राजर्षि जनक और श्री भरत-ये मानस में चार महान पात्र हैं और चारों पात्रों के जीवन

में चार प्रकार के यज्ञों का वर्णन आपको मिलेगा। प्रारम्भ में आप देखें- महाराज श्री दशरथ ने जो यज्ञ किया उसके मूल में एक इच्छा थी, एक कामना थी और वह कामना थी पुत्र पाने की। सब कुछ था पर पुत्र का अभाव था और इसका अभिप्राय है कि संसार में सर्वत्र ये दिखाई देता है कि सब कुछ होने पर कोई न कोई ऐसी वस्तु है कि जिसका अभाव व्यक्ति को प्रतीत होता है, लगता है और वह कहता है कि सब कुछ है पर अमुक वस्तु नहीं है। तो महाराज दशरथ को भी ऐसा लगा कि इतना बड़ा ऐश्वर्य है, धर्म है, दान है, पुण्य है, यश है, पर पुत्र नहीं है और तब वह पुत्र की कामना की पूर्ति कैसे हो इसके लिए गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं। गुरु वशिष्ठ बड़े ही महान् ज्ञानी हैं। एक तो यह था कि वे उपदेश दे सकते थे। श्रीमद्भागवत में यह वर्णन आता है, ब्राह्मण देवता ये जो आत्मदेव थे। नाम तो आत्मदेव और अन्त:करण में शरीर देव, शरीर पुत्र की आकांक्षा, माने शरीर के संदर्भ से ही, तो पुत्र की इच्छा होती है और यह आकांक्षा होती है कि भई, चलो शरीर भले ही मिट जाये पर हमारे शरीर से जिस बेटे का जन्म हुआ है वह हमारा नाम आगे चलायेगा। वह उस रूप में आगे बना रहेगा।

शास्त्रों ने जो पुत्र शब्द का अर्थ बताया वह बड़ा सांकेतिक है-पुत्र शब्द की व्याख्या संस्कृत में की गई कि अनेक नरकों में से एक नरक जो है वह पुण ऐसा नरक है तो पुण नाम के नरक से जो बचाता है वह पुत्र है। श्राद्ध करके, पिण्डदान दे करके, पिता कि प्रति सद्भाव के माध्यम से। जब संतान का जन्म होता है तो उस व्यक्ति को पुण नामक नरक में नहीं जाना पड़ता। ये नहीं लिखा कि किसी नरक में नहीं जाना पड़ता। एक ही नरक से छुट्टी बताई गई और नरक तो विद्यमान रहेंगे ही। वह मरने के बाद पुण नाम नरक से छुड़ावेगा उसके स्थान पर यह भी तो डर है कि इस जीवन को ही नरक न बना दे। ऐसे में भी तो पुत्र हो जाते हैं कि मरने के बाद पुण नाम के नरक से तो बचायेंगे वह तो देखने की बात हुई पर अभी जीवन ही नरक बन गया, ऐसा भी तो हो सकता है। आत्मदेव को महात्मा ने यही समझाने की चेष्टा की कि क्या तुम पुत्र के पीछे पड़े हुए हो, क्या पुत्र हो जाना ही सब कुछ है क्या? उन्होंने विवेक का वैराग्य का

उपदेश दिया पर वस्तुतः उपदेश उन्हें प्रिय नहीं लगा। मनुष्य की अपने शरीर के प्रति इतनी महत्वबुद्धि है कि वह पुत्र के रूप में उसे आगे चाहता है कि हमें जीवित रहें। इसलिए वाक्य भी कहा गया—

आत्मा वैजायते पुत्र

यह बात अपने स्थान पर है। पर यही तो सब कुछ नहीं है। आगे चल करके क्रमशः उसे स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी और आपने सुना होगा न कि कई बार तो ऐसा है कि पुत्र ने सदा कष्ट ही दिया पर बाद में यह लगा कि लोग कहें तो मैंने पिता के लिए कितना बड़ा भोज दिया कितना बड़ा श्राद्ध किया कितना बड़ा समारोह-तो कबीर का व्यंग आपने सुना होगा। किसी सज्जन ने कहा कि अरे इन्होंने तो (किसी का नाम ले करके) कि उसने तो अपने पिता के लिए लाखों रूपये खर्च कर दिए, उनकी अस्थियों को ले जा करके गंगा में विसर्जित किया, पुण्य किया, दान दिया। कबीर तो अक्खड़ भाषा में बोलने के आदी थे। उन्होंने कहा, ठीक ही तो है अरे-

जीयत बाप सो दंगमदंगा। (और) मरे हाड़ पहुंचावै गंगा।।

जब तक जीवित रहा तब तक दंगा करते रहे, मरने के बाद हड्डी को गंगा पहुंचा रहे हैं। यह बड़ा विचित्र विरोधाभास व्यक्ति के जीवन में दिखाई देता है। किन्तु शास्त्रों की पद्धति बड़ी मनोवैज्ञानिक है। वह उपदेश दिया तो उनको अच्छा नहीं लगा और फिर क्या हुआ। आप सब लोगों ने श्रीमद्भागवत का पाठ सुना होगा। उसके यहां बड़ा दुखदायी परिणाम, किस तरह हुआ यह भी आपके सामने आया है। इसलिए प्रारंभ में दोनों बात कही गयी। मनुष्य के जीवन में तीन इच्छाएं पायी जाती हैं पुत्र-की इच्छा, धन की इच्छा और यश की इच्छा। ये तीनों इच्छाएं हर मनुष्य के जीवन में होनी चाहिए। पर उसके साथ एक उल्टी बात भी कही गयी कि ये तीनों इच्छाएँ अगर मनुष्य को पुरुषार्थी बनाती हैं तो यही तीनों इच्छाएं मनुष्य की बुद्धि को अपवित्र भी बना देती हैं—

सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीली।।

(७-७०-६)

कौन ऐसा व्यक्ति है जिसकी बुद्धि को पुत्र की इच्छा ने धन की इच्छा

ने, यश की इच्छा ने मलिन न बना दिया हो। बड़ा विचित्र लगता है— एक ओर शास्त्र कहते हैं मनुष्य को धन प्राप्ति के लिए, अर्थ के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में पुत्र की प्राप्ति उसका कर्तव्य है। शास्त्र कहते हैं यश जो है वह तो सबसे बड़ी वस्तु है। बस दोनों बातें कही गयी हैं-इसका अर्थ है तीनों इच्छाएं स्वाभाविक हैं। अच्छा है कि मनुष्य को पुरुषार्थ की प्रेरणा तो मिलेगी। लेकिन बुरा तब बन जायेगा जब मनुष्य पुत्र की इच्छा से पुत्र को पा जाता है। तब उसे जीवन में केवल यही स्वार्थ नहीं रह गया कि अरे भई खाओं, पियो और मौज करो आगे की क्या चिंता है। मानों वह समाज में पुत्र को दे करके कर्म और पुरुषार्थ की दिशा में ले जा रहा है। पर बुद्धि तब मलिन हो जायेगी जब कि उसे चिन्ता हो जाये कि मेरा पुत्र उन्नति करे और दूसरे के पुत्र की अवनति हो। अब उस पुत्र की उन्नति के लिए वह किस सीमा तक चला जाए। क्या-क्या करे इसका कोई ठिकाना नहीं है। तो पुत्र की इच्छा के दोनों पक्ष हैं और यही धन की इच्छा है। धन की इच्छा में मनुष्य धन प्राप्त करके उसका सदुपयोग करें, धन के द्वारा वह स्वयं समाज के निर्माण में सहयोगी बने, यह कल्याणकारी है। पर जब मनुष्य धन का अपव्यय करके केवल अपनी वासनाओं की पूर्ति करे या केवल उसके द्वारा प्रदर्शन मात्र और दूसरों को पीड़ा पहुचाने की ही चेष्टा करे तो धन की वृत्ति जो है वह अकल्याणकारी हो गयी। अब दान की इच्छा, यश की इच्छे जब मनुष्य में होती है तब वह अच्छे कर्म करता है, दान करता है। देखिये न, अभी गोरेलाल जी दान दाताओं का नाम ले रहे थे और प्रशंसा भी कर रहे थे कि एक सज्जन ने नाम नहीं दिया—मैं ऐसा नहीं मानता- जिन्होंने नाम नहीं दिया वे तो धन्य हैं ही पर नाम देना भी बहुत अच्छा है। नाम देने से कम से कम दूसरों को भी तो उत्साह मिलेगा कि हमारा नाम मंच पर पढ़ा जाये इसलिए हम दान की मात्रा और बढ़ावें। इसलिए शास्त्रों ने कहा कि दान कैसे भी दीजिए—

हियां देयं भियां देयं

चाहे डर से दीजिए, लोभ से दीजिए, नाम के लिए दीजिए, अच्छा कर्म जिससे होता है, अगर व्यक्ति नाम के लिए भी करता है तो बहुत अच्छा

है। पर जब इच्छा करे कि दूसरे का नाम मिटा करके मेरा नाम हो तो फिर यश की इच्छा दुखदायी हो जायेगी। तीनों इच्छाएं मनुष्य के जीवन में होनी चाहिए पर उसको कैसे नियंत्रित किया जाये, यही रामायण में वर्णन किया गया है। महाराज दशरथ के जीवन में यदि पुत्र की इच्छा है तो गुरु वशिष्ठ ने वैराग्य का उपदेश नहीं दिया। गुरु वशिष्ठ ने यह नहीं कहा कि तुम तो इतने पुण्यात्मा हो, धर्मात्मा, पुत्र हो चाहे नहीं। लेकिन कितने चतुर हैं गुरु वशिष्ठ। यह भी जानते हैं कि साक्षात् ब्रह्म चार पुत्रों के रुप में इनके यहां जन्म लेने वाला है। यह भी नहीं कहा कि पुत्र की क्या इच्छा में क्या रखा है। और यही भी नहीं कहा कि ईश्वर चार पुत्रों के रूप में जन्म लेने वाला है। यह भी नहीं कहा कि तुमने मनु के रूप में बड़ी तपस्या की थी, घबराओ नहीं पुत्र होगा। गुरु वशिष्ठ ने तुरंत कहा-पुत्र चाहते हो तो यज्ञ करो। फिर वही सूत्र। जब उन्होंने पूर्व जन्म में इतनी साधना की थी, तपस्या की थी तो पुत्र तो होने ही थे और जो कुछ नहीं करते उनके यहां भी तो बहुत पुत्र हो जाते हैं। ऐसा तो नहीं है कि जो ऐसा नहीं करते उनके पुत्र न हों। कभी कभी बहुत बड़ी संख्या में हो जाया करते है, तो अब ऐसी स्थिति में उसका अर्थ क्या हुआ-पुत्र यज्ञ के बना भी तो हो सकता है पर यज्ञ के बिना होगा तो जिसका बेटा है उसका अधिकार है। यहां पर आगे चलकर के गुरु वशिष्ठ ने पहले उनसे सकाम यज्ञ कराया-

सृंगी रिषिहिं बसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा।।

(१-१८८-५)

एक यज्ञ मेघनाद करता है। मेघनाद के यज्ञ की सूचना विभीषण जी ने भगवान् राम को दी। महाराज, मेघनाद यज्ञ कर रहा है। "अच्छा-अच्छा! लंका वालों के विचार बदल गये अब वे स्वयं यज्ञ करने लगे। पहले तो यज्ञ को नष्ट किया करते थे।" तो विभीषण ने कहा-महाराज वह यज्ञ पवित्र यज्ञ नहीं है-

मेघनाद मख करइ अपावन।

मेघनाथ बड़ा अपवित्र यज्ञ कर रहा है-कोह के लिए ?

खल मायावी देव सतावन।।

(६-७४ख-४)

''देवताओं को कष्ट देने के लिए ही वह यज्ञ कर रहा है। कोई किसी को खीर खाने के लिए निमंत्रण दे और बढ़िया खीर बना करके उसमें विष की बूंदे डाल दे कि खीर के लोभ में खाये और मरे। तो वह उसका मिष्टान्न जो है शत्रुता की भावना से भरा हुआ है। तो जहां पर यज्ञ का उद्‌देश्य है किसी अन्य को कष्ट देना वह अपवित्र यज्ञ है। पर दशरथ का यज्ञ सकाम यज्ञ है। इसलिए गोस्वामी जी ने कहा-

पुत्र काम सुभ जग्य करावा।

और उस यज्ञ का परिणाम क्या हुआ? अग्निदेव प्रकट हुए, यज्ञ चक्र प्रारंभ हुआ- देने और लेने का क्रम, पुत्र चाहते हो तो यज्ञ में आहुति दो, श्रृंगी ऋषि को बुलाओ, उनके आचार्यत्व में यज्ञ कराओं-

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बुलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे।।
जो बसष्ठि कछु हृदय बिचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा।।

(१-१८८-५,६)

अग्निदेव प्रकट होते हैं, चरुपात्र देते हैं, चरु का वितरण होता है। वितरण के बाद महाराज दशरथ के घर में चार पुत्रों का जन्म होता है। स्वयं ईश्वर ही चार पुत्रों के रूप में जन्म लेता है और उसे बाद यज्ञ कर्म का धीरे-धीरे विकास है, वह देखने योग्य है।

महर्षि विश्वामित्र भी यज्ञ करते हैं, पर दशरथ के समान उनका यज्ञ किसी पुत्रादि की कामना से नहीं है वह 'निष्काम यज्ञ' है। निष्काम यज्ञ में भी ताड़का, मारीच और सुबाहु की बाधा- उसको हम बहुत विस्तार नहीं देंगे। वह प्रसंग भी अपने आप में बड़ा गंभीर है। सकामता में तो बाधा है ही पर निष्कामता में ताड़का, मारीच और सुबाहु बाधक बन करके यज्ञ को नष्ट करने पर तुल जाते हैं और तब उन्होंने ध्यान किया-गोस्वामी जी ने कहा-

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।।
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा।।

(१-२०५-५)

बड़े ध्यान योगी हैं, ध्यान के द्वारा उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि इन राक्षसों का विनाश तो भगवान को छोड़ करके और कोई नहीं कर सकता-कहां मिलेंगे भगवान? श्रीरसागर में कि वैकुण्ठ में, कहां मिलेंगे, और तब दिखाई पड़ा। ये तो महाराज दशरथ के घर में चार पुत्रों के रूप में जन्म ले चुके हैं, और तब निर्णय किया कि मैं जाऊंगा और इस बहाने से भगवान का दर्शन होगा और उन्हें लेकर के आऊंगा, मेरे यज्ञ की रक्षा होगी। गये, महाराज दशरथ ने स्वागत किया, पूजा की, बड़ें गद्गद् थे कि इतना बड़ा महात्मा बिना निमंत्रण के ही चला आया। महाराज आपने कष्ट किया, क्या आज्ञा है? और तब उन्होंने कहा कि मैं जो मांगने आया हूँ तुम्हें उसको देने के लिए एक तो मोह को छोड़ना पड़ेगा। और फल क्या होगा? उन्होंने कहा तुम्हे यश मिलेगा। अब आप देखेंगे पुत्र की इच्छा तो पूरी हो चुकी। पुत्र तो मिल चुका। अब पुत्र पाना बाकी है क्या? नहीं! तो फिर-

देउ भूप मन हरषित

एक तो मीठी बात ये कही कि जब देना ही है तो प्रसन्न मन से दो कई लोगों को देना पड़ता है तो दुखी होकर देते हैं-तो दिया भी और दुख बदले में लिया-तो इससे बढ़के दुर्भाग्य क्या होगा-उन्होंने कहा-

देउ भूप मन हरषित

और मैं जानता हूं कि जब मैं अपनी मांग रखूंगा तो तुम्हें कुछ लगेगा कि यह मांग तो बहुत उचित नहीं है।

मैं जो मांग रहा हूं वह विचारशून्य है कि विचारयुक्त है यह तो भविष्य बतावेगा। अभी तुम्हें ऐसा लगता है कि मैंने विचारपूर्वक नहीं मांगा। इस स्थिति में गुरु वशिष्ठ ने उस समय विश्वामित्र जी का पक्ष लिया। वैसे गुरु वशिष्ठ और गुरु विश्वामित्र के विरोध की कथाएं इतिहास और पुराणों में आती हैं लेकिन इस प्रसंग में-

तब बसिष्ठ बहु बिधि समझावा।

(१-२०७-८)

यही मानो यज्ञ की भावना का विकास है। सकामता से निष्कामता की ओर मोड़ना, उससे जोड़ना, सकाम व्यक्ति को निष्कामता से जोड़

देना और तब उन्होंने जो बात कही वह बड़ी सुन्दर थी-

धरउ धीर होइहहिं सुत चारी।

(१-१८८-४)

और आगे भी तो कुछ कहा था-

त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी।।

सारे ब्रह्माण्ड में वे विख्यात होंगे- अपने घर में बंद रखोगे तो त्रिभुवन विख्यात होने का क्या मार्ग यही है? और भी तो कुछ कहा था- आपको याद है?

चौथेंपर पायउँ सुत चारी।

उन्होंने कहा कि राजन् मैंने यह भी कहा था कि-

धरउ धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी।।

वे भक्तों का भय दूर करेंगे। अब भला बताओ, इतने बड़े भक्त आये हुए हैं वे कह रहे हैं कि निशाचरों के द्वारा भय है। यही मेरी भविष्यवाणी पूरी होने का अवसर है और कहा किसी तरह से विचार करके देखो। तुम्हें पुत्र नहीं था। यज्ञ हुआ और यज्ञ की कृपा से चार पुत्र मिले- महात्मा दो ही तो मांगने आये हैं-चार पाया और दो देने में भी कृपणता, यह तो कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं और जब मैंने कहा था कि यह जो ''त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी'' की भूमिका अब प्रारंभ होने जा रही है-जब तुम दे दोगे तो यह वस्तुत: त्रिभुवन विदित हो जायेंगे और ''भगत भयहारी'' की जो उपाधि है वह भी सार्थक हो जायेगी।

उनमें गुरूदेव की प्रति श्रद्धा थी। उन्होंने-

अति आदर दोउ तनय बोलाए।

(१-२०७-६)

बड़े आदरपूर्वक श्री राम-लक्ष्मण को बुलाया और-

हृदय लाइ बहु भांति सिखाए।।

और श्रीराम का हाथ विश्वामित्र के हाथ में पकड़ा दिया-महाराज ये जो मेरे पुत्र हैं-

मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।

(१-२०७-१०)

आज से आप ही इनके पिता हैं और ऐसा इस रूप में यह समर्पण का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। उस पहले यज्ञ के द्वारा पुत्र मिले पर अब देने की बात आ गई-तो समर्पण की क्रिया यही से प्रारंभ हुई। आपने पाया और उस पाने में से आधा तो दे दीजिए-आधा दो पुत्र दे दिए और उसके बाद यह यज्ञ चक्र चल रहा है- विश्वामित्र जी की अपनी कोई कामना नहीं है, कोई अच्छा नहीं है विश्वामित्र जी का यज्ञ तो

बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी।।
जहं जप जग्य जोग मुनि करहीं।।

(१-२०५-२)

लोक कल्याण के निष्काम भाव से उनके द्वारा यज्ञ सम्पन्न होता है और तब आप पूरे क्रम में यह पावेंगे। यह पूरा प्रसंग क्या है-क्रमशः व्यक्ति कैसे यज्ञ की दिशा में बढ़ते हुए समर्पण करे, आहुति दे और वह आहुति केवल अन्न की ही नहीं होती है, आहुति जो है बदलती जाती है और आहुति का उद्देश्य भी बदलता जाता है। महाराज श्री दशरथ ने कितना बड़ा त्याग किया, अपने सुकुमार पुत्रों को दे दिया यज्ञ की रक्षा के लिए और ये महात्मा तो बड़े कठोर निकले देखने में। महाराज दशरथ ने तो स्वाभाविक रूप से यह कहा ही होगा कि महाराज आप रथ पर बैठ करके पधारें, सेना भी साथ ले जायें। पर महात्मा जी ने कहा कि नहीं, न तो सेना जायेगी न रथ जायेगा, इन्हें मेरे साथ पैदल ही चलना होगा। इतने सुकुमार पुत्रों को लेने आये और इतना कठोर व्यवहार कि रथ पर बैठ करके, बैठा करके नहीं ले जा रहे हैं क्या ? विश्वामित्र का उद्देश्य है भौतिक रथ पर बैठ करके विजय करने वाले योद्धा तो अनेक हैं पर अब जो तुम्हारे पुत्र विजय प्राप्त करने जा रहे हैं वह रथ अदृश्य है और वह रथ-विश्वामित्र जी जिस रथ पर आये वह भौतिक नहीं था, न दिखाई देने वाला था और वह श्री राम और लक्ष्मण को जिस रथ पर ले करके गये वह भी अदृश्य था और विश्वामित्र जी अपने आश्रम से अदृश्य रथ पर अयोध्या में कैसे आये? याद रखियेगा-बाहर जो सवारियां होती हैं उनसे जिसके पास जितना धन है उतनी ही अच्छी तेज सवारी खरीद सकता है। पर एक ऐसा रथ है कि जो ईश्वर ने हम सब लोगों को दिया

और उस रथ से शीघ्र चलने वाला रथ तो कोई आज तक न तो विश्व में बना है, न बन सकता है। वह रथ क्या है? विश्वामित्र जी बहुत शीघ्रता से आ गये अयोध्या में । किस रथ पर?

बहुविधि करत मनोरथ,

(७-२०६)

ये मन का जो रथ है क्या इस रथ से बढ़ करके तीव्र गति वाला कोई रथ हो सकता है? क्या इस रथ के विषय में कोई कह सकता है कि मेरे पास यह रथ नहीं है? अब इतनी गतिवाला रथ है और आप उसको नरक में ले जा रहे हैं। मन के रथ पर बैठ करे भोग का चिंतन कर रहे हैं, दोष का चिंतन कर रहे हैं, पाप का चिंतन कर रहे हैं। मानो उसका अभिप्राय है कि हम रथ पर बैठ करके भी अपने आपको वहां ले जाना चाहते हैं। हमारे मन में बातें भी है तो बार-बार एक-एक बात पढ़ करके चिन्ता हो जाती है। किसी रोग के विषय में पढ़ा-कहीं मुझे यह रोग तो नहीं हो जायेगा? कहीं मृत्यु सुनी, तो कहीं मेरी मृत्यु तो नहीं हो जायेंगी-अरे भई जब मन का रथ इतना बढ़िया है तो उसको भगवान के पास ले चलिए न—आपकी यही भावना तो भगवान् का ध्यान है। बस आप बैठ करके रोग शोक, भय, हानि से जरा मुक्त हो करके, मन के रथ पर बैठ करके पहुंच जाइये अयोध्या में, प्रभु के धाम में और प्रभु का दर्शन करके व्यक्ति धन्य हो और उसका आनन्द है यह कि शरीर से जब आप यात्रा करते हैं तो कुछ समय बाद आपकी यात्रा पूर्ण होती है, पर मन से जब आप यात्रा करते हैं तो मन में ज्यों ही आपने चिंतन किया, शरीर से चाहे जब पहुंचे पर मन से तो आप तुरंत पहुंच जायेंगे। तो सबसे श्रेष्ठ मन का उपयोग यही है कि उसमें बढ़िया से बढ़िया चिंतन किया जाये, ध्यान किया जाये। इसलिए विभीषण जी को जब लंका में रावण ने लात मार करके निकाल दिया तो गोस्वामी जी ने कहा-चले कैसे? बोले-

चलेउ हरषि रघुनाय पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।

(५-४१-४)

विभिषण लंका को छोड़ करे जा रहे हैं, 'मनोरथ', मन के रथ पर और क्या मन में भाव उठ रहे हैं-यह गोस्वामी जी ने गीतावली रामायण में

कहा-चिंतन होने लगा, मैं श्रीराम जहां विराजमान हैं वहां जा रहा हूं और गोस्वामी जी ने कहा मन में वह सब कुछ-

महाराज राम पह जाऊँगौ

जब प्रभु सुनेंगे कि लंका से रावण के द्वारा प्रताड़ित कोई व्यक्ति आया हुआ है, तो प्रभु इतने उदार हैं कि-

सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं, मैं निपटहि सकुचाऊँगी।

(गीतावली-५-३०)

प्रभु जब कहेंगे कि जल्दी से लाओ। तो मैं पहुंचते समय मन ही मन बड़ा संकोच करूंगा कि रावण का मैं छोटा भाई-मैं किस मुख से सामने जाऊँ और फिर-कहीं उन्होंने कहा-क्या वस्त्र पहनियेगा, किस वस्तु को धारण कीजियेगा?

कहिहौं, बलि, रोहिटा रावरो

इस तरह से मैं कहूंगा और उसके पश्चात्-

तुलसी पट उतरे ओढ़िहौं, ऊबरि जूठनि खाऊँगौ।

(गीतावली-५-३०)

उनका प्रसाद ग्रहण करूँगा, उनका वस्त्र धारण करूंगा। अब उस चिंतन में कितना आनन्द है क्यों-सभा में जिसका इतना अपमान हो गया हो-जरा सा अपमान होने के बाद कोई अगर सभा से जाता है, तो उसके चेहरे को देख लीजिए, क्या दशा हो जाती है-पर विभीषण इतना आनंदित-गोस्वामी जी ने लिखा-

चलेउ हरषि..............

हर्ष क्यों हो रहा है? रावण की याद भूल गई, रावण के चरण प्रहार की याद भूल गई-याद आ रही है किसकी, स्मरण किसका आ रहा है भगवान् के चरणों का-

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरि रिषि नारी। दण्डक कानन पावनकारी।।

(५-४१-५)

श्रीराम का सारा चरित्र, श्रीराम के चरणों का स्मरण आ रहा है। जिन चरणों के स्पर्श से अहिल्या चेतन हो गई, जिसके द्वारा दण्डक वन

पवित्र हो गया, जो चरण मारीच के पीछे दौड़े, जिन चरणों की पादुका को भरतजी ने अपने सिर पर धारण कर लिया-

जे पद जनक सुता उर लाए। कपट कुरंग संग धार धाए।।
हर उर सर सरो पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहऊँ तेई।।
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ।

(५-४

इस प्रकार का दिव्य भाव, कितना आनंददायी है यह चिंतन। इसीि जब सुग्रीव ने कह दिया कि-महाराज विश्वास नहीं करना चाहिए, प्रभु हंसने लगे, मन ही मन यह चिंतन करके आया हुआ है और सु अच्छे प्रधानमंत्री निकले कि कह रहे हैं कि इन्हें बंदी बना करके रख चिंता किसके मन में नहीं होती। पर वहीं चिंता संसार से जोड़िए तो सांपिन हो जायेगी या चिंताग्नि बन जायेगी—

चिंत सांपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।

ऐसी चिंता कि किसी संत ने लिखा आग लगी हुई है चारों ओर! सी? बोले-

चिंता की लगि आग है, जरै संकल संसार।
जरै सकल संसार, जलत निरपति को देखा।
बादशाह उमराव जलत हैं सैयद शेखा।
सुर नर मुनि सब जरै, जती जोगी सन्यासी।
पंडित ज्ञानी जरै चतुर कनफटा उदासी।
जंगम स्यौढ़ा जरै, जरै नागा बैरागी।

महाराज जलने वालों का ही वर्णन करेंगे कि कोई बचेगा—टे बतावेंगे उन्होंने कहा-हां-

पलटू बसते संत जिन, लिया नाम आधार।
चिंता लागी आग है, जरै सकल संसार।

जिसने भगवान् के नाम का आश्रय ले लिया है वही व्यक्ति इस से मुक्त हो सकता है। चिंता को चिंतन बनाइये और जब आप औ चिंता को चिंतन बनावेंगे तो भगवद्भक्ति चिंतामणि बन करके ह समस्त चिंता की समस्याओं का समाधान करेगी। विनयपत्रिका में गो

जी कहते हैं—

तुलसीचित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने।

(विनय पत्रिका २३५-८)

विश्वामित्र के मन में भी चिंता ही थी-

गाधितनय मन चिंता ब्यापी।।

(१-२०५-५)

पर वह चिंता अंत में ऐसी चिंतामणि बन गई। भगवान् के पास गये-भगवान् को पा लिया और उस तरह से मानों मन के रथ पर बैठ करके भगवान् के पास पहुंचा जा सकता है। भगवान् जब भक्त की इच्छा पूरी करने के लिए चले तो रथ पर बैठ करके गये और वह रथ कौन है जिस रथ पर बैठ करके उन्होंने लंका में विजय प्राप्त की थी। जिसका वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा- रथ का पहिया सबसे नीचे होता है और धर्म उसके पहिये हैं।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।

शौर्य और धैर्य यही दो रथ के पहिए हैं। श्रीराम की यात्रा प्रारम्भ हुई-तुलतीदासजी ने कहा-देख लो रथ जा रहा है, सौरज और धीरज के पहिये हैं कि नहीं-

पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।

लेकिन

कृपा सिंधु मति धीर अखिल बिस्व कारन करन।।

(१-२०८ख)

एक ओर शूरता, सिंहत्व की पराकाष्ठा है दूसरी ओर धीरता की पराकाष्ठा है। मानों महर्षि बताना चाहते थे कि बहिरंग साधनों द्वारा व्यक्ति बुराई पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। उसको प्राप्त करने के लिए तो जिस रथ की आवश्यकता है, उस रथ पर ही प्रभु की यात्रा होती है और तब महर्षि विश्वामित्र का यज्ञ पूरा हो गया। यह निष्काम यज्ञ है पर एक इससे भी ऊँचा यज्ञ है। विश्वामित्र जी को तो जितनी विद्याएं ज्ञात थी सबको मार्ग में ही प्रभु को अर्पित कर दिया। पर उसके पश्चात् महाराज जनक का यज्ञ है, ज्ञान यज्ञ है।

जिस ज्ञान यज्ञ की प्रशंसा भगवान् गीता में सर्वश्रेष्ठ कह कर करते हैं, वह महान् ज्ञानी जनक के चरित्र में आपको मिलेगा और वह जो यज्ञ में ज्ञानमय यज्ञ है जिसके लिए भगवान् श्रीराम से महर्षि विश्वामित्र ने कहा- जनकपुर चलना है। आदेश का पालन करने के लिए प्रभु प्रस्तुत हैं। ऋषि ने कहा कि रामभद्र-जनकपुर में भी एक यज्ञ हो रहा है। प्रभु ने पूछा कौन सा यज्ञ हो रहा है? बोले-'धनुषयज्ञ'। शास्त्रों में इस नाम का कोई यज्ञ नहीं है। वस्तुतः जनक का यज्ञ ज्ञान यज्ञ है, जिसकी व्याख्या संकेत के रूप में कल की गई थी। जनकजी चाहते हैं कि धनुष टूट जाये, ज्ञानी की पूर्णता किसमें है बोले-

ग्यान मान जहं एकहु नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माही।।

(३-१४-४६)

अभिमान का, कर्तव्य का पूरी तरह से नाश होना ही ज्ञानमय यज्ञ है और वह ज्ञान यज्ञ परिपूर्ण होता है, भगवान् श्रीराम के द्वारा, वहां पर भी समर्पण है। दशरथ जी ने पुत्र का अर्पण किया, विश्वामित्र जी ने अपनी विद्या का अर्पण किया, महाराज श्री जनक ने जिसे अपनी पुत्री मानते उसे-भगवान् की शक्ति मान करके अर्पण किया और इसके पश्चात् परशुराम जी महाराज आ गये और अंत में वह भी एक यज्ञ पूरा हुआ और वह भी अपने धनुष का अर्पण करके चले जाते हैं। इस तरह से क्रमिक रूप से धनुष टूटना, परशुराम जी महाराज जी के द्वारा धनुष का अर्पण करना, ये सबके सब यज्ञ की प्रक्रिया के अंग हैं और इसका अभिप्राय है महाराज दशरथ की अपेक्षा विश्वामित्र जी श्रेष्ठ हैं, विश्वामित्र जी की अपेक्षा महानतम ज्ञानी जनक श्रेष्ठ हैं। पर सबसे बड़ा यज्ञ ज्ञानयज्ञ कि जपयज्ञ? भगवान् यह तो कहते हैं कि ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ पर बाद में यह भी कह देते हैं कि यज्ञों में जपयज्ञ मैं ही हूं। यह रामायण में जप यज्ञ क्या है? जपयज्ञ का अगर हम दर्शन करना चाहें तो किसके चरित्र में जप यज्ञ का दर्शन होगा और तब आपने अगर मानस की उन चौपाइयों को ध्यान से पढ़ा होगा तो आपको एक सूत्र मिलेगा और वह सूत्र क्या है?

महाराज श्री दशरथ ने रामराज्य का संकल्प लिया और वहां भी समर्पण का ही संकल्प था। मैं राजा के रूप में राज न रह कर अपने राज्य

के अधिकार का समर्पण राम के प्रति करूंगा। किन्तु गोस्वामी जी ने बड़ी कवितामयी भाषा में लिखा कि जैसे कोई कुंभ लग जाये, कोई पर्व आ जाये तो स्नान करने के लिए स्नानार्थियों की भीड़ एकत्र होती है। एक नदी तो वह होती है कि जहां पर सीढ़ी नहीं है, वहां पर कभी-कभी दुर्घटनाएं भी होती हैं नदी में अगर सीढ़ी हुई तो भी वहां पर कभी-कभी दुर्घटनाएं होती है पर नदी में अगर सीढ़ी हुई तो बिचारे भयभीत स्वभाव के नहाने वाले भी धीरे-धीरे अच्छा इस सीढ़ी पर उतरे, उस सीढ़ी पर उतरे इतना जल है। गोस्वामी जी ने कहा इसी प्रकार से रामराज्य की जो योजना थी वह मानों पर्वयोग था और उस पर्वयोग में दशरथ जी महाराज ने स्नान करने का निर्णय किया। वह समर्पण की भावना से जब स्नान करने चले तो उनको लगा कि यहां सीढ़ी है। सीढ़ी कौन है? कैकेयी जी।

आप जानते हैं कि कैकेयी से विवाह में उनके पिता के आग्रह के कारण महाराज दशरथ वचनबद्ध थे कि कैकयी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा राज्य उसी को मिलेगा। महराज श्री दशरथ के मन में श्रीराम को राज्य देने का संकल्प भले ही हो, लेकिन अगर महाराज कैकयी या महारानी कैकेयी कहें कि आपने वचन दिया है तो रामराज्य कैसे होगा? पर दशरथ बड़े प्रसन्न थे क्योंकि श्रीराम को राज्य देने का सबसे अधिक समर्थन महारानी कैकेयी ही करने लगीं। श्रीराम इतना सम्मान देते हैं, महारानी कैकेयी को, इतना स्नेह करते हैं, जितना सम्मान करते हैं वैसा तो भरत भी नहीं करता और तब उदार हृदय से महाराज दशरथ को वह याद दिलाती रहती हैं कि आप बताइये राम को कब आप राज्य देंगे, कब अपना उत्तराधिकारी घोषित करेंगे। अब दशरथ जी के सामने निश्चिन्तता है। अब कोई चिंता है ही नहीं कि जब जिन कैकयी जी के द्वारा बाधा आ सकती थी वही प्रस्ताव करें। इसीलिए वर्णन आता है कि दशरथ जी जब कैकयी के महल में आये तो बड़े प्रसन्न थे और जा करके कैकेयी से जो उन्होंने वाक्य कहा वह क्या था- उन्होंने यही कहा-

भमिनि भयउ तोर मनभावा।

(७-२६-२)

महारानी तुम तो सर्वदा मुझसे कहा करती थीं, वहीं तुम्हारा कामना

मैं आज पूर्ण करने जा रहा हूं, तुम प्रसन्न हो जाओ। लेकिन हुआ ऐसा नहीं। गोस्वामी जी बड़े साहित्यिक ढंग से अपनी बात रखते हैं, कि सीढ़ी है तो नहाने में निश्चित मत हो जाइये। सीढ़ी से उतरने में सुविधा तो है, अगर सीढ़ी में काई लग गई हो तब उतना ही बड़ा संकट भी है। आप निश्चिंत हो करके उतरने लगे ध्यान दिया नहीं कि सीढ़ी में काई लगी है और अगर काई से पैर फिसला तो स्नान क्या होगा फिर तो अस्थि भंग हो कितना कष्ट होगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। गोस्वामी जी ने यही दृष्टांत दिया—

काई कुमति केकई केरी।

(१-४०-८)

सुमति और कुमति सब के हृदय में है। अब तक कैकेयी जी के हृदय, उनकी वाणी में सुमति दिखाई देती थी पर मंथरा ने कुमति की काई कैकयी के हृदय में लगा दी। उस काई पर दशरथ जी ने ध्यान नहीं दिया और फिसल करके ऐसे गिरे कि हड्डी ही नहीं, प्राण ही देना पड़ा। रामराज्य स्थापित नहीं हो पाया। जब कोई इस प्रकार से हड्डी टूट जाये, दुर्घटना हो जाये, कोई अपशकुन होने लगे तो लोग ज्योतिषियों के पास जाते हैं कि महाराज बड़ा अमंगल हो गया। मैंने तो यह सोचा था यह हो गया तो अब ग्रह शांति का कोई उपाय बताइये तो बहुधा विद्वान ज्योतिषी जो हैं, जप बात देते हैं, महामृत्युंजय का जप कीजिए या यह ग्रह खराब हो गया है, तो इस ग्रह का जब कीजिए। गोस्वामी जी ने कहा जब दशरथ जी गिर पड़े-

परी जासु फल बिपति घनेरी।।

(१-४०-८)

तो खोज होने लगी कि अब इतना बड़ा संकट जिस ग्रह दशा के कारण आ गया वह ग्रह दशा कौन सी है? गोस्वामी जी मंथरा और कैकयी के संदर्भ में कहते हैं-

सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोलीं।।

(२-१७-२)

मंथरा मानों शनि की दशा बन गई और शनि की दशा तो केवल साढ़े

सात वर्ष की होती है यहां तो चौदह वर्ष की दोहरी दशा आ गई और तब इस ग्रह की शांति कैसे हो? रामराज्य में बाधक बन गई कैकयी की दुर्बुद्धि जिसको मंथरा ने बढ़ावा दिया है। महाराज श्री दशरथ के सामने उसकी शांति का उपाय नहीं था, नहीं कर पाये-सारे ज्योतिषियों ने कह दिया था मुहूर्त है कल राज्याभिषेक होगा और तब गोस्वामी जी ने कहा कि जो संसार के ग्रह हैं उनको मिटाने के लिए भले ही ग्रहों का जब किया जाए पर इस अयोध्या में जो अमंगल आ गया उसका जप यज्ञ जब होगा तब अनिष्ट मिटेगा और जप यज्ञ क्या है-आप गोस्वामी जी का दोहा ध्यान से पढ़िये-

समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग।

भरत जी का चरित्र ही जप यज्ञ है। समस्त उत्पातों का, अमंगलों का, सबको मिटाने में समर्थ भरत का चरित्र है और वह चरित्र ही वस्तुतः जपयज्ञ है। जपयज्ञ को समझने के लिए हमें भरत के चरित्र को उनके चिंतन को समझना होगा। सकाम यज्ञ, निष्काम यज्ञ, ज्ञानयज्ञ से भी सर्वश्रेष्ठ यज्ञ जो है जपयज्ञ है, वह श्री भरत हैं। भुशुण्डिजी पाकरी के नीचे जपयज्ञ करते हैं। अब उसकी व्याख्या कल के लिए ही छोड़नी होगी आज इतना ही।

बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय।

षष्ठम

पीपर तरू ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई ।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहीं दूजा।।
बर तर कह करि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहि अनेक बिहंगा।।

भगवत कथा रसिक महानुभावों, भक्तिमति देवियों,

अभी आपके सामने जो पंक्तियां पढ़ी गयी हैं उसमें भगवान् शंकर ने कागभुशुण्डि के जीवन में जो साधनाएं सम्पन्न होती हैं, जिस विधि से सम्पन्न होती हैं, उसका वर्णन किया। सुमेरू पर्वत के चार शिखर हैं और उन चार शिखरों पर चार वृक्ष लगे हुए हैं। एक शिखर पर पीपल का वृक्ष है, दूसरे पर पाकरी, तीसरे पर आम और चौथे पर वट। भुशुण्डि जी पीपल के नीचे ध्यान करते हैं और पाकरी वृक्ष के नीचे बैठ करके जपयज्ञ करते हैं, आम के नीचे बैठ करके मानसिक पूजा करते हैं और वट के नीचे श्री रामकथा सुनाते हैं। यहां जिन चार वृक्षों का, चार प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया गया है वे मानों मनुष्य के अन्त:करण की शुद्धि का सर्वश्रेष्ठ उपाय हैं। हमारा मन कैसे शुद्ध हो, बुद्धि में पवित्रता का कैसे संचार हो, हमारा अहं किस तरह से अनर्थ की सृष्टि न करके हमारे जीवन का पूर्णता की ओर ले जाए और हमारे-आपके चित्त में जो पूर्व जन्मों से ले करके अब तक न जाने कितने संस्कार भरे हुए हैं उन संस्कारों से व्यक्ति मुक्त हो। जब अन्त:करण के चारों भाग शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं तब उस व्यक्ति का जीवन स्वयं अपने लिए और समाज के लिए, विश्व के लिए परम कल्याणकारी होता है। तो कल जो प्रसंग प्रारम्भ किया गया था- भुशुण्डि जी पाकरी वृक्ष के नीचे जप यज्ञ करते हैं तो जप शब्द की एक साधारण प्रक्रिया जो है उसे आप दूसरों में और अपने आप में भी देख सकते हैं। जब आप बार-बार एक मंत्र की या भगवान् के नाम की आवृत्ति करते हैं तो उसको जप की संज्ञा दी जाती है। वैसे जप को लेकर हमारे शास्त्रों में, धार्मिक ग्रन्थों में उपासना के ग्रन्थों में बहुत अधिक लिखा गया है और कहा गया है कि साधनाओं में जप यज्ञ

सर्वश्रेष्ठ है और इसके साथ यह भी जोड़ दिया गया कि-

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभऊ ।। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ।।
(१-२१-८)

चारों युगों में, चारों वेदों में, नाम की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। लेकिन कलियुग के लिए तो जप से बढ़ करक अन्य कोई साधना है ही नहीं। यह बात अनेक रूपों में कही गयी किन्तु उप जप की प्रकिया में एक अंतर होता है और अन्तर का तात्पर्य यह है कि कुछ लोग जप को क्रियात्मक रूप में महत्व देते हैं, एक संख्या निश्चित कर लेते हैं कि मैं इतनी संख्या में जप करूंगा। उसमें यह आदेश दिया गया है किस, तरह के आसन पर बैठ करके व्यक्ति को मंत्र का जप करना चाहिए। किस साधक को किस मंत्र का जप करना चाहिए। इस तरह से कर्मकांड की अपनी नीति है और अनेक साधन ऐसे होते हैं कि जिनके जीवन में विधि की प्रधानता से संख्या को लक्ष्य बना करके उसकी जो सही-सही विधि है उससे जप सम्पन्न होता है तो एक पक्ष वह है जिसमें क्रिया और विधि की प्रधानता है और यह जो जप है कर्म शास्त्र की परंपरा के अनुकुल है। कर्म के संदर्भ में यह सत्य है कि कोई भी कर्म तभी मनुष्य के जीवन में फल की सृष्टि करता है जब उसे वह ठीक से करने की निर्धारित पद्धति का पालन करे।जैसे यदि किसी किसान को अन्न पाना है तो उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि किस विधि से खेत को जोता जाए, किस ऋतु में जोता जाए, ऐसा नहीं कि बारह महीने में चाहे जब जोतने लगे किसान और उस ऋतु में भी, किस तरह का यंत्र, किस तरह से बीज डाले, किस तरह से सिंचाई करने पर, धीरे-धीरे खेती बढ़ती है और उस विधि से जो किसान अन्न उपजाता है उसका लाभ पाता है। इसी प्रकार से जो कर्मघाट के या कर्ममार्ग के अनुयायी हैं उनके जप में है विधि की प्रधानता और ठीक-ठीक विधि से अगर व्यक्ति मंत्र जप करे तो उस जप में एक विलक्षण शक्ति का ,उदय होता है, शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। उसमें जो एक ही आवृत्ति है उसका तात्पर्य आपने देखा होगा, यंत्रों के निर्माण और निर्माण के बाद यंत्रों में आप पाते होगें कि एक तीव्र गति से यंत्र जब चलता है तो उसमें ऊर्जा उत्पन्न होती है। तो ठीक इसी प्रकार से जब

आप विधि पूर्वक नाम का जप करते हैं तो उस नाम में, उस मंत्र में उस अक्षर में दिव्य शक्ति का उदय होता है, प्रादुर्भाव होता है उसके लिए आवश्यक यही है कि व्यक्ति जो है धैर्यपूर्वक उस विधि को सम्पन्न करे। अब यह नहीं कि किन्हीं सज्जन ने सुन लिया कि गायत्री मंत्र जप करने से तेज बढ़ जाता है, तो वे दूसरे दिन से ही सामने शीश रख करके जप करने लगे। देखते जाते थे कि आज जप से कितना तेज बढ़ा। तो अब उस तरह से अगर व्यक्ति जप करने बैठ जाये तो उसका ध्यान अपना मुंह देखने पर रहेगा कि वह जप करेगा? इसका अर्थ है कि इसमें बहुत धैर्य की आवश्यकता है।

शास्त्रों में जप या नाम मंत्र की जो विधि बताई गयी है उस विधि के अनुकूल अगर कोई साधक जप करता है तो यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक साधक को एक ही अंक या संख्या में जप करने से सभी लाभ हों। अपनी-अपनी मानसिक भूमि के अनुकूल लाभ प्राप्त होता है। यह तो कर्म परम्परा का जप है और ज्ञान परम्परा का जो जप है, उसमें रामनाम क्या हैं, अक्षर है, तो ये जो वर्णमाला के अक्षर हैं, साधारणतया तो बाल्यावस्था से ही , बचपन से ही बच्चे को अक्षर लिखना सिखाया जाता है और अक्षर के द्वारा फिर शब्द और शब्द के द्वारा फिर वाक्य के द्वारा अध्ययन करके वह विद्वान् बन जाता हैं। तो अब उस दृष्टि से विचार करके देखें तो फिर मान लीजिए रामनाम का जप करते हैं। तो अब यों विचार करके देखें तो यही लगता है कि वर्णमाला के जितने अक्षर हैं उनमें से 'र, अ, म' भी अक्षर हैं। किन्तु एक व्यक्ति वह है जो कि बिना विचार किए केवल विधि पूर्वक जप करता है उसको भी निश्चित रूप से लाभ होता है, पर जो ज्ञानमार्ग का अनुयायी है वह इस पर विचार करता है, यह क्या है, कौन है, इस अक्षर को इतना महत्व क्यों दिया जाता है, इस अक्षर की इतनी महिमा क्यों गायी जाती है और तब उसके लिए एक दृष्टान्त दिया गया कि जैसे किसी के यहां अगर कोई रत्न का टुकड़ा पड़ा हुआ है और वह उसे एक चमकीला कांच समझता है, तो उसका उपयोग है, बच्चे खेलेंगे या उसके यहां उसकी शोभा होगी। लेकिन अगर जौहरी के द्वारा यह ज्ञात हो जाये कि यह कांच का टुकड़ा नहीं है, यह तो रत्न है। तो

व्यक्ति के उस ज्ञान का परिणाम यह होता है कि आनन्द की सीमा नहीं रह जाती । इसी प्रकार से गोस्वामी जी ने नाम जप के प्रसंग में दूसरा दृष्टान्त दिया कि जैसे निर्गुण निराकार ब्रह्म सर्वव्यापक है और वह व्यक्ति के हृदय में ही बैठा हुआ है, पर बैठे हुए होने के बाद भी व्यक्ति के दुख में, व्यक्ति की दीनता में तो कोई अतंर नहीं आ रहा और उसका यों कह सकते हैं कि रत्न हो घर में पर अगर रत्न का रत्नत्व ज्ञात नहीं है तो भूखे भी मर सकता है। उसको अभाव की ही अनुभूति होगी और तब रत्न के ज्ञान की आवश्यकता है और ज्ञान के बाद भी मान लिया कि यह रत्न है तो फिर रत्न को मूल्य के रूप में बदलना होगा।

रत्न को जाने कितने का मान लीजिए, लाखों रूपयें का वह हीरा है। आप उसको अभी वैसे ही देखते थे, चमकीला कांच समझते थे, रत्न समझ लिया तो आनन्द तो आया पर भूख नहीं मिटी । भूख कब मिटेगी कि जब रत्न को आप मूल्य के रूप में प्राप्त करेंगे । रत्न को आप किसी जौहरी के पास ले जायेंगे और फिर वह आपको रत्न के बदले में जो मूल्य देगा, उस मूल्य के द्वारा आप जिस आवश्यकता की पूर्ति करना चाहे कर सकते हैं। तो ज्ञानी के जप में विधि की प्रधानता नहीं है, निरूपण की प्रधानता हैं। गोस्वामी जी ने नाम महिमा और वंदना के प्रसंग में इसकी ओर संकेत किया। उन्होने यह कहा कि-

व्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनन्द रासी।।
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।

(१-२२-६)

वह कैसे करेगा? दो शब्दों में उन्होंने लिखा-

नाम निरूपण ....

आवृत्ति के साथ-साथ वह नाम का निरूपण करता है 'र' क्या है 'अ' क्या है, 'म' क्या है इन तीनों के मिलन का अर्थ क्या है? तो .....

नाम निरूपण ....

और फिर उसके बाद—

...... **नाम जतन ते। साउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते।।**

(१-२१-७)

उसका अभिप्राय है कि वह चिंतन करता है। आपको नाम के प्रसंग में वर्णन पढ़ते समय, उसमें संकेत आपको मिलेगा। गोस्वामी जी एक तो नाम की महिमा का वर्णन सुर रूप में करते है और प्रारम्भ में आप पढ़ते है कि-

बंदउँ नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।
बिधिहरि हर मय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।

(१-१८-१-२)

अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य का मूल उत्पादन अक्षर तत्व है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव ,इन तीन अक्षरों में विद्यमान हैं। जैसी बीज के द्वारा सृष्टि, वृक्ष का विस्तार होता है, इसी प्रकार से इस विश्व का निर्माण कैसे हुआ होगा? एक ऐसी कल्पना क्षण भर के लिए कीजिए कि जब कभी संसार न होगा, मिट गया होगा- आजकल तो वैज्ञानिक भी घोषणा करते रहते हैं कि धूमकेतु अगर टकरा जायेगा तो पृथ्वी नष्ट हो सकती है तो अब मान लीजिए कि कोई भी ऐसी घटना घटित हुई, आतंकित न हो जाइयेगा कि आप घबरा करके यही चिंता करते रहे कि पता नहीं कब धूमकेतु टकरा जाये। यह चिंता तो व्यर्थ की चिंता हैं। पर अभिप्राय है कि जब एक बार सृष्टि का प्रलय हो जायेगा तो फिर उसके बाद उसका निर्माण कैसे होगा। अब वस्तुएं मिट गयीं तो निर्माण कैसे होगा और इसी को हमारे शास्त्रों में प्रलय की संज्ञा दी गयी है। प्रलय काल में यह सारी पृथ्वी विनष्ट हो जाती है, समाप्त हो जाती है और समाप्त होने के बाद कुछ नहीं रह जाता, न पृथ्वी न जल, न अग्नि और न वायु। और व्यक्ति का तो प्रश्न ही क्या है। आपको जप के संबंध में विधि भी बता दें। पर आप चैतन्य रह करके सुनें । जप के पहले यह नियम है कि नये शरीर का निर्याण करना चाहिए, माने इस शरीर को जैसे आप जब कपड़े गंदे हो जाते हैं तो कहीं आप जब किसी विशेष स्थान में जाते हैं तो निर्णय करते हैं कि वहां जाने के लिए ऐसा कपड़ा उचित है तो यह कहते हैं कि शरीर को पहले आप शुद्ध कीजिए तब प्रलय की प्रकिया है। यह शरीर पांच तत्व से मिल करके बना हुआ है।

छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधाम सरीरा।

तो उसको ''भूत शुद्धि'' ऐसा शब्द उपासना के ग्रंथों में दिया गया है। तो उसमें बैठ करके ध्यान किया जाता है कि पृथ्वी जो है वो जल तत्व में विलीन हो, शरीर में जो पृथ्वी तत्व है वो जल में विलीन हो गया और जल जो है वह जा करके अग्नि में विलीन हो गया और अग्नि फिर वायु में विलीन और वायु आकाश में विलीन और आकाश का समापन महत् तत्व में ब्रह्म में जाकर हो गया, विसर्जन हो गया । इसका अभिप्राय है कि एक क्षण के लिए यह भूल जाइए कि मैं शरीर हूं, यह मेरा कुछ नहीं है, एक मात्र वह सत्ता छोड़ करके जिसको आप निर्गुण निराकार अव्यक्त के रूप में जानते है, उसको छोड़कर और कुछ नहीं हैं, इसकी ओर संकेत किया गया है। भूमि शुद्धि में, उसका ध्यान करते हैं। पहले प्रलय, बाद में फिर से नये शरीर का निर्माण। यह निर्माण कैसे होगा? तो आप क्रम को उलट दीजिये। इसका अभिप्राय है कि सबसे पहले आकाश होगा, क्रमशः प्रवृत्ति में स्थूलता आती जाती है। जहां पर प्रतीति होती है वह आकाश है। संसार का नये सिरे से निर्माण आकाश से होगा। हमारी न्याय शास्त्र की परंपरा में आकाश का गुण है—

शब्दगुणकम् आकाशम्

आकाश में सबसे पहले शब्द का स्फोट होता है। यह विलक्षण है कि विभिन्न ग्रंथों में , किसी न किसी रूप में शब्द के द्वारा ही सृष्टि के प्रारम्भ की परिकल्पना की गई है। हमारे यहां परम्परा से यह माना जाता है कि सबसे पहले प्रणव की एक ध्वनि हुई ऊँकार की, और उसी अव्यक्त की व्यक्त ध्वनि है, रामनाम। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और एक नया शरीर अब बन चुका जो ईश्वर ने प्रकट किया है और इस शरीर के द्वारा हम जप करेंगे। ऐसी एक जप की पद्धति शास्त्रों में बताई गयी है। अब इसका अर्थ क्या हुआ? आप विचार करके देखें कि जब कुछ नहीं था तब क्या था और जब कुछ नहीं दिखाई देता है तब क्या था? वह वस्तुतः शब्द ही हो सकता है। निराकार की अभिव्यक्ति पहले शब्द के माध्यम से होगी। अब वह किन धर्मों में और किस अक्षर से और किस शब्द को महत्व दिया गया है, यह अलग है पर वह शब्द ही मूल में है। तो अब -जब कोई व्यक्ति उस पद्धति से जप करता है,

ज्ञानपूर्वक वह अनुभव करता है कि वस्तुत: जो कुछ है वह तो अक्षर का ही विस्तार है और वह अक्षर, उसकी व्याख्या इतनी जटिल भी है। हिन्दू विश्वविद्यालय में चार घाट के प्रसंग की चर्चा की गयी थी, तो उसमें एक दिन जब नाम की व्याख्या हुई तो बहुत से विद्वान् प्राध्यापकों को भी लगा कि आज तो विषय बहुत अधिक क्लिष्ट था और शायद समझने के लिए बड़ा परिश्रम करना होगा। उस विषय को अनुभव की आवश्यकता है। केवल व्याख्या के द्वारा उसको ठीक -ठीक नहीं बताया जा सकता है। वह तो आप जप करते हुए अगर उसका चिंतन करते हुए अर्थ तत्व पर विचार करेंगे तो उसका साक्षात्कार होगा। इसलिए आप देखेंगे अनोखी बात- रामायण का जब निर्माण हुआ तो हमारे यहां की मान्यता यह है कि सौ करोड़ रामायण हैं। अब बहुम अधिक तर्क - वितर्क के चक्कर में मत पड़ियेगा कि वह सौ करोड़ रामायण बनी तो कहां रखी हुई है। कई लोग बहुत स्थूल गणित का प्रयोग करते है। शंकर जी का धनुष दस हजार राजाओं ने उठाने की चेष्टा की तो वह कितना बड़ा था, कहां रखा जाता था ये सब जो प्रश्न हैं उसके तात्विक पक्ष को ओझल कर देते हैं। जब गोस्वामी जी से पूछा गया- कितने रामायण? उन्होंने कहा-

'रामायन सतकोटि'

सौ करोड़ रामायण! महाराज यह संख्या बिल्कुल असंभव लग रही है- नहीं-नहीं सौ करोड़ तो मैंने एक अंक यों ही बता दिया पर वस्तुत: रामायण सौ करोड़ नहीं - तब क्या हैं-उन्होंने कहा-

'रामायन सतकोटि अपारा'

(१-३२ख-५)

वस्तुत: तो इसकी गणना नहीं की जा सकती है। हैं तो अपार, पर अब चलो व्यवहार में हम सौ करोड़ कह कर कह देते है कि बहुत बड़ी संख्या में रामायण हैं। अब आप यह न सोचिये कि किस प्रेस में छपा है और किस भाषा में छपा है और वह कहां रखा गया है और कैसा है। उसकों आप इस दृष्टि से विचार करके देखिये कि जब लंका में रावण का विनाश हो गया, वध हो गया और प्रभु अधेध्या में पधारे तो उस समय जितने अयोध्यावासी है जिनकी बहुत बड़ी संख्या है, वे प्रभु का स्वागत करने के

लिए एकत्र हैं। एकत्रित व्यक्ति बड़े उत्सुक हो रहे हैं। श्री राम के दर्शन के लिए वे यह भी चाहते हैं कि अगर प्रभु मेरे ओर एक बार देखे तो कितना अच्छा हो। यह भी अभिलाषा है कि अगर कहीं मुझसे कुछ पुछ लें तो कहना ही क्या है। अब श्रीराम ने जब यह दृश्य देखा तो गोस्वामी जी ने कहा कि उन्होंने एक अनोखा खेल किया - उन्होंने कहा कि -

प्रेमातुर सब लोग निहार। कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी।।

श्रीराम का नाम जो उन्होंने यहां प्रयोग किया वह बड़ा साहित्यिक है, साकेतिक है बोले, जो खर राक्षस के शत्रु है, उन श्रीराम ने अपने अनेक रूप प्रकट किये। आप खरदूषण के प्रसंग में यह प्रसंग में यह पढ़ चूके होंगे। आपने पढ़ा हो तो रामायण अवश्य पढ़िये, पाठ भी कीजिए अनुरोध करूंगा मैं, आपको बहुत से प्रसंगों को समझने में, उससे और भी सुविधा होगी। ये जो खर -दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई थे जब इन्होंने तपस्या की ओर ब्रम्ह्य वरदान देने के लिए आये, तो उन्होने कहा कि हम यह चाहते हैं कि हमारी मृत्यु कभी न हो। राक्षस थे चौदह हजार एक दुसरे से संबद्ध भाई के समान। तब ब्रह्मा ने कहा-सृष्टि के नियम के अनुकुल यह नहीं है। तो उन्होने वरदान यह मांगा कि हम मरें तो आपस में लड़ के मरें, कोई दुसरा न मारे। तो आपस में लड़ के मरें, कोई दूसरा न मारे। उनको यही अभियान था कि अच्छा, मरना ही है तो आपस में लड़ने के बाद। कोई मार दे तो उसकी कीर्ति हो जायेगी और योजना यह भी थी कि हम लड़ेगे क्यों- लड़ेगे नहीं तो मरेंगे नही। तो हमारी मृत्यु कभी होगी नहीं जब भगवान् राम से उनका युद्ध होने लगा तो प्रभु बाण चलाते हैं पर वह तो मरते नहीं सिर भी कट जाये, शरीर भी, तो फिर से नये रूप में। तो गोस्वामी जी ने कहा कि भगवान राम ने उस समय क्या किया- जब देवता देखते हैं इस दृश्य को तो-

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ.........

जादूगर हैं, संसार के सबसे बड़े जादूगर तो यही हैं ईश्वर महोदय। उन्होने कहा-

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो ।

(३-१९ख-छंद)

और श्रीराम ने सारे राक्षसों को अपना रूप दे दिया। बड़ा आध्यात्मिक प्रसंग है, तात्विक प्रसंग है। श्रीराम ने चौदह हजार में से प्रत्येक व्यक्ति को अपना शरीर दे दिया। राम ने राम बना दिया, वही उनका चरित्र है, वही उनकी महिमा है। पर दुर्भाग्य क्या है ? जहां सर्वत्र राम ही राम रह गये तो अब बैर -विरोध की कोई संभावना है ही, किन्तु गोस्वामी जी ने एक संकेत किया- पूछा यह गया कि अगर आप शास्त्र और सब, यह कहते हैं कि सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है तो लोग लड़ -झगड़ क्यों रहे हैं? क्या ईश्वर ही ईश्वर से लड़ रहा हैं? और इसका उत्तर यही था कि यह जो खर वृत्ति और दूषण वृत्ति हैं, खर का अर्थ आप जानते ही हैं- गधे को खर कहते है और दूषण का अर्थ है दोष । खर वृत्ति माने जैसे गधे के सिर पर आप चाहे कू ड़ा करकट लाद दें और चाहे धर्मग्रन्थ, चाहे चंदन, उसके लिए कोई अंतर नहीं है, उसको तो ढोना ही ढोना है। इसी प्रकार से बहुत विद्वान होने पर भी शास्त्रों या ग्रन्थों को ढो रहे, और उसका सार नहीं ग्रहण कर रहे हैं वह वृत्ति खर वृत्ति है और दूषण वृत्ति का तात्पर्य है यह कि जिसका स्वभाव ही हो गया है केवल दोष देखना, दोष दर्शन । तो जो दोष दर्शक होते हैं उनकी दृष्टि बड़ी पैनी होती है। इसनिए गोस्वामी जी ने कहा कि किसी व्यक्ति से जब ब्रह्मा ने पूछा कि क्या चाहते हो? महाराज दो ही नेत्र हैं, हमार नेत्र चाहिए- क्या करेंगे? जिससे सूक्ष्मता से सबका दोष दिखाई दे-

सहस नयन परदोष निहारा।

तो अब हमार नेत्र से आप भगवान को भी देख सकते हैं। जैसे अंत में इन्द्र ने देखा और हजार नेत्र से आप दूसरों के दोष भी ढूंढ सकते हैं। मानो कितनी बड़ी विडम्बना है कि श्रीराम ने सबको राम दिया। राम का रूप दे दिया। पर उनके मन में यह दोष की वृत्ति है कि ज्ञान के केवल ढोने की वृत्ति है। अगर उन्होंने यह देखा होता, कि यह कौन है दिखाई देता मैं भी राम हूं तब तो युद्ध होता ही नहीं। पर दूषण वृत्तिवाले तो केवल सामने देखते हैं अपनी ओर देखते नहीं। इसलिए जब उन्होंने सामने वाले को राम देखा, अरे वह राम-जिसने खर दूषण -त्रिशिरा, जिसने हमारी बहन की नासिका का उच्छेद कर दिया, वह तो हमारा शत्रु है।

उससे बदला लेने के लिए हम आये हुए हैं और परिणाम क्या होता है? इसका अर्थ यह है कि अगर व्यक्ति यह देखता रहें तो उसको दिखाई देगा कि जहां, जिधर देखेंगे अपने में, दूसरे में, सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर विद्यमान है और तब वह वृत्ति आ जाती है कि-

अब हौं कासे बैर करउँ।

उमा जे राम चरन रत, बिगत काम मद क्रोधा ।

निज प्रभु मय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोधा।।

(७-११२ख)

तो परिणाम क्या हुआ। राम हमारे शत्रु हमारे शत्रु हैं और अस्त्र का प्रहार करने लगे, सामने वाले पर

रिपु दल लरि मर्‌यो

(३-१६ख-छंद)

एक क्षण में सारे राक्षसों का विनाश हो गया। गोस्वामी जी ठीक इसी नाम का स्मरण रामायण के अनेक प्रसंगों में करते हैं। ये खरारि शब्द केवल किसी चौपाई की पूर्ति के लिए नहीं है। उसमें निहित संकेत भी है। गोस्वामी जी वहां पर यही लिखते हैं-

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी

(१-१६१-छंद)

तो उस समय 'अद्‌भुत रूप खरारी ' कह करके भगवान् के खरारी नाम का स्मरण किया गया और जब अयोध्यावासियों के हृदय में प्रभु ने इस अभिलाषा को देखा तो गोस्वामी जी ने कहा जो "खरारी प्रभु" है। शब्द वही है, उसका अर्थ यह है, कि प्रभु ने उन राक्षसों को भी अपना दर्शन कराया। अगर उनके पास देखने की दृष्टि होती तो। ये तो अयोध्यावासी हैं और प्रभु ने जितने अयोध्या के नागरिक थे उतने रूप अपने प्रकट कर दिए-

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।

(७-५-४)

द्वेष की दृष्टि थी तो वे लड़ के मर गये और प्रेम की दृष्टि थी तो आनन्द मग्न हो गये। श्री राम ने उतने रूप बना लिए हैं। जिसके सामने

जाकर के श्रीराम जिस रूप में खड़े हैं, बड़ा गद् गद् है। इतने नागरिकों में प्रभु मुझसे इतना प्रेम करते हैं कि सबसे पहले मेरे ही पास आये, मुझे ही हृदय से लगा रहे है, मुझसे ही बात कर रहे हैं। अच्छा यही था कि उन्होंने बगल में नहीं देखा, नहीं तो संकट में पड़ जाते कि असली कौन है? अपने -अपने राम का दर्शन करके, जो राम को देख रहा है उसको अन्यत्र देखने का समय ही नहीं है, अवकाश ही कहां है और परिणाम क्या हुआ गोस्वामी जी कहते हैं-

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जाग मिले सबहिं कृपाला ।।

सबसे प्रभु का मिलन हो गया। कितने रामायण बन गये? अयोध्या का प्रत्येक नागरिक यदि रामायण लिखे तो यही कहेगा कि विमान से उतर करके श्रीराम सबसे पहले मेरे पास आये, गुरूजन कहेंगे मेरे पास आ करके मुझे प्रणाम किया, मित्र कहेंगे आ करके हृदय से लगा लिया, छोटे कहेंगे मेरे मस्तक पर हाथ रख करके आशीर्वाद दिया तो रामायण सौ करोड़ क्या अनादिकाल से अनंतकाल तक जितने जीव होते रहेंगे उतने रामायण बनते जायेंगे। रामायण वह है जिसका अनुभव आपको हो रहा है आप जिसका दर्शन कर रहे हैं। इसलिए ये जो करोड़ के अंक हैं उनकी संख्या के लिए पुस्तकालयों में जाने की आवश्यत्ता नहीं है। उसके लिए तो उस ईश्वर की सर्वव्यापकता और प्रेम और द्वेष में क्या अंतर पड़ जाता है इसका संकेत ग्रहण करना चाहिए। तो भगवान् श्रीराम के चरित्र के संदर्भ की जो अनगिनत रामायण है उनमें भिन्नता है। आपके हृदय में जो राम का रूप है वह दूसरे के हृदय में हो, यह आवश्यक नहीं है। श्रीराम के जिस चरित्र में आपको आनन्द आ रहा हो वहां दूसरे को भी आनन्द आ रहा हो, यह आवश्यक नहीं है। इस तरह से कहा गया कि सौ करोड़ रामायण का निर्माण हुआ और फिर वह बड़ी काव्यमयी भाषा में कहा गया। बंटवारा कैसे हो? तो शंकरजी अलग करने लगे। उनसे पूछा सब लोगों ने, कि "आप बंटवारा करने के बदले में कुछ लेंगे कि नहीं लेंगे और इतने रामायणों में से कितने रामायण आप अपने लिए रखेंगे।" तो उन्होंने कहा कि पूरे सौ करोड़ रामायण आप लोग ले जाइये, मैं बांट देता हूं। "आप कुछ नहीं लेंगे?" "बस मुझे राम नाम दे दीजिए और सारे

रामायण आप ले लीजिए।" क्या अद्भुत बंटवारा है। गोस्वामी जी का वह दोहा आपने पढ़ा होगा-

ब्रह्मा राम ते नामु बड़ बरदायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि सत मई लिए महेस जिय जानि।।

शंकर जी ने यह मान करके बड़ा विचित्र दृश्य उपस्थित किया- रामायण पूरा लें कि रामनाम का दो अक्षर लें, इसका अर्थ यह है साधारण व्यक्ति को तो रामायण पूरा पढ़के ही आनन्द आता है और आना चाहिए। उसमें नौ रस हैं, काव्य का आनन्द हैं, दर्शन का आनन्द है, विवेचन का आनन्द है। पर शंकर जी जानते हैं कि राम ही तो वह मुलतत्व है, जिसका विस्तार रामायण है, जिसमें रामायण पढ़ने का फल है। अंत में दो अक्षरों में ही अपने आप को एकाकार कर लेना, मानों इस वृक्ष विस्तार के मूल में जो बीज तत्व है उस बीज को समझ लेना। वस्तुतः बुद्धिमान व्यक्ति वह है कि जो बीज को पकड़ ले। गुरू ने शिष्यों से कहा, जाओ तुम बरगद ले आओ। कुछ मजदूरों को ले करके, फावडे ले करके, लगे बरगद के वृक्ष कि जड़ खोदने। पर कितने समय लगेगा, कब वह खुदेगा और कब उठावेंगे, कितने व्यक्ति उठावेंगे, उन शिष्यो में से एक शिष्य आया - तुम बरगद नहीं लायें? गुरूजी मैं ले आया -लोगों को लगा इतना बड़ा झूठा चला आ रहा है, कह रहा है ले आया - कहां है बरगद ? उसने मुट्ठी खोल दिया उसमें वट का एक बीज था। उसने कहा यह है वट। गुरूजी ने विवेक की परीक्षा ली और समझ गया कि वह कितना बुद्धिमान है कि वह जानता है कि यह विस्तार जो है वह मूलतः बीज में ही निहित है और इसलिए वह भी बीज के माध्यम से वट ले आया। इसी प्रकार से समस्त विश्व प्रपंच के मूल मे जो अक्षर तत्व है, उसको जानने वाले भगवान शिव, ज्ञानघाट के परमाचार्य। कहते हैं कि बस राम नाम और राम नाम क्यो ? वे तो उस स्थिति में पहुंचे हुए है एक बार पार्वती जी बैठे हुई थी किसी ने आ करके कहा कि रावण आ रहा है, शंकर जी नेत्र मूंद करके ध्यान में डुब गये, पार्वती जी को लगा कि रावण से क्या इतना प्रेम करते हैं। बड़ा आश्चर्य है कि उसका स्वागत सत्कार न करके आंखें मूंद कर बैठ गये - पर दूसरे दिन बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब

किसी ने कहा राजा तो भी वही, रात्रि शब्द कहा तो भी वही समाधि। पार्वती जी से नहीं रहा गया। उन्होंने कहा महाराज एक प्रश्न मैं करूंगी पर प्रश्न करते हुए शब्द में वह अक्षर तो आवेगा। महाराज मैं जानना चाहती हूं कि रावण राजा, रात्री इन शब्दों को सुन करके आप समाधि में क्यों चलें जातें है? शंकर जी ने कहा- पार्वती तूमने बड़ा अनर्थ किया आज तक इन शब्दों को मैंने सुना ही नहीं था- क्यों ? जब भी किसी शब्द के प्रारम्भ में रा निकल जाये तो मैं समझ लेता था कि राम ही होंगे और किसी का नाम कौन लेगा तो मैं तो रा सुन करके ही समाधि में चला जाता था-

रकारादीनि नामानि, श्रृण्वतां मम पार्वति।
मनः प्रसन्नतां याति ,रामनामभिशंकया ।।

अक्षर तत्व का मूल, समस्त ब्रह्माण्ड तीन अक्षरों में समाया हुआ है एक रकार में ही वह बीज, उस बीज का ये विस्तार- यह वह निरूपण है, तत्व ज्ञान है जिसका परिणाम होता है कि व्यक्ति उस नाम तत्व को जान करके -

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें ।।

(१-२२-८)

और तीसरा है भक्तिघाट। चारों घाट की याद तो कर ही लें कम से कम। उसमें भक्तिघाट वाला न तो विधि प्रधान है न तो निरूपण प्रधान है। वह है विश्वास प्रधान। जब शबरी जी से भगवान जल की महिमा का वर्णन करते हैं तो विधि और निरूपण के स्थान पर वे कहते हैं-

मंत्रजाप मम दृढ़ बिस्वासा।

(३-३५-१)

विश्वास माने जैसे नन्हें बच्चे से अगर आप ये पूछ दें कि भई यह अम्ब शब्द जो हैं, माँ शब्द जो है, इसकी धातु क्या है, इसका प्रत्यय क्या है, यह शब्द क्यों इस रूप में है? वह कुछ नहीं जानता, बिचारा इतना जानता है कि जब वह माँ को पुकारता है तो माँ दौड़ी चली आती है। तो बच्चे के मन में महिमा का बोध नहीं है। केवल माँ के प्रति विश्वास है कि इस शब्द को सुन करके माँ आती है। वह शब्द हमें बड़ा प्रिय है। हमारे

लिए सब कुछ है। इसलिए गोस्वामी जी ने कहा कि मेरा रामनाम तो भाव से कुभाव से, अनख से, आलस से भी आप जप कीजिए तो दसों दिशाओं में मंगल हो जायेगा।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(१-२७-१)

गोस्वामी जी की वह अनुभूति है और वैसी आपकी वृत्ति हो तो आपको भी वही लगेगा । उनसे पूछा गया कि आप रामनाम को क्या समझते हैं, रा और म अक्षर आपको क्या लगते हैं तो उन्होंने विनयपत्रिका में उत्तर दिया कहा-

मेरे तो माय बाप दोइ आखर, हौं सिसु अरनि अरां।

(वि.प.२२६)

रा और म मेरे लिए माँ और बाप की तरह हैं और मैं जब उनका नाम लेता हूँ तो जैसे लगता है कि माँ को पुकार रहा हूँ पिता को पुकार रहा हूँ विश्वापूर्वक भी जप होता है, विज्ञान के और निरूपण के माध्यम से भी जप होता है, विधि और क्रिया के माध्यम से भी जप होता है और सभी का बड़ा महत्व है। किन्तु जप का सर्वश्रेष्ठ रूप तब है जब जप जो है यज्ञ बन जाए, जप तो सभी प्रकार के व्यक्ति करते हैं पर जप के साथ जब जप यज्ञ के रूप में परिणत हो जाए तो भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं-

यज्ञानाम् जपयज्ञोस्मि..........

यज्ञों में जपयज्ञ मैं ही हूँ और कल जो प्रसंग चल रहा था कि रामायण में अनेक महापुरूषों का चरित्र है महाराज दशरथ का, महर्षि विश्वामित्र का और, राजर्षि जनक का उनके चरित्र में यज्ञतत्व के अनेक रूप दिखाई देते है किन्तु जो यज्ञ का सर्वश्रेष्ठ रूप है वह क्या है? तो यज्ञ का जो सर्वश्रेष्ठ रूप है उसको आप इस दृष्टि से विचार करके देखिए कि अन्न की आहुति देना, यज्ञ की पहली कक्षा है और उसके पश्चात् कामना की आहुति देना, यज्ञ की दूसरी कक्षा है और तीसरी कक्षा है कामना की आहुति देने के बाद जो फल है उसे भगवान् को अर्पित कर देना यह तीसरे का रूप है। अन्न के द्वारा यज्ञ,अन्न की आहुति देकर फिर कामना की आहुति देने के बाद भी जो फल मिले उस फल की मीठी बात आती

है- महाराज जनक का जब अंतिम क्षण शरीर छूटने का था तो आ गये दिव्य दूत लेने के लिए, दिव्य पार्षद आ गये- महाराज जनक को उन्होंने बैठाया और लेकर के चले तो नरक के रास्ते से लेकर के गये तो नरक की भीषण दुर्गन्ध, विमान उधर से निकला तो इतनी सुगंध फैली कि नरक निवासियों ने पुकार करके कहा कि कौन महापुरूष है कि जिसके जाते हुए शरीर के संस्पर्श से जो वायु बह रही है उससे हमें इतनी शीतलता मिल रही है थोड़ा और आप रूक जाइये तो महाराज जनक ने तुरन्त कहा उन दूतों से कि हम तो यही रहेंगे। जब मेरे रहने से उनको इतना सुख मिलता है तो मैं यही रहूंगा-नहीं महाराज ये तो नियम के प्रतिकूल है जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसके अनुकूल उसे रहना पड़ता है। इन्होंने पाप किये हैं तो इन सब को पाप का फल भोगना है, आपने नहीं किये है आप यहां नहीं रहेंगे। कभी एक बार कोई भूल हो गयी थी तो आपको नरक के मार्ग से ले जाया रहा है। लेकिन आप में तो समस्त पुण्य हैं। मैं वे सब इन नरक के प्राणियों को दान देता हूं। वे सब लाखों प्राणी सचमुच जनक के इस पुण्य प्रताप से स्वर्ग में चले गये पर जनक ने कहा कि मैं यही रहूंगा - क्योंकि जब मैंने सारा पुण्य दे दिया तब मेरा ऊपर जाने का क्या अधिकार हैं। उन्होंने यही कहा कि आपने पुण्य दे दिया पर पुण्य दे देने का फल जो है वह तो और ऊंचा है इसलिए आप और भी आगे के अधिकारी हैं। इसका अभिप्राय है कि निष्कामता कि बाद भी जब कोई व्यक्ति कामना की आहुति दे देता है तो उसकी स्थिति तो और भी ऊंची हो जाती है। पर उसको भी जिसने समर्पित कर दिया उसके लिए भगवान् कृष्ण ने -मैंने जैसा कहा कि रामायण में और गीता में बड़ा साम्य है। बाद में तो एक बृहद् ग्रंथ भी लिखा गया और उसमें श्रीमद्भागवत में और रामचरित मानस में भगवान राम के और भगवान् कृष्ण के तुलनात्मक वर्णन की चेष्टा की गयी है वह इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है। तो उसका मूल तत्व यही है कि वस्तुतः भगवान् राम के रूप में और भगवान् कृष्ण के रूप में जब आप दोनों को पावेंगे, उन दोनों को मिला करके यदि आप पढ़ें तो आपको और भी अधिक आनन्द की अनुभूति होगी। भगवान् कृष्ण ने यज्ञ कर्म का वर्णन करने के बाद फिर

अंत में अर्जुन से कहा क्या-बोले यज्ञ के द्वारा कामना भी पूर्ण होती है, निष्कामता तो बहुत अच्छी है पर निष्कामता से भी ऊंची स्थिति तब है जब-

यत् करोषि यद्श्नासि, यज्जुहोषि, ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्वमदर्णम्।।

(गीता,९-२७)

तुम जितने यज्ञ करो, पूजा करो, पाठ करो, क्रिया करो सबके सब मुझे अर्पित कर दो। अब कामना नहीं है तो जो कर्म हुआ उसको भी भगवान को अर्पित कर दो। इसको लेकर के बड़ा मनोहारी उपाख्यान आता है- जब युद्ध समाप्त हुआ तो युधिष्ठिर को लगा कि युद्ध में न जाने कितने लोगों का वध हुआ है, बड़ा पाप हुआ तो पाप को मिटाने के लिए यज्ञ किया जाए और यज्ञ के विधान के लिए निमंत्रण देने के लिए भीमसेन को भेजा गया-तुम द्वारिका में जा करके भगवान कृष्ण को-बिना उनके यज्ञ कैसे पूरा होगा- बुला ले आओ। भीम गये । जब उन्होंने कहा कि महाराज पधारिये हमारे बड़े भ्राता युधिष्ठिर जी ने यज्ञ करने का निर्णय किया, तो मुस्कुरा क रके कहने लगे यज्ञ की क्या आवश्यता - महाराज इस युद्ध में इतना पाप हुआ है इसको मिटाने के लिए आवश्यकता है कि हम यज्ञ करें। तो भगवान् ने कहा कि इसके लिए यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं है जितना पाप हुआ है सब हमें दे दो। अर्जुन से तो पहले कह चुके थें-

सर्वधार्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंवा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता,१८-६६)

जब उन्होने यह कहा तो भीम ने विरोध भरा पर बड़ा मीठा उत्तर दिया। नहीं महाराज, हम युद्ध के पाप आपको अर्पित नहीं करेंगे -क्या - अरे मैंने सुना है कि आपको जो अर्पित किया जाए उसका हजारों गुना करके आप लौटाते हैं और वहीं हम लोगों ने पाप अर्पित किया और आपने उसे हजारों गुना करके लौटाया तो क्या होगा-तब यज्ञ करने के बाद पाप नष्ट हो करके जो पुण्य होगा वे हम आपको अर्पित कर देंगे। भगवान् मुस्कुराने लगे। भावना यह कि हम आपको अपवित्र वस्तु कैसे

अर्पित करें। हम तो श्रेष्ठ कर्म ही, ऐसा कर्म जो पाप मुक्त हो वह अर्पित करेंगे। यह समर्पण की भावना बड़ी उच्च भावना है और इस क्रम में अगर विचार करके देखें तो जनक के चरित्र में समर्पण की भावना है। दशरथ के जीवन में अन्न की आहुति है और उसके समर्पण की भावना है। दशरथ के जीवन में अन्न की आहुति है और उसके द्वारा उन्हें चार पुत्र प्राप्त हुए। विश्वामित्र के यज्ञ में कामना की आहुति और उन्होंने साक्षात् ईश्वर को ही पा लिया। महाराज के जीवन में जो धनुषयज्ञ है वो समर्पण यज्ञ है। जनकनंदिनी सीता का जो अर्पण है महाशक्ति का जो अर्पण है, वह समर्पण यज्ञ है। पर इस समर्पण यज्ञ से भी जो श्रेष्ठ यज्ञ है जो कल कथा के अंत में बात कही जा रही थी शायद आपको प्रारम्भ में लगा कि वह तो बात भूल ही गये। नहीं, उसका अभिप्राय यह था कि समर्पण से भी आगे की एक स्थिति है और वह स्थिति कौन सी है जिसको कहते हैं जपयज्ञ -तो जपयज्ञ में किस वस्तु की आहुति दी जाती है। बोले जहां पर अहंता और ममता की आहुति दे दी गयी। क्योंकि समर्पण में भी तो एक सात्विक 'मैं' बचा रहेगा- मैंने भगवान् को अर्पित किया मैंने भगवान को यह भेंट किया। जब आप किसी को अर्पण करते हैं तो मैं अर्पण करने वाला हूँ ऐसी वृत्ति तो बची रहती है इसलिए श्री आचार्य महाराज जी ने कहा प्रभु, हम जब यह सोचने लगे कि आपको समर्पण करें तो फिर हमको लगा कि कौन सी वस्तु है जो मेरी है जिसे मैं आपको अर्पित करूँ-इसलिए उन्होंने कहा-

किन्तु समर्पयामि ते

मेरे अन्तःकरण में तो यही प्रश्न आता है कि आप को क्या समर्पण करें। जपयज्ञ माने रामनाम में तो अग्नि हैं ही रकार में अग्नि है और उस मंत्र के उस जप के यज्ञ में पूर्ण यज्ञ तब जप बन जाता है जब उसमें मैं जप करने आ रहा हूं। मैंने इतना जप किया। जैसा लोगों को धन का अभिमान होता है वैसे इतना धर्म मेरे पास है। कई लोगों को यह अभिमान होता है इतना जप मैंने किया एक लाख, दो लाख दस लाख करोड़ इस प्रकार का एक सात्विक अभिमान होता है। सात्विक अभिमान मनुष्य को सत्कर्म की प्रेरणा देता है। इसलिए अयोध्या में साढ़ेसाती आयी और वह साढ़ेसाती

मंथरा के रूप में आयी। कैकेयी की दुर्बुद्धि के रूप में आयी, और वह साढ़ेसाती तो बड़ी त्रासवाली थी, बड़ी भयानक थी और वह साढ़ेसाती कि कितना अनर्थ कर दिया! अयोध्या में अमंगल ही अमंगल ऐसा लगने लगा-

घर मसान परिजन जनु भूता। पति हित मीत मनहुँ ज़मदूता।।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं।।

(२-८२-८)

बस, अगर कोई प्रसन्न दिखाई दे रहा था तो-

कैकेयी हरषित यहि भांती। मनहु दव लाइ किराती ।।

(२-१५९-३)

वस्तुतः उसका सूत्र ये हैं- कैकेयी को बड़ा माना जाता था अयोध्या में, उनकी पूजा होती थी अयोध्या में। लोग उनका गुण गाते थे लेकिन वह अयोध्या की महान विभूति मानी जाने वाली महारानी कैकेयी इतना अनर्थ कर सकती है उसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। वह अनर्थ मानों उसका संकेत यह है कि जो जल आपके स्नान कराने में स्वच्छ कराने में सहायक है वही जल जब काई बन जाता है काई भी तो जल से ही बनती है लेकिन वही काई के रूप में जल व्यक्ति को अशुद्ध बनाता है। विशेष रूप से इसका अर्थ है कि जहां जल सिमट जाये, जल अधिक क्षण तक रूका ही रहें मानो कैकेयी के उस दुर्बल स्थान को मंथरा जानती थी। इतनी ऊँची बातें करती है लेकिन यह जो ममता है इनकी और इनकी अहंता विद्यमान है। कैकेयी को बड़ा गर्व इस बात को ले करके है जिसको उन्होंने मंथरा के सामने प्रकट किया। जब मंथरा ने आ करके महारानी कैकेयी के कहा कि राम को तो राज्य मिलने वाला है। उसे यह विश्वास था कि इसको सुन करके कैकेयी जी को अच्छा नहीं लगेगा पर उसने देखा कि कैकेयी तो बहुत प्रसन्न हो गई और प्रसन्न हो करके उन्होंने कहा कि मंथरा अगर सचमुच यह समाचार सत्य है, क्योंकि मुझे पता नहीं तो आज मैं यही कहुंगी कि तुम्हें जो मांगना हो मांग लों-

राम तिलक जौ साँचेउ काली। देउँ माँगु मन भावत आली।।

(२-१४-४)

मंथरा के स्थान पर दूसरा कोई होता तो निराश हो जाता कि जब इतना ऊंचा स्नेहभाव है तो मेरी बात क्या सुनेंगी। पर रामायण के महानतम धैर्यशाली पात्रों में मंथरा है। अकेला व्यक्ति कितना बड़ा अनर्थ, कितनी बड़ी क्रांति, अशांति पैदा कर सकता है इसका दृष्टांत मंथरा हैं। एक बार हमारे स्नेही पत्रकार थे गंगाचरण जी निगम, कार्य निवृत्त होने लगे तो मेरे उनके नाते को देख करके पत्रकारों ने मुझे भी बुला लिया और फिर वे कहने लगे संवाददाता का कर्तव्य और पत्रकारिता पर भी कुछ कह दीजिए- तो मैंने यही कहा कि दो प्रकार के पत्रकार है या संवाददाता हैं- एक मंथरा है। कितनी उसकी कूट बुद्धि है, कितनी चालाकी है, कैसे वह सत्य में झूठ को मिलाना जानती है, कैसे वह हृदयों को बदलना चाहती है। कहने के लिए बहुत से लोग अपनी निस्वार्थता का ढोल पीटते हैं। तो प्रसन्न नहीं होना चाहिए, सावधान हो जाना चाहिए। मंथरा ने सबसे पहले कैकेयी जी से कहा राज्य मिले तो मैं तो दासी की दासी रहूंगी मेरे हृदय में कोई स्वार्थ नहीं है। यह पहला एक प्रभाव डाला-

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी चेरि छँड़ि अब होब कि रानी।।

(२-१५-६)

कई लोग यही चौपाई उद्धृत करते हैं कि तुलसीदास जी ने समाज को आलसी और निकम्मा बना दिया कि-

कोउ नृप होउ हमहि का हानी।

(२-१४-६)

वे भूल जाते हैं कि यह मंथरा का वाकय है और वह वाक्य कह करके वह सचमुच राजसत्ता को पटक देती है। उसका यह भाषण तो केवल अपने सामने वाले को विश्वास कराने के लिए है और ऐसे ढंग से उसने बात रखी। क्यों रखी क्यों सफल हो गई क्योंकि कैकेयी जी से उसने पूछा-प्रत्येक माँ को अपने पुत्र से प्यार होता है। राम तो आपकी सौत कौशल्या के बेटे हैं। आप उन्हें इतना क्यों चाहती है और कैकेयी जी ने कहा- मंथरा तुम नहीं जानती हो-

कौसल्या सम सब महतारी।

(२-१४-५)

राम तो अपनी माँ कौशल्या के समान ही सब माताओं को चाहते हैं- अच्छा तो कौसल्या जी, सुमित्रा जी अन्य माताओं के समान ही आपको राम चाहते हैं, नहीं-नहीं, अन्य लोगों से तो बराबर प्रेम करते हैं, पर मुझसे तो वे सबसे अधिक-

मो पर करहिं सनेहु बिसेषी।

(२-१४-६)

यही अभिमान की मांग है सबसे बराबर का व्यवहार कीजिए पर मुझे अधिक महत्व दीजिए। तो कोई अर्थ हुआ। अब सबके बराबर अगर हमें मान लिया फिर क्या हमारी विशेषता रही। यह जो कैकेयी की दुर्बलता है-

मो पर करहिं सनेहु बिसेषी।

(२-१४-६)

मंथरा ने पूछा, कैसे पता चला-

मैं करि प्रीति परीछा देखी।।

(२-१४-६)

मैंने परीक्षा ले करके देखा है। मंथरा मन ही मन हँसी। परीक्षा तो संशय में ही ली जाती है, कभी न कभी संदेह हुआ होगा कि पता नहीं राम मुझे अधिक चाहते हैं या अपनी मां को। तो बस संदेह को उभारना ही तो है। और उन्हों ने यही कहा कि हाँ परीक्षा तो ली जाती है पर क्या एक ही बार ली जाती है क्या? वह बार-बार ली जाती है। वह दिन बीत गये, अब तो राम राजा हो गये भैया लक्ष्मण युवराज हो जायेंगे, भरत को कारावास में डाल दिया जायेगा और इतना ही नहीं, आपको दासी बन करके कौशल्या की सेवा करनी पड़ेगी। सेवा का भयानक चित्र प्रस्तुत किया-भई भूत बीत चुका वह तो पता है क्या हुआ, वर्तमान सामने है, पर भविष्य के विषय में तो आप चाहे जितनी भयानक से भयानक कल्पना करा दीजिए, और अच्छी कल्पना का उदय करा दीजिए। जब कैकेयी ने सुना कि अच्छा मुझे दासी बन करके रहना पड़ेगा, भरत को कारागार में डाल दिया जायेगी—मंथरा ने कहा—

जौ सतु सहित करहु सेवकाई। तो घर रहउ न आन उपाइ।।

(२-१८-८)

बेटे के साथ सेवा करनी पड़गी और कैकेयी का अभिमान? मैं यहाँ रह करके सौत की सेवा करूंगी?

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई।।

(२-२०-१)

मैं सारान जीवन अपने मायके में नैहर में जाकर व्यतीत कर दूंगी पर मैं सौत की सेवा नहीं करूंगी। मानो संकेत क्या था- सद्‌गुण होते हुए भी अपनी विशेषता, अपनी उदारता, अपना 'मैं'। मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ यही वृत्ति उनके जीवन में प्रेरक के रूप में विद्यमान है और ज्योंही ऐसा लगा कि राम बदल गये हैं, वे तो जरा भी नहीं बदले लेकिन यह भ्रम उत्पन्न कर दिया इस चतुर पत्रकार ने। निश्चित रूप से बात रखने की कला कैसी बढ़िया है। एक संदेह पैदा कर दिया। आप जानती हैं कि रामराज्य देने के जो कार्य चल रहे हैं।

आपसे पूछती हूँ कि क्या कारण है कि यह निर्णय आपसे छिपाया गया। अब संशय तो उत्पन्न हो गया। हुआ यह था कि महाराज दशरथ ने निर्णय किया और सोचा था कि महारानी कैकेयी को यह समाचार मैं स्वयं जाकर दूंगा तो कितनी प्रसन्न होंगी और मैं महारानी से कह सकूंगा कि जो शुभ समाचार देता है उसको पुरस्कार मिलता है। आपको मैं इतना प्रिय समाचार दे रहा हूँ आप मुझे बदले में क्या देंगी? वह श्रृंगारिक रस की भावना में डूबे हुए थे। लेकिन मंथरा ने कहा-

भयेउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू।

(२-१८-३)

आज तुमको समाचार मिला है कितना बड़ा षड्‌यंत्र है और योजना को इतनी दूर तक फैला दिया। ऐसी खोजी पत्रकार निकली कि उसने कहा कि यह योजना पंद्रह दिन की नहीं थी। भरत ननिहाल क्यों गये- अब ननिहाल तो गये थे, मामाजी आये थे ले गये थे। लेकिन उसने कहा कि कौशल्या बड़ी गहरी हैं, आप भोली-भाली हैं और कौशल्या ने देख लिया कि आपसे महाराज बड़ा प्रेम करते हैं तो उनको अच्छा तो लगता नहीं था, पर वह इतनी गंभीर है कि उन्होंने अपने को छिपा रखा-

चतुर गभीर राम महतारी।

(२-१८-१)

और इसलिये उन्होंने महाराज दशरथ को प्रेरित किया कि भारत को यहां से ननिहाल भेज दीजिये। वर्षों पहले से यह योजना चल रहीं है- आप भेज दीजिये उनकों ननिहाल में। उसके बाद धीरे-धीरे राम के राज्य की घोषणा कीजिये जिससे भरत की, और ननिहाल की ओर से कोई बाधा न पड़ने पावे-

पठये भरत भूप ननिऔरे। राम मातु मत जाने रौरे।।

(२-१८-१)

सचमुच संशय उत्पन्न होने लगा। बुद्धि ऐसी भ्रमित हो गयी कि बात तो है-भरत गये इतने दिनों तक नहीं लौटे। अगर वह नहीं आ रहे थे तो महाराज को बुलावा तो भेजना चाहिए था पर उन्होंने बुलाया ही नहीं। पंद्रह दिन से तैयारी हो रही है मुझसे छिपाया गया और यह संशय जब एक बार उत्पन्न हो जाता है, जब यह सर्प काट लेता है किसी को तो-

संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहिर कुतरक बहु ब्राता।।

(७-९२ख-६)

सारे कुतर्क-और तब कितना बदल गयी कैकेयी जी। उनकी अहंता ने, उनकी ममता ने सब किया और फिर उसके पश्चात् आप पढ़ते हैं कि महाराज दशरथ बड़े आनन्द से चले जा रहे हैं कैकेयी जी को सूचना देने के लिए-

सांझ समय सानंद नृपु, गयउ कैकेई गेहुँ।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेहुँ।।

(२-२४)

जैसे कठोरता के भवन में स्नेह साकार हो करके जा रहा है। महाराज दशरथ गये, कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए स्तुति करने लगे-

बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर।।

(२-२५)

हे सुन्दरी, हे सुंदर नेत्रवाली मृगलोचनी, गजगामिनी, अपने क्रोध का कारण कहो और मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ तुम कहोगी तो मैं राजा को दरिद्र बना दूगा, तुम कहोगी तो मैं दरिद्र को राजा बना दूंगा-

कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू।।

(२-२६-१)

और जरा जोश में आ गये, बोले अगर तुम्हारे प्रति किसी के मन में जरा भी विरोध हो तो मैं उसका सिर काट दूंगा-मानो एक कामी बोलने लगा-

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी।।

(२-२५-३)

और मनुष्य तो कीड़ मकोड़े की तरह हैं। राजा के लिए प्रजा प्राण के समान ही है पर कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए वह बार-बार बोलते जा रहे हैं-पर वह बोल ही नहीं रही है-क्यों नहीं बोल रही है-गोस्वामी जी ने कहा-

जागत मनहु मसान।

मसान साधना कैकेयी की हो गयी। उन्होंने दीक्षा ले ली है और शास्त्र का विधान है कि जप करते समय जो न बोले वही सर्वश्रेष्ठ है, इसलिये मंत्र का जप कर रही है। दशरथजी कुछ भी बोले पर वह बोल नहीं रही है। बीच में बोल जाए मशान में तो फिर साधना अधूरी रह जायेगी। कौन से मंत्र का जप कब से प्रारम्भ किया है-

क्या दीक्षा ले ली है? हाँ ली है दीक्षा-क्या गुरुदेव वशिष्ठ से?

बोले नहीं-गुरु वशिष्ठ तो थे कुल गुरु-अब तो मंथरा देवी इनको दीक्षा दे चुकी हैं। मंथरा और दीक्षा-गोस्वामी जी ने उपाधि दी। जब किसी की प्रशंसा करते हैं तो कहे भक्त शिरोमणि-मंथरा के लिये तुलसीदास जी ने कहा-इनके लिये शिरोमणि ही कहाना उचित नहीं हैं-लिखा-

लखइ न भूप कपट चतुराई।
कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई।

(२-२६-६)

करोड़-करोड़ कुटिलों में भी जो सबसे ऊँची कुटिल है ऐसे कुरु से उन्होंने दीक्षा ले ली और जानते हैं दीक्षा में कौन सा मंत्र लिया-वही मंत्र जो अधिकांश लोग घर-घर जपते हैं और वह मंत्र एक ही था कि देवी कुछ भी हो अपना, अपना ही होता है बड़ा व्यापक मंत्र है-बात-बात में

लोग आपस में कहते हैं। अरे भई अपना तो अपना ही होता है। अपने क्या-क्या कर देते हैं। पराये भी कभी बहुत अच्छे सिद्ध हो सकते हैं। लेकिन मंत्र तो यही है और वही उस मंत्र को-मंत्र तो बहुत अच्छा है लेकिन उस मंत्र के साथ यह वाक्य जुड़ा हुआ हो कि अपना, अपना ही होता है पराया, पराया ही होता है। पर सर्वदा अपना तो केवल ईश्वर ही है। तो मंत्र पर अगर हम मान लें कि हमारे शरीर से जिसका जन्म हुआ वह अपना है और जो अलग है वह पराया हो गया। वह एक द्वेष, भेद, ईर्ष्या और उसे दृढ़ करके मंत्र का, उसी मंत्र का जप कर रही है। कैकेयी जी को दशरथ जी ने बहुत प्रसन्न करने की चेष्टा की। पर बाद में उन्होंने शपथ लेकर के कहा तुम जो कहोगी वही मैं करूंगा-तब गोस्वामी जी ने कहा-अब प्रकट हो गये वरदान देने वाले देवता-अब वे कह ही रहे हैं। ऐसा जप करने वाले जो मसान साधते हैं वह चाहते हैं कि वे आकर के, चाहे भैरव हो, चाहे प्रेत हों वे आकर के कहें-क्या चाहिए और वे दे दें तो महाराज दशरथ उनकी मृत्यु तो बाद में होगी, प्रेत तो पहले बन गये। मानों प्रेत की भूमिका, मृत्यु की भूमिका ले ली और अंत में वह बरदान उन्होंने मांगा जिससे रामराज्य के स्थान पर अयोध्या मे अमंगल का साम्राज्य छा गया- यह थी साढ़ेसाती। साढ़ेसाती के रूप में जब व्यक्ति की बुद्धि में लोभ की वृत्ति आती है, ईर्ष्या की वृत्ति आती है-कुंडली में ही मत पता लगाया करिये कि कब साढ़ेसाते आ रही है-बस, जब लक्षण देख लीजिये साढेसाती का तो समझ लीजिये आ गयी साढ़ेसाती। जब मंथरा मन पर दिखाई दे तो समझ लेना चाहिए बिना जन्मपत्री में देखे ही और वह साढ़ेसाती तो साढ़े साता बरस में चली जाती है पर यहां तो जीवन भर साढ़ेसाती ही चलती रहती है। ऐसा अमंगल जो आ गया उसे नष्ट करने के लिए कौन सा मंत्र जप है? गोस्वामी जी कहते हैं-

मिटिहहिं पा प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोग सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार।।

(७-२६३)

गोस्वामी जी ने कहा कि-

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा।।

काई कुमति कैकेयी केरी। परी जासु फल विपति घनेरी।।

(१-४०-७)

और उन उत्पादों को नष्ट करने वाला कौन है-भरत का जो चरित्र है वही जप यज्ञ है-

समन अमित उतपात सब, भरता चरित जप जाग।

(१-४१)

जप यज्ञ श्री भरत हैं। इसका तात्पर्य क्या है। समर्पण की भावना जनक जी तक पहुंची ही पर अहं की आहुति जिसने जप यज्ञ में दी, वह तो श्री भरत हैं क्यों ? गुरु वशिष्ठ को जब लगा कि राज्य भरत नहीं स्वीकार करेंगे तो उन्होंने समर्पण का मंत्र दिया-धर्म की और मर्यादा की रक्षा के लिए तुम्हारे पिता ने तुम्हें राज्य दिया है तुम लो-पर अगर तुम सर्वदा राज्य नहीं करना चाहते हो तो बहुत सुंदर उपाय है-

कर्तव्य कर्म का पालन करो और-

सौंपेहु राज राम के आये। सेवा करेहु सनेह सुहाए।।

(२-१७४-८)

जब श्रीराम आवें, पिताजी ने जो राज्य तुम्हें दिया, उसे श्रीराम को अर्पित कर देना। तुम्हारे जीवन में सेवा, समर्पण की ऊँची स्थिति आ जायेगी। पहले धर्म का पालन और बाद में समर्पण-पर वह महापुरुष, वह संत, वह भक्त, जिसके जीवन में समर्पण से आगे की स्थिति है-उन्होंने नहीं स्वीकार किया और उसका अभिप्राय क्या-बोले आप अपनी वस्तु दूसरे को दें तो समर्पण है और आप राह चलते हुए किसी का बहुत बढ़िया भवन देखें और दूसरे से कह दें, लीजिये मैंने आपको समर्पित कर दिया-तो आप ऐसे बुद्धिमान अगर है कि उस पर कब्जा करने पहुंच जायें तो बड़ा भारी अनर्थ हो जावेगा-श्री भरत कहते हैं कि गुरुदेव आप समर्पण के लिये कहते तो हैं, मैं किसका समर्पण करूं, क्यों-अगर मेरी संपत्ति होती तो मैं अर्पण करता। पिताजी की भी वह सम्पत्ति नहीं क्योंकि उन्होंने भी पाया और पूर्वजों में भी किसी की संपत्ति नहीं क्योंकि वह एक से दूसरे को मिलती गयी। संपत्ति के स्वामी कौन है-बोले-

संपति सब रघुपति कै आही।

(२-१८५-३)

जो कुछ है वह हमारे प्रभु का है अब मैं उसका समर्पण करूं तो दूसरे की वस्तु लेकर के हम उसी को दें और उदारता दिखावें। ऐसा जिनके जीवन में अहं का अभाव हो जाए, जब ममता और अहंता दोनों की आहुति दे दे तब मानों वह यज्ञ, जप यज्ञ जहां जप अग्नि में अहंता और ममता मिट गयी। श्री भरत के जीवन में ममता की भी आहुति है और वह आहुति वही थी कि जब कैकेयी के लिये उन्होंने जिन शब्दों का प्रयोग किया। लगा कि क्रोध से भरे हुए हैं पर उस क्रोधाग्नि में उन्होंने कैकेयी की ममता को ही जला करके नष्ट कर दिया। जब उन्होंने कहा-

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ। खंड खंड होइ हृदया न गयऊ।।
बर मांगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।।

(२-१६१-१)

इन शब्दों में जब कैकेयी ने सुना-सहम गयी कैकेयी-अरे मैं तो समझती थी मेरा बेटा जब यह सुनेगा कि उसको राज दिलाने के लिये मैंने क्या-क्या नहीं किया तब वह कितना प्रसन्न होगा। इसलिये जब उन्होंने भरत को सूचना दी थी-तुम्हें पता नहीं है बेटा, यहां बहुत अनर्थ होने जा रहा था, पर कोई बात नहीं, है एक दुर्घटना अवश्य हो गयी, छोटी सी, कि तुम्हारे पिता की मृत्यु हो गयी। छोटी सी दुर्घटना-

कछुक काज विधि बीच बिगारेउ।

मृत्यु को आप दुर्घटना नहीं मान रहीं ? बोली चिन्ता की बात नहीं-

भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ।।

(२-१५६-२)

राजा स्वर्ग में गये तो स्वर्ग अयोध्या से अच्छा ही है। बुरे स्थान पर नहीं गये। तो कोई किसी की हत्या कर दे और कहे हमने उसे स्वर्ग भेज दिया, उसको तो अब स्वर्ग भेज दिया। इसके द्वारा क्या वह व्यक्ति यह कहेगा कि हां, मैंने मारने में भी उदारता का परिचय दिया-परिणाम यह हुआ कि-

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ।।

तात बात मैं सकल सँवारी।

(२-१६०-१)

मैंने सब बना लिया और लगा कि इस योजना के पीछे तो मंथरा की बहुत बड़ी भूमिका है। सिंहासन है। सिंहासन पर जब बैठे तो भू न जाए। इसलिये मंथरा को भी पुरस्कृत करना चाहिए। कह दिया-

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी।।

(२-१६०-१)

मानों वह जो अहं ममता थी उसको कैसा आघात लगा? वह भरत की क्रोधाग्नि साधारण क्रोधाग्नि नहीं थी। कैकेयी की ममता की आहुति दे डाली स्वयं तो ममता रहित विरागी हैं ही। पर कैकेयी उसी दिन सोचने लगी-विधवा बन करके, कलंक ले करके कितना मैंने अनर्थ किया और तब जब त्रिकूट में श्रीराम ने पूछा-हृदय से मां के लग गये, मां, कैकेयी मां आपको मेरी याद तो आवश्य आती होगी क्योंकि आप तो मुझसे बहुत प्यार करती हैं। अच्छा बताइये इतने दिनों में सबसे अधिक मेरी याद आपको कब आई-मां ने महारानी कैकेयी ने कहा कि पुत्र मुझे तुम्हारी स्मृति तो आती थी पर जब भरत ने लौटने के बाद जिन शब्दों में मुझे फटकारा उस दिन मुझे तुम्हारी याद जैसी आई वैसी कभी नहीं आई थी। जिसको मैंने वन दे दिया उसने जाते समय क्या कहा और जिसके राज्य के लिये मैंने इतना अनर्थ किया उससे हमें क्या सुनने को मिल रहा है, तो मुझे लगा कि पुत्र से ममत्व जोड़ने योग्य तो तुम ही हो और भरत यही चाहते भी हैं कि मुझसे ममता हटे और हमारे प्रभु राम से जुड़े। उनमें अहं का भाव, मैं है ही नहीं, समर्पण करने वाला मैं कौन होता हूँ, क्या हूँ, इस वृत्ति का अभाव है। और इसीलिये बड़ा मीटा संवाद चित्रकूट में हुआ-प्रभु ने कहा कि भरत तुम मुझे सत्यवादी मानते हो कि असत्यवादी। श्री भरत ने कहा महाराज आप सत्यवादी नहीं है और बोले आप तो साक्षात् सत्य हैं, वादी तो होता है जो एक पक्ष होता है। आप तो साक्षात् सत्य हैं। तो ठीक है भले ही तुम मुझे सत्य कहते है, पर मैं निश्चित रूप से सत्य ही बोलता हूं और आज मैं शपथ लेकर कहता हूं और मुझे इसलिये यह सब कहना पड़ रहा है कि मैंने यह जो सुना है वह सुन करके मुझे बड़ा कष्ट

हुआ। भरत जी से पूछा गया-प्रभु क्यों वन गये-मनुष्य अपने पाप कर्म का परिणाम भोगता है तो श्रीराम को राज्य मिलते-मिलते वन मिला तो कोई पाप हुआ था क्या-तो श्री भरत ने कहा-हमारे प्रभु जो है वो शीलसिंधु हैं शील के साक्षात् विग्रह हैं अपने पाप का फल भोगना तो साधारण व्यक्ति का कार्य है प्रभु ने हमारे पाप का फल स्वयं ले लिया-

मो समान को पाप निवासी । जेहि लगि सीय राम बनवासी।।

प्रभु ने वन लिया तो केवल मेरे लिये, मेरे पाप का प्रायश्चित करने के लिये और उस समय प्रभु ने यहां तक कह दिया कि भरत, मैं तो यह कहता हूं कि-

उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई।।

अगर कोई व्यक्ति तुम्हे मन में भी यह समझे कि तुम कुटिल हो तो उसका लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाए। प्रभु ने ज्यों ही कहा तो लक्ष्मण जी और निषाद राज दोनों बड़े ही शोकग्रस्त हो गये क्योंकि दोनों ने ही कुटिल कहा था भरतजी को, सोचा ही नही था, कहा भी था। यद्यपि उनके कहने के पीछे प्रभु के प्रति प्रेम था, पर कहा तो था कुटिल। प्रभु तो वचन रचना में निपुण हैं, वह समझ गये और तब उन्होंने कहा कि मान लो किसी से भूल हो गयी हो, किसी से पाप हो गया हो तो मैं मंत्र बताये देता हूँ। उस मंत्र का जप करने से लोक परलोक दोनों बन जायेगा-मंत्र उन्होंने कौन सा बताया- बोले भरत, मैं एक वाक्य में कहता हूँ-

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुयस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार।।

भरत, जो तुम्होरे नाम का आश्रम लेगा, तुम्हारे नाम का जप करेगा कितना बड़ा संकेत है संसार के लोक राम नाम का जप करते हैं पर प्रभु, वह जप करते हैं कि नहीं? करते हैं। किसका ? बोले-

भरत सरिस को राम सनेही । जग जप राम राम जप जेही।।

भगवान् ने जाते ही कहा- जो भरत का नाम ले ले, उसका लोक और परलोक दोनों बन जाए। लक्ष्मण जी और निषादराज, दोनों तो पहले से ही भक्त बन चुके थे भरत जी के, अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। श्री भरत श्री राम से मिल करके एकाकार हो जाते हैं और उसका अर्थ है जब तक अहं

है, तब तक दूरी है पर जिसके जीवन में अहं भी नहीं शेष रह गया है ऐसे श्री भरत जब राम नाम का उच्चारण करते हैं तो गोस्वामी जी ने वर्णन करते हुए कहा-

जबहि राम कहि लेहिं उसांसा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहुं पासा।
द्रवहि बचन सुनि कुलिस पषाना। पुन जन प्रेमु न जाइ बखाना।।

(२-२१९-६)

जिनके मुख से जब रामशब्द का ऐसा उच्चारण हो जाता है कि जड़ में भी चेतना का संचार होता है, ऐसे दिव्य महानतम भक्त जिन्होंने अपने अहं और ममता को पूरी तरह से प्रभु के मंगलमय नाम की अग्नि में भस्म कर दिया है। यही है जप यज्ञ और ऐसा जप यज्ञ जिसमें हम पूरी तरह से अहं और मम से शून्य हो जाएं, मैं जप करने वाला हूँ ,मैं जप करूँगा, यह नहीं। अपितु यह लगने लगे कि जैसे मैं कौन होता हूँ जप करने वाला, मुझमें क्या सामर्थ्य है। यह स्थिति जो है भरत है। वह जो समर्पण की भावना से भी ऊपर उठ चुके हैं वही जप यज्ञ के साकार रूप हैं। जब तक अहं शेष है तब तक तो रोग की मूल जड़ है ही, आज नही है तो कल रोग उत्पन्न हो जायेगा। यह है जप यज्ञ और इसका अर्थ है कि क्रमशः जप करते हुए उस स्थिति तक पहुंच जाना जिसमें भरत का जीवन है। यह जप यज्ञ है और धन्य है भुशुण्डि जी, कि पाकरी वृक्ष के नीचे वह जप यज्ञ संपन्न करते हैं। आज इतना ही, कल समापन दिवस हैं, विश्राम दिवस हैं। कल शेष कुछ-कुछ जो इस प्रसंग की बातें हैं कहने की चेष्टा करूंगा।

बोलिये सियावर रामचन्द की जय।

।। श्रीराम शरणं मम ।।

।। श्रीरामः शरणं मम।।

सप्तम

पीपर तरू तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई।।
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजनु काजु नहीं दूजा।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहि अनेक विहंगा।

महानुभावी, भक्तिमति देवियो,

भगवान शंकर ने इन चार वृक्षों के नीचे जो साधनाएं सम्पन्न हो रही है, हो रही थीं उसका बड़ा ही सारगर्भित सांकेतिक वर्णन किया। उन्होंने बताया कि सुमेरू पर्वत पर जाकर मैंने जो दृश्य देखा,पीपल के वृक्ष के नीचे भुशुण्डि जी ध्यान करते हैं, पाकरी के नीचे बैठे करके जप यज्ञ करते हैं, आम के नीचे मानसपूजा और वट के नीचे वे कथा कहते हैं। एक बड़ी समस्या थी मेरे सामने । अलग अलग प्रसंग चुने गये थे चार घाट और अन्य केवट आदि। इस रूप में तो अब एक कठिनाई थी कि मैं किसी एक प्रसंग को चुनूं। पर एक ऐसा प्रसंग रखने के चेष्टा की गयी जिसमें सभी का कोई न कोई सामाधान प्राप्त हो सके और संतोष हो सके। इसमें मानो मूल उद्देश्य यही है कि मनुष्य का अन्त:करण कैसे शुद्ध हो? देखिये, मनुष्य के मानव स्वभाव की विडम्बना है कि अगर कोई व्यक्ति अपने घर से कूड़ा निकाल कर आपके दरवाजे की ओर डाल दे तो इसको ले करके झगड़े हो जाते हैं, लड़ाइयां हो जाती है कि इसने अपने घर का कूड़ा मेने घर के सामने क्यों डाल दिया। पर कैसी विडम्बना है मनुष्य की बुद्धि, कि बाहर की वस्तुएं हैं जैसे धूल, वह चाहता है कि मेरे दरवाजे पर कोई न डाले। पर सबसे बड़ी गंदगी है उसके लिये वह आमंत्रण देता है कि और, डालिये। वह क्या है- रामायण में कह दिया गया-

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा।
(७-१२०-२२)

दूसरे की निंदा से बढ़ करके कोई पाप नहीं है। अब कोई जब निंदा सुनाने लगा, तो अपने मन का कूड़ा बाहर डाल रहा है तो आपको तो दरवाजा बंद कर लेना चाहिए। पर कितनी व्यक्ति की बुद्धि की विडम्बना है कि दरवाजे को और खोल देता है और जितना सुनता है दूसरों की

आलोचना, निंदा वह प्रसन्न होता है। और इसका अभिप्राय क्या है? बाहर की गंदगी को हम इतना बुरा मानते है, पर निंदा के माध्यम से हम उस गंदगी को चाहते हैं और अपने हृदय में संग्रहीत होने देते है, यह कैसी विपरीत बुद्धि है और तब हृदय शुद्ध कैसे हो सकता है, पवित्र कैसे हो सकता है? इसलिये रामचरित मानस में ये जो चारों साधनाएं बताई गयी हैं, इन चारों की अगर विस्तृत व्याख्या की जाया तो बहुत अधिक समय की अपेक्षा है पर उसका समापन? मानो कुछ सूत्र आपके सामने रख करके इसे विराम देना चाहूंगा। और वह सूत्र यह है- जब यह कहा गया कि आप ध्यान कीजिये तो इसका अभिप्राय क्या है- इसकी बहुत सुंदर व्याख्या मानस में है और ध्यान के लिये एक शब्द जो है वह हमारे आपके लिये बड़ा उपयोगी है। और वह क्या है? घर कितना भी बड़ा क्यों न बना हो, पर किवाड न हो तब वह बिल्कुल सुरक्षित नहीं है, चाहे जो व्यक्ति भीतर चला आवेगा, चाहे जो कुछ उठा ले जायेगा। प्रहार कर देगा इसलिये आप आवश्यकता का अनुभव करते हैं कि घर में किवाड़ बहुत आवश्यक है और यह ध्यान क्या है- ये "किवाड" है। मनुष्य का शरीर तो बहुत बड़ा भवन है,पर अधिकांश लोगों के जीवन में उस भवन में कोई किवाड़ नहीं है । अपितु चाहे जो कुछ कूड़ा करकट, बुरे विचार हमारे हृदय में जीवन में पैठ रहे हैं दुर्गुण जितना चाहे प्रवेश पा रहे है। आप यह पढ़ते हैं कि जनकनंदिनी सीता के चरित्र में दो अवसर आते हैं, एक बड़े आनन्द और रस का प्रसंग और दूसरा बड़े ही दुख और वियोग का प्रसंग। दोनों ही प्रसंगों में जनकनंदिनी सीता का जो वर्णन किया गया है उस पर आपने ध्यान दिया क्या। पुष्पवाटिका में जब उन्होने श्री रामभद्र का दर्शन किया तो दर्शन करने के बाद अचानक उन्होने नेत्र मूंद लिये। सखियों को बड़े आश्चर्य हुआ, सामने श्री रामभद्र खड़े हैं और जनकनंदिनी नेत्र मूंद ले रही हैं। पर गोस्वामी जी ने कहा सचमुच बड़ी चतुर हैं, बड़ी सयानी हैं क्यों सयानी हैं? उन्होंने कहा, सखियों को लगा कि बाहर श्री राम को छोड़ करके ये नेत्र क्यों मूंद नही हैं। लेकिन गोस्वामी जी ने कहा, इतनी सयानी हैं कि किवाड़ का कार्य क्या है- आप भीतर से बंद करे लें तो आप भीतर जिसको बुलाना चाहें आपने बुलाया, जिसको चाहा है उसको बैठाया, जिसको आपने अतिथि बनाना चाहा

वह जाना भी चाहे तो आग्रह पुर्वक रोक लिया। गोस्वामी जी ने कहा कि सखियों ने भले ही सोचा हो कि वह नेत्र मूंद हुए हैं, पर उन्होने नेत्र नहीं मूदे हुए हैं-

लोचन मग रामहि उर आनी।

(१-२३१-७)

जनकनंदिनी सीता मर्यादा की मूर्ति हैं। पिताजी की प्रतिज्ञा है कि धनुष तोड़ने वाले को ही जनकनंदिनी वरण करेंगी, किन्तु एक ओर मर्यादा और दूसरी ओर प्रीति। प्राचीनकाल में गन्धर्व विवाह की भी परम्परा थी। परन्तु अगर, वह श्री रामभद्र से बातचीत करें, वार्तालाप करें, व्यवहार में इस प्रकार से प्रभु से परिचय करें बातचीत करें, अपना अनुराग प्रकट करें तो मर्यादा की दृष्टि से उचित नहीं रहेगा और यदि मर्यादा व्यक्ति को अनुराग से सर्वथा शुष्क कर दे, अनुराग और स्नेह को मर्यादा के कारण महत्व दिया ही न जाए तो मानो जीवन में शुष्कता ही शुष्कता है। व्यक्ति में यांत्रिकता ही यांत्रिकता है। एक उपाय बहुत सुन्दर, और सुन्दर क्या है? आप जब समाज में हैं तो समाज की प्रत्येक मर्यादा का पालन करना आपका कर्तव्य है। पर जब एकान्त में आप स्नान करते है, अपनी पत्नी से बातचीत करते हैं, तो उससे तो समाज का कोई संबंध नहीं है, वह तो आपकी अपनी व्यक्तिगत प्रीति और भावना का संबंध है और स्वाभाविक है कि बहिरंग मर्यादा में जो अनौचित्य है, अंतरंग में वह अनौचित्य नहीं है, नग्न हो करके कोई निकले तो अभद्र है पर स्नान घर में अगर कोई नग्न हो तो? अगर कोई सोचे कि नहीं हम इतने भद्र बने रहेंगे कि पूरा वस्त्र ज्यों का त्यों ले करके ही जायेंगे स्नानगृह में, तो बधाई है ऐसे मर्यादावादी को कि जो, उस एकान्त कक्ष में भी अपने को वस्त्र से निरावृत नहीं कर लेता। इन दोनों का सामंजस्य ही जीवन की परिपूर्णता है, भाव जगत में आप स्वतंत्र हैं और बहिरंग समाज में आपके सामने मर्यादा की सीमा है और इन दोनों का सामज्जस्य यहां दिखाई देता है। एक शब्द बिना बोले चली गई। इतनी मर्यादा है बहिरंग जगत में। गोस्वामी जी ने कहा बहिरंग जगत में ऐसा हुआ कि उन्होंने देखा और -

फिर अपुनपउ पितुबस जाने।

(१-२२३-८)

पिताजी की प्रतिज्ञा पूर्ण होने के बाद ही मैं उनका वरण कर सकती हूँ। इसलिये वे पार्वतीजी का पूजन करती हैं। पर अन्तर्जगत की स्थिति क्या है। उन्होंने कहा श्री राम को देखकर सारे जनकपूरवासी स्त्री-पुरूषों ने कितना स्वागत किया, सत्कार किया -

जुवती भवन झरोखन्हि लोगीं। देखिहं राम रूप अनुरागीं।।

(१-२१९-४)

भवन के झराखों से वे श्रीराम की सुन्दरता को देखती हैं, मानों मर्यादा ही भवन है और प्रेम की खिड़की है। इसका अभिप्राय है जिस भवन में झरोखा ही नहो इस डर के मारे कि कहीं झरोखा होगा तो कोई जीव जन्तु पैठ जायेगा। अगर कोई ऐसी स्थिति बना ले। एक सज्जन घोर गर्मी में सलाख लगी हुई खिड़की किवाड़ बंद करने लगे। बंद करके सोने जा रहे थे। मैंने पूछा क्या कर रहे हैं सलाख तो है ही, चोर तो नहीं आ सकेगा इसको तोड़कर के, सरलता से- बोले, वह तो ठीक है लेकिन सांप तो आ ही सकता है। अब इसका क्या अर्थ हुआ- आप कितने शुष्क हो जायेंगे। आपका आतंक और भय आपको इतना भयभीत बना दे तो इससे बढ करके अविवेक कुछ नहीं। अब जनकपुरवासिनी स्त्रियां श्री राम को देखें और मर्यादावादी यह कहे कि यह तो मर्यादा के विपरीत है कि वे एक दूसरे पुरूष की सुंदरता देखे, उसकी प्रशंसा करें, मोहित हों- ऐसी गोस्वामी जी की मर्यादा नहीं थी। वे तो कहते हैं कि-

जुवतीं भवन झरोखन्हि लागी। निरखहिं रामरूप अनुरागीं।।
कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीति।।

(१-२१९-५)

पर उस सौन्दर्य में वासना के स्थान पर समर्पण है। उनको लगता है इतना सुंदर राजकुमार, इनका विवाह किससे होना चाहिए-वहीं प्रीति है कि बस-

जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बरू रचेउ बिचारी।।

(१-२२२-७)

''सखियों-ये कितने सुंदर राजकु मार हैं और हमारी जनकनंदिनी सीता भी कितनी विलक्षण उनका सौन्दर्य है, शील है। दोनों का विवाह हो जाए तो कितना सुखद होगा, हम सब लोगों के लिए। '' मानो मर्यादा

के स्थान पर अमर्यादा नहीं, अपितु प्रेम और सर्मपण की वृत्ति की पराकाष्ठा हैं। अब प्रश्न यह था कि सारे जनकपुरवासियों ने इस तरह से स्वागत किया। तो श्रीसीताजी स्वागत करें कि नहीं? अब जनकपुर की उन स्त्रियों ने तो फू ल बरसा दिये । इस वाटिका में तो फुल ही, फूल लगे थे, वह भी कुछ फूल की पंखड़ियां बरसा सकती थी। पर गोस्वामी जी ने कहा-उन्होंने ऐसे फूलों की बर्षा की जिसे कोई दूसरा देख नहीं पाया- फूल उन्होंने ऐसे बरसाए, कौन से? सीता जी चारों ओर, इधर से उधर देख रही हैं- श्रीराम कहा है- और गोस्वामी जी ने कहा इनके नेत्रों को देखिये, देख करके क्या लग रहा है बोले-

जहाँ बिलाकि मृग सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी।।

(१-२३१-२)

जैसे सफेद कमल की पंखड़ियां बिखर गई। जनकनंदिनी ने अपनी आंखों की भावना से ही सफेद पुष्प कमल की पंखड़ियों को बिखेर दिया और फिर जब अतिथि को देखा, श्रीराम को सामने देखा तो देखने वालों को नहीं लगा पर उन्होंने निमंत्रण दिया, वाणी से निमंत्रण नहीं है, और अतिथि को भीतर ले आई। किस रूप में ले आई-

लोचन मग रामहि उर आनी।

(१-२३१-७)

नेत्र के मार्ग से श्रीराम को अपने हृदय में ले आई- भावराज्य में स्थिति दूसरी है, मर्यादा में दूसरी है और उसके बाद तो गोस्वामी जी ने श्रृंगार और भाव की पराकाष्ठा कर दी। आप किसी अतिथि को लाते हैं- फूल की पंखड़ी बिखेर करके बड़ा अतिथि का सत्कार करते हैं और भीतर ले आते हैं, और जो भी आप चाहते हैं स्वागत, सत्कार भोजन,जल अतिथि को अर्पित करते हैं। गोस्वामीजी से किसी ने पूछा, अच्छा तो श्रीराम को नेत्र के मार्ग से हृदय मंदिर में ले आई तो उसके बाद फिर क्या सत्कार किया यह बता दिजिये। गोस्वामी जी के एक शब्द में श्रृंगार की भी पराकाष्ठा और मर्यादा की भी पराकाष्ठा-

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हेउ पलक कपाट सयानी।।

(१-२३१-७)

बड़ी चतुर हैं, उन्होंने पलकों का किवाड बंद कर लिया। उसके बाद

क्या पूजा हुई वह दूसरे को जानने का कोई अधिकार नहीं है। मानो एक ऐसी भावराज्य की अनुभूति। दर्शन तो हम लोग भी करते है पर किवाड़ बंद नही करना जानते। ध्यान मानो भगवान को हृदय में ले आवें, आ गये, और यदि चले गये, तो इसका अर्थ है कि किवाड़ खुला हुआ था। लेकिन सयानी वह है कि एक बार अगर हृदय मे भगवान की छवि आ जाये तो निकल न पावे इसीलिये किवाड़ बंद करना चाहिये और यह किवाड़ ध्यान है। नेत्र मूंद करके ध्यान करने अर्थ क्या हुआ- किवांड बंद कर लीजिये। अभी किवाड़ न बंद कीजियेगा। उसका आप यों मान लीजिये कि ध्यान माने आपने बंद कर लिया और बंद कर लेने के बाद एक बार हृदय में आने के बाद भगवान् न जाने पावे ऐसी स्थिति जब आ जाये तो समझ लेना चाहिए कि यह ध्यान की चरम स्थिति है। तो अनुकूलता में भी ध्यान करती हैं और जब लंका में घोर प्रतिकूलात है। यहां सब अनुकूलता है, वहां प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता है, यहां सखियां हैं वहां राक्षसियां हैं, यहां गीत गाया जा रहा हैं, वहां डराया जा रहा हैं। लेकिन जब हनुमान जी लौट करके आये तो प्रभु ने पूछ लिया क्यों जनकनंदिनी सीता जीवित हैं? और प्रभु का एक वाक्य था कि-

कहहू तात केहि भांति जानकी। रहति रच्छा स्वप्रान की।।

(५-२९-८)

जनकनंदिनी ने प्रभु से कहा था कि यदि आप मुझे साथ ले चलेंगे तो प्राण और शरीर दोनों आपके साथ जायेंगे, पर अगर आप नहीं ले जायेंगे तो शरीर यहां रह जायेगा, प्राण तो आपके साथ जायेगा ही। मानों प्रश्न यह था कि -

कहहु तात केहि भांति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।

(५-२९-८)

अपने प्राण की रक्षा कैसे करती है? हनुमानजी ने इतना सुदंर उत्तर दिया कि प्रभु गद्गद हो गये। उन्होंने कहा, प्रभु अगर किसी वस्तु को सुरक्षित रखने के लिये किवाड़ बंद कर दिया जाये और उसके बाद ताला लगा दिया जाए और पहरेदार भी खड़ा कर दिया जाये तो क्या संभव है कि अगर किवाड़ अच्छा हो, ताला दृढ़ हो और पहरेदार शक्तिशाली हो तो कोई घुस जाए? जनकनंदनी का प्राण लेने के लिये यमराज तो आते

हैं, बार-बार, पर यहां तो तीनों बातें दिखाई देती हैं और इसलिये उसको लौट जाना पड़ता है। प्रभु से कहते है-

नाम पाहरू दिवस निसि

आपके नाम का जप करती रहती हैं। आपका जो रामनाम है दो अक्षर का, ये मानों दो पहरेदार हैं और किवाड़ बंद हैं—

ध्यान तुम्हार कपाट।

अनुकूलता में भी ध्यान कीजिये प्रतिकूलता में भी ध्यान कीजिये। अनुकूलता में ध्यान कीजिये कि भीतर से भगवान् जाने न पावे और प्रतिकूलता में ध्यान कीजिये कि दुर्गुण हृदय में पैंठने न पावे। हमारे अन्त:करण में वह न पैठ जाए। मानों यह संकेत कितना सुंदर है- बोले- प्रभु जहां आपके नाम का पहरा पड़ रहा हो, ध्यान का किवाड़ बंद हो, और ताला-

लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट।

(५-३०)

प्रभु आप ही बताइये ?प्राण के निकलने का कोई मार्ग बचा हुआ है क्या ? और उसमें भी इस प्रसंग से उसका बड़ा सामंजस्य हैं। जनकनंदिनी राम नाम का जप कर रही हैं। जनकनंदिनी श्रीराम के स्वरूप का ध्यान कर नही हैं। जनकनंदिनी सीता श्रीरामभद्र का हृदय में जो ध्यान कर रही है वह जड़ ध्यान ही नहीं है, उसमें मानसिक आराधना और मानसिक पूजा भी है और एक ही बात शेष रह गयी थी , भगवान् की कथा- उसे हनुमानजी ने आकर पूरा कर दिया। ईश्वर ने सोचा कि यह जीव जो है, चारो ओर से बंद करके बैठ न जाये, मुझे घुसने ही न दे, तो एक- न-एक सुराख बनाये रखो, एक-न-एक सेंधा लगाये रखो जिसके द्वारा हम पैठ जायें। कान क्यों है- बोले भगवद् कथा के सहारे, व्यक्ति के हृदय में पैठने के लिए ही इसे खुला,रखा हुआ है-

श्रृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि।।
प्रविष्टः कार्णरन्ध्रेण, स्वानां भावसरोरूहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्।।

भगवद् कथा का अर्थ क्या हुआ? ये भगवान् का शब्दमय विग्रह हैं।

शब्द के माध्यम से भगवान् पैठते हैं और अगली बात बहुत अच्छी कही गयीं। आप ऐसे अतिथि की कल्पना कीजिए कि जब वह भीतर पैठ जाये तो देखे कि चारों ओर गंदगी बिखरी हुई है,वह लौट जाये कि रहने दो, इतने गंदे स्थान में कौन रहे। पर भगवान् की कथा के रूप में जो भगवान् का शब्दमय विग्रह है, वह जब जाते है तो सारी गंदगी स्वयं साफ करते हैं। कथा का विग्रह है, वह जब जाते है तो सारी गंदगी स्वयं साफ करते है। कथा का उद्देश्य है मनुष्य के हृदय में जो गंदगी है उसको स्वच्छ करके बैठ जाते है। भई तुमने निमंत्रण नहीं दिया तो सेंध लगा के आ गया। तुमने स्वच्छ नहीं रखा तो मैंने स्वच्छ कर लिया और तुम्हारे हृदय में मैं रहूंगा। इसका अभ्रिप्राय है कि जनकनंदिनी के जीवन में वह साधना है कि अनुकूलता में भी किवाड़ प्रतिकूलता में भी किवाड़ और यहां जप भी चल रहा है, ध्यान भी हो रहा है और हनुमान जी ने तो प्रभु को ऐसा चुप कराया। कहा-

प्राण जाहि केहि बाट।

तो हनुमान जी सबसे पहले किवाड़ कहते, बाद में ताला कहते,बाद में पहरेदार कहते, पर क्रम तो उन्होंने उलट दिया। पहरेदार पहले कह दिया-

''नाम पाहरू''

ये माने प्रभु को सावधान किया गया है। महाराज ताला टूट जाए, किवाड़ टूट जाए तो ठीक है, व्यक्ति मान लेता है कि चोर इतना शक्तिशाली था कि किवाड़ तोड़ दिया, पर पहरेदार रखा जाए और पहरेदार के होते हुए चोरी हो जाए, तो आप जानते है व्यक्ति क्या करेगा? सबसे पहले पहरेदार को ही निकालेगा। तुम्हारे रहने से क्या लाभ है, जब तुम्हारे देखते हुए चोरी हो गई। प्रभु आपके नाम का पहरा पड़ा हो और नाम के पहरे से भी अगर प्राण चला जाता तो लोग नाम को ही निकाल बाहर करते। किसी काम का यह नाम नहीं है जो रक्षा ही नहीं कर पाया। इसलिए आपके नाम के लिए आवश्यक है कि आप भले ही यहां बैठे हुए हैं, पर आपका नाम तो उनकी निरंतर रक्षा कर रहा है।

नाम पाहरू दिवस निसि,ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित प्राण जांहि केटि बाट।।

(५-३०)

इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति यदि अपने अन्त:करण को शुद्ध बनाना चाहता है, तो ध्यान का किवाड़ भी आवश्यक है, नाम का जप भी आवश्यक है और साथ-साथ पूजा और पूजा के साथ एक शब्द जोड़ दिया है- मानस। मानस पूजा कहने का अर्थ यह है कि शरीर से पूजा बहुत से लोग करते हैं। यद्यपि हम लोंगो पूजा भी कैसी पूजा हैं। वह तो हम लोग पता नहीं भगवान को ठगना चाहते हैं कि अपने को ठगना चाहते हैं। मुझे लड़कपन की याद आई। कभी घर में पिता जी ने सुपारी ले आना है। मैं लेने गया। तो दुकानदार ने पूछा,पूजा के लिए चाहिए कि खाने के लिए- पूजा के लिए है तो सड़ी से काम चलेगा, खाने के लिए है तो बढ़िया ही चाहिए। पूजा के लिए जो माला होती है वो देख लीजिए कैसी होती हैं। स्वागत में क्या-क्या हार बनाए जाते हैं, पर देवताओं की पूजा में जैसी मालाए होती हैं वही सिद्ध करती हैं कि हम लोग केवल क्रिया के रूप में जो कुछ करते हैं वह तो बिल्कुल हास्यास्पद है। भोग लगाने के लिए हम आप इतने व्यंजन बनाते है और भगवान् के लिए? कोई सबसे सस्ती वस्तु मिल जाए। कैसी विडम्बना है। वस्तुतः हमारी पूजा तो केवल एक परम्परा का पालन मात्र है। अगर यह भाव सचमुच हो कि भगवान् सामने बैठे हुए हैं तो आपको लगेगा कि सबसे सुन्दर माला तो प्रभु को पहनानी चाहिए, नाना प्रकार की वस्तुओं का नैवेद्य है, वह तो प्रभु को अर्पित किया जाना चाहिउ। बहिरंग पूजा में बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति होंगे कि जो सचमुच पूजा को उस भाव में लेंगे। अगर पूजा में वस्त्र हों तो वस्त्र की जगह एक कलावे का धागा, बोले- वस्त्रा भावे -बस जो-जो नहीं देना है उसकी जगह एक धागा रख दीजिए, पूजा पूरी हो गई। अब इतने पर भी भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। तो उन्ही की कृपा होगी, नहीं तो भला इस तरह की पूजा आप किसी दूसरे ही करके देखिए तो फिर पता चलेगा, आपको कि आपकी पूजा का क्या अर्थ है, क्या महत्व हैं। लेकिन एक बहुत बढ़िया बात कही गई - सबके पास साधन नहीं होता। है और नहीं करता, वह तो बहुत ही बड़ा अपराध करता है। पर वह व्यक्ति जिसके पास है ही नहीं, कहां से ले आवे वह बहुत प्रकार के व्यंजन, कहां से ले आवे, बहुत सुंदर माला, सुन्दर से सुन्दर धूप कहां से ले आवे। बड़ी कृपा की। रामजी ने कहा कि बहिरंग पूजा की अपेक्षा मानस पूजा का और

अधिक महत्व है। संसार में उल्टा नियम है। संसार में मानस पूजा से नहीं संतुष्ट होगा व्यक्ति, उसको बाहवाली पूजा चाहिए। कोई अतिथि आवे आप कहे, मन से लड्डू आपको भेंट करते हैं तो वही कहेगा जो रामायण में चौपाई है-

मन मोदकन्हि कि भूख मिटाई।

मन के लड्डू से हीं भूख मिटती है- ये शास्त्र कितने कृपालु हैं। उन्होंने कहा भगवान की पूजा तो बाहर से जैसी अगर उसकी अपेक्षा मानसिक पूजा का व्यक्ति अभ्यास कर ले, तो वह पूजा और उत्कृष्ट है और जिन लोगों को मानस पूजा का रस आता हैं, वे तो धन्य हो जाते हैं। उनकी मानस पूजा केवल मन की कल्पना ही नही रह जाती। पर सूत्र कितना सुंदन है- ध्यान के लिए पीपल, और जप के लिए पाकरी । कल एक सज्जन ने कहा पाकरि का अर्थ बताइये। पाकरि वृक्ष का नाम है, अब कहीं मैं बाग में हो तो दिखा दूं। मैंने कहा भई कोई बॉटनी वाला हो उससे पूछिए, जा करके देख आइये। इतना बता दें कि पाकरि का वृक्ष जो होता है उसमें बड़े की सघन पत्ते होते हैं और उससे धूप भीतर नहीं पैठती है। इसलिए महात्मा स्थान आद के लिए पाकरि का वृक्ष बड़ा पसंद करते है। हमारे गांव में गंगा के पास ही पाकरि का वृक्ष था तो महात्मा जो बहुत विरक्त आते थे, वे उसी पाकरि के नीचे ठहरते थे तो जप जो है वह पाकरि के नीचे। माने जप कैसा होना चाहिए, बिल्कुल सघन जप, जिसमें रंचमात्र कहीं पर छिद्र न दिखाई दे। जप की सार्थकता तब है, जब पाकरि के समान इतना सघन हो जाए, अविरल हो जाए कि उस जप में किसी अन्य वस्तु की स्मृति न हो। और मानस पूजा- बहुत अच्छी बात की गई। मानस पूजा भुशुण्डि जी आम के नीचे ही करते हैं क्यों - आम का नाम आप जानते हैं। आम को संस्कृति में रसाल कहते हैं। कितना मीठा कितना रसीला। कौन ऐसा व्यक्ति होगा कि जिसको आम का रस न अच्छा लगता हो और इसका अर्थ है कि भई मानस पूजा भी कीजिए तो एक यंत्र की तरह नहीं, कि चंदन लगा दिया माला पहिना दिया, धूप कर दिया। आम के नीचे रसपूर्ण हृदय और रसपूर्ण हृदय से मानस पूजा तब होगी जब आप चेतन के रूप में उसका अनुभव करें और उसके लिए समयाभाव के कारण मैं क्या विस्तार करूं- इसका अभिप्राय है कि कोई

आप भगवान से नाता मान लीजिए। रस आपका जीवन में भी कब आता है? वैसे किसी अप्रिय का सम्मान करना पड़े तो व्यक्ति कर लेता है, बोझ भी लगता है। पर अगर कोई प्रिय संबंधी आ जाये, तो कितने रसपूर्ण हृदय से व्यक्ति उसका सम्मान करता है। तो मानस पूजा कौन अच्छी करेगा। जिसका भगवान् से कोई नाता हो और उस नाते को सच मान कर, कोई पुत्र मान कर, गोपियां पति मान कर, ग्वालबाल या निषादराज भगवान् को सखा मान कर। जब उस भावना का हृदय में स्मरण करते हुए हम मानसिक पूजा करेंगे तो उसमें एक आनन्द आवेगा। एक रस आवेगा।

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी बड़े भक्त पुरूष थे वह गये थे वृंदावन में। एक देवी आयी। उन्होंने कहा महाराज आपने ध्यान की बड़ी महिमा बतायी। ध्यान कब करना चाहिए। तो उन्होंने कहा महाराज आपने ध्याान करने के लिए तो सबसे अच्छा प्रात:काल चार बजे का ब्रह्म मुहूर्त है उस में ध्यान करना चाहिए। उस देवी ने कहा महाराज यह तो हमको ठीक नहीं लग रहा क्योंकि हमारा कन्हैया इतना छोटा है कि इतने सबेरे उठूंगी तो उसको जुकाम हो जायेगा मुझसे तो यह नहीं होगा। उन्होंने यही कहा-देवी तुम्हें कोई नहीं बात सकता। तुम इतनी गहराई से इसको अनुभव करती हो कि बालकृष्ण है तो हम इतने सबेरे उनको जगा देंगे क्या -चार बजे हम कहेंगे छोटे बच्चे से कि क्या सो रहे हो, निकम्मे, उठो -उठो ध्यान करो -ऐसा किया जाता है क्या? उन्होंने कहा तुम्हारा हृदय सचमुच ऐसा है कि जिसमें नाते का भान है कि जब मान लिया बालक तो जैसे बालक से लाड़ लड़ाया जाता है, प्यार किया जाता है वैसे ध्यान करते हैं। आपका बच्चा जब जगता है तो आप उसको दूध पिलाते हैं। उसके लिए जिस तरह से आपके मन में प्यार होता है वैसी रसपूर्ण अगर मानस पूजा हो तो?

भगवान् से संबंध का, रस का यह आम जो है, यह राम को भी प्रिय है और काम को भी प्रिय है। काम भी शंकर जी पर आक्रमण करने जाता है तो आम के वृक्ष पर चढ़ करके बाण चलाता है और भक्त जो हैं वह तो आम के नीचे मानस पूजा करते ही हैं। इसका अर्थ है कि रस की आकांक्षा से ही व्यक्ति काम की ओर भी जाता है और रस की आकांक्षा से राम

की ओर भी जाता है। बस अंतर इतना है कि भक्त लोग आम के नीचे बैठते हैं और काम सिर पर सवार होता है, ऊपर चढ़ाता है और वह मर्यादा को विनष्ट करने की चेष्टा करता है। इस तरह से मानो पूर्ण हृदय से जब हम भगवान् को अपना मान ले, नाता मान लें और उस नाते के अनुकूल हम पूजन करें, मन के द्वारा आराधना करें, तो भगवान इतने प्रसन्न होते हैं और वह प्रसन्नता? पहले तो आपको यह लगेगा यह तो कल्पना में हो रहा है, मुझे ऐसा सोचना है, मुझे करना है। वह उपाख्याय बड़ा मधुर है कि किसी दीनहीन व्यक्ति ने महात्मा से कहा, ''महाराज मुझे धन मिल जाता ''- ''क्या करोगे? '' तो ''महाराज मैं मंदिर बनवाता भगवान् का '' - कई लोग आजकल भी जब लॉटरी का टिकट लेते हैं, तो पहले भगवान को ही लोभ दिखाते हैं कि अगर यह ऐसा होगा तो मंदिर बनवा देंगे या मुकुट बनवा देंगे यानी सोचते है कि वैसे सीधे न मिले तो भगवान् इस लोभ से दिला दें तो उस व्यक्ति से महात्मा ने कहा 'अरे भई धन मिलेगा तो मंदिर कितना बनाओगे, कैसा बनाओगे। ऐसा करो तुम नित्य नया मंदिर मन में बनाओ , नित्य नया सिंहासन मन में बनाओ, नित्य नये वस्त्र भगवान का पहिनाओ, नित्य नये - नये व्यंजनों का भोग लगाओ। ''

वह व्यक्ति श्रद्धालु था, उसने मान लिया और उसको आनन्द आने लगा। तन्मयता बढ़ने लगी और उसके बाद एक दिन जब उसने सोचा कि आज तो भगवान को खीर बना के खिलावें-खीर बनाने लगा और मन में यों कल्पना करने लगा कि चीनी खीर में डाल दें। तो अचानक उसको लगा कि इतनी चीनी खर्च हो जायेगी तो बड़ा गड़बड़ होगा। इसलिए थोड़ा कम करके डालना चाहिए तो जब आधा कर दिया तो भगवान् ने प्रकट हो करके एक चांटा लगाया -मन की वानी में भी कंजुसी! बाजार से तो खरीदना नही था। पर उसने बहुत अच्छा प्रश्न किया भगवान् से - 'महाराज इतने दिन तक तो आप सामने नहीं आये तो क्या आपको कंजूसी के प्रति ही प्रेम है क्या? '' भगवान् ने कहा कि नहीं रे, पर अब तक तुम जो करते थे तो लगता था कि हम मन की वस्तु भेंट कर रहे हैं, पर अब तुममें इतनी तन्मयता आ गई कि भूल गये कि कल्पना है, तुमको लगने लगा कि सचमुच मैं खीर बना रहा हूं। तुम्हारी तन्मयता से प्रसन्न

होकर के मैं सामने आ गया"- मानो वह ध्यान करते- करते मन में यह भूल जाता है कि सब हमारे हृदय की कल्पना हैं, कल्पना की वस्तु हैं।

अनेक संतों और भक्तों का ऐसा प्रसंग आता है कि जिनको मानस पूजा में जो कुछ दिखाई पड़ा वह साकार हुआ, पुर्ण हुआ और वह साकार रूप में। क्योंकि वैसे संसार के विषय में कल्पना की जाय तो कल्पना है पर भगवान् के संदर्भ में कल्पना कीजिए तो भगवान् कल्पतरू है। वह उस भक्त की कल्पना को ही साकार कर देते हैं। भगवान की जो कथा वट के नीचे भुशुण्डि जी सुनाते हैं, उसका एक विशेष महत्व , इसलिए है कि इन तीनों साधनाओं में व्यक्ति स्वयं रस पाता है, जप आप करेंगे आपको आनन्द आवेगा, ध्यान करेंगे आपको आनन्द आवेगा। मानस पूजा करेंगे आपको रस मिलेगा, पर कथा का अर्थ है जो रस आपको मिला है वह रस दूसरों को भी बाटिये - उसमें रस का अनुभव अन्य लोगों को भी हो, अन्य भी तृप्त हों और साथ-साथ ध्यान की विधि , जप की विधि, मानस पूजा की विधि भी परिचय आपको कथा के द्वारा ही मिलेगा।

यह जो भगवान् की कथा रूपी साधन है, यह तो वस्तुतः विलक्षण है। ऐसी दिव्य भगवान् की कथा है और उस कथा की विशेषता यही है कि आप जिस भी साधन के पथिक हों, आपको कथा के द्वारा उसी पथ का निर्देश मिल जायेगा। गोस्वामी जी से किसी ने कहा महाराज अगर कोई हमें सद्‌गुरू न मिले तो - कई लोगों को यह रहता है कि सद्‌गुरू नहीं मिलते। वैसे तो बड़ा व्यंग्यात्मक उत्तर दिया था हमारे प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्द जी ने। बड़े विलक्षण महात्मा थे और ऐसा विलक्षण उनका विचार और चिंतन था और कुछ वाक्यों में इतनी बड़ी बात वह कह देते थे कि उसे सुन करके व्यक्ति ने जा करके कहा उनसे यही कहा- कोई बड़े समृद्धिशाली थे । प्रणाम किया और प्रणाम करके कहा कि महाराज पहले जैसे महात्मा हुआ करते थे आजकल क्यों नहीं होते - सोचिए मूर्खता की पराकाष्ठा । आप किसी महात्मा के पास बैठे हुए है और आप यह पूछ रहे हैं कि पहले जैसे महात्मा नहीं होते- माने आप तो नहीं है महात्मा - कई लोग तो यह जानते ही नहीं कि कैसे बोला जाता हैं। आप किसी महात्मा ही को तो महात्मा के रूप में आंकने गये हैं? पर उन्होंने पूछ दिया तो सुनके बहुत हंसे । उनका हंसने का बड़ा स्वभाव था।

इस बात को दूसरा सुनता तो उसे बूरा लग जाता। तो उन्होंने हंस करके कहा कि भई, इसमें एक कारण हैं। पहले जो महात्मा होते थे, बड़े -बड़े राजाओं के घर से राज्य को छोड़ कर धनियों के घर से धन छोड़ कर, भोगों का छोड़ कर आते थे, तो अच्छे महात्मा तुम्हें मिल सकते थे। पर तुम लोगों ने तो अपने घरों में महात्माओं को अब बनाना बंद कर दिया है तो हम जैसा नालायक ही महात्मा बन जाता है। मानो व्यंग्य था कि महात्मा दूसरे के घर में ढूंढोगे क्या? तुम्हारे घर में कोई महात्मा बनने चले तो तुम्हें कैसा लगेगा। अगर आपका बेटा सत्संग में बैठने लगे तो चिंता हो जाती है अरे भई बहुत हो गया कोई उमर है, यह अवस्था है, अभी कोई तुम्हें सत्संग करना चाहिए- मानो वस्तुत: अगर किसी को ऐसा लगे, सद्‌गुरू के प्रति जिसकी भावना है उसको मिल सकते हैं। गोस्वामी जी ने यही कहा गुरू तो सामने हैं। कौन? बोले ये श्रीराम की कथा हैं, श्रीराम का जो चरित्र है वही सबसे बड़ा सद्‌गुरू है। किस वस्तु के सद्‌गुरू हैं बोले—

सतगुरू ज्ञान बिराग जोग के।

अगर ज्ञान मार्ग के अनुयायी आप हैं तो रामायण से बढ़कर कोई सद्‌गुरु नहीं, अगर आप योग मार्ग के अनुयायी हैं तो रामकथा से बढ़ करके कोई गुरु नहीं, अगर वैराग्य पाना चाहते हैं तो रामकथा से बढ़ करके कोई सद्‌गुरु नहीं हैं, और अगर आप लौकिक कामनाओं के लिए आशीर्वाद चाहते हैं तो भी

सतगुरु ज्ञान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के।।

(१-३१-३)

यह रामकथा अगर सही अर्थो में कही जाए, सही अर्थो में सुनी जाए, पर श्रोता वक्ता तो दुर्लभ है, और सही अर्थो में कहने वाले बिरले ही होते हैं और सही-सही उसको सुनने वाले भी बहुत थोड़े होते हैं। उसका अर्थ है, जब यह कहा गया-

जे गावहिं यह चरित संभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ।।

(१-३१-१)

जो इसको संभाल के गाते हैं वही इस मानसरोवर के चतुर रखवाले हैं। संभाल के गाना क्या होता है? अगर यह अर्थ लें भई, हारमोनियम या

सितार या वाद्यवृंद के सहयोग से बढ़िया गावे तो संभाल के गा रहे हैं। आपने अगर यह अर्थ लिया है तो आप अर्थ नहीं समझ पाये। रामायण में बहुत शब्द कहा गया हैं। कागभुशुण्डि जी के लिए कहा गया है-

कागभुशुण्डि गरूड़ प्रति गाई।

मैं वह कथा तुम्हें सुना रहा हूं जो कागभूशुण्डि ने गरूड़ को गा के सुनाया। वहां तबला, हारमोनिय, सितार तो था नहीं, और फिर जब कौआ गाता होगा तो आप उसके गाने की कल्पना कर लीजिए। पूछा गया महाराज कौआ राम कथा गाता है। बोले वे इतने तन्मय हैं कि जब रामकथा की मधुरता आ जाती है तो कौए का स्वर भी मधुर होता है। वही संगीत है और रामकथा का संगीत जो है, यह भी गायन है पर गायन का तात्पर्य भगवान् राम ने हनुमान जी से यही कह दिया—

आपन चरित कहा हम गाई। कहउ विप्र निज कथा बुझाई।।

(४-१-४)

मैने अपना चरित्र गा के सुना दिया। ब्राह्मण देवता आप भी कथा सुनाओ। तुम कथा वाचक , मैं गायक- अब भला बताइये भगवान् राम किस राग में गा रहे थे । मानो उसका एक ही उत्तर है, राग -रागिनी में जब गाया जाता है तो राग- रागिनी का अलग -अलग समय होता है। तो भगवान् को अगर 'सुनाना 'हो तो किस राग में गाना चाहिए- उनको तो एक ही राग पसंद है वह है "अनुरांग "। गोस्वामी जी कहते हैं, कामभुशुण्डि जी जब अनुराग से भर करके-

भयउ तासु मनु परम उछाहा।

तो उछाह और अनुराग । जब भगवान ने भक्त से पूछा 'कि तुमने तो बहुत सुंदर अनुराग राग में गाया तो बदले में मैं भी तुम्हें सुनाऊँ तो किस राग में भक्त ने कहा - प्रभु हमने राग में सुनाय आप रागिनी में सुनाइये। कौन सी रागिनी बोले आप "करूण रागिनी" का प्रयोग कीजिए। आप जब अनुराग से गावें और भगवान् के हृदय में करूणा उमड़ पड़े वही दिव्य संगीत है। जब हमारी आवाज सुन कर हमारी प्रार्थना सुन कर उनका हृदय द्रवित हो जाए यही कथा का उद्देश्य हैं। कथा में आप सब पा सकते हैं। ज्ञान, वैराग्य,योग भक्ति, प्रीति सब कुछ -आपको जो चाहिए - मिल सकता हैं। अगर आपको बाहर सद्गुरू का अभाव प्रतीत

हो तो रामकथा के माध्यम से आप वह सभी कुछ पा सकते हैं। गोस्वामी जी ने ऐसा आश्वासन दिया।

भुशुण्डि जी इन चारों साधनाओं के द्वारा -नाम -जप ,ध्यान मानसिक पूजा और कथा- ईश्वर का भजन करते हैं। मन,बुद्धि , चित्त, अंहकार - इन चारों को शुद्ध करने के लिए , पवित्र करने के लिए, निर्मल बनाने के लिए चारों प्रकार की साधनाएँ हैं और इन चारों साधनाओं के द्वारा हमारा जीवन धन्य हो सकता हैं। हम कृतकृत्य हो सकते हैं। इसीलिए तो -

हरि अनंत हरि कथा अनंता।

(१-१३६-५)

विराम तो देना ही पडेगा और मुझे डर यह भी है कहीं शुक्ल जी यह न सोच रहे हों कि कथा लम्बी खिंची तो श्रोता बिना दक्षिणा दिए ही भाग जायेंगे। मै। चाहता हूं कि मैं इतना समय आपको दूं। आप मानस भवन के लिए जो दक्षिणा देंगे वह मेरे लिए नहीं होगी मानस भवन के लिए , तुलसी प्रतिष्ठान के लिए- होगी । प्रभु की मंगलमयी कृपा है कि वह किसी को भी निमित्त बना लेते हैं। जो भी प्रशंसा मेरे विषय में शुक्ल जी ने की वह बहुत बार की जाती है। उसकी वास्तविकता में ही जानता हूं। उसमें कोई मेरा प्रयत्न,कोई पुरूषार्थ नहीं है। कोई मैं ऐसा गोताखोर भी नहीं हूं। लेकिन अब मानों कोई व्यक्ति ऐसा मिले कि जो गोता स्वयं लगावे और बाहर वाले को रत्न पकड़ा दे, भीतर से रत्न लाकर किसी ने दिया और यह समझे बड़ा गोताखोर है नीचे से क्या ले आया रत्न। इसी प्रकार से गोताखोर तो हमारे श्रीराम है, वे स्वंय गोता लगाते हैं। मैं तो बाहर खड़ा रहता हूं , वे निकाल देते हैं और वहीं कुछ रत्न आपके सामने आ जाते हैं। तो इसलिए प्रभु ने इस तुच्छ व्यक्ति को उपनी अहैतुकी कृपा का माध्यम बनाया, यह उनकी महती अनुकंपा है और सब लोगों ने इतने प्रेम से अनुराग से इसे श्रवण किया। हम प्रभु से यही प्रार्थना करेंगे कि हम सब के जीवन में -

जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर रहउ सदा अनुकूल ।।
।। सियावर रामचन्द्र की जय।।